प्रकाशक:—

नेमीचन्द बाकलीवाल

—मालिक—

जैन ग्रन्थ कार्यालय

मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान

मुद्रक —

नेमीचन्द बाकलीवाल

कमल प्रिन्टर्स

मदनगंज (किशनगढ़) राजस्थान

विषय-सूची

संख्या नाम पाठ पृष्ठ

प्रथम अध्याय

प्रातःक्रिया दर्शनपाठादि संग्रह

संख्या नाम पाठ पृष्ठ

दूसरा अध्याय

अभिषेक पूजादि संग्रह

स्वाध्याय से ज्ञान प्राप्त होता है

ज्ञान दान के समान

दान नहीं

अगर आप अपनी चञ्चला लक्ष्मी का कुछ सदुपयोग

करना चाहते हैं तो हमसे निम्नलिखित

ग्रन्थ—शास्त्र मँगवाइये

हम वितरण करने के लिए बहुत सस्ते रेट में देंगे

सस्तेपन व सुन्दरता से संसार को चकित

करने वाला ८०८ पृष्ठ का सचित्र ७॥) रु० का

३॥) बृहज्जिनवाणी संग्रह

श्री पाण्डवपुराणजी १०) का ५)

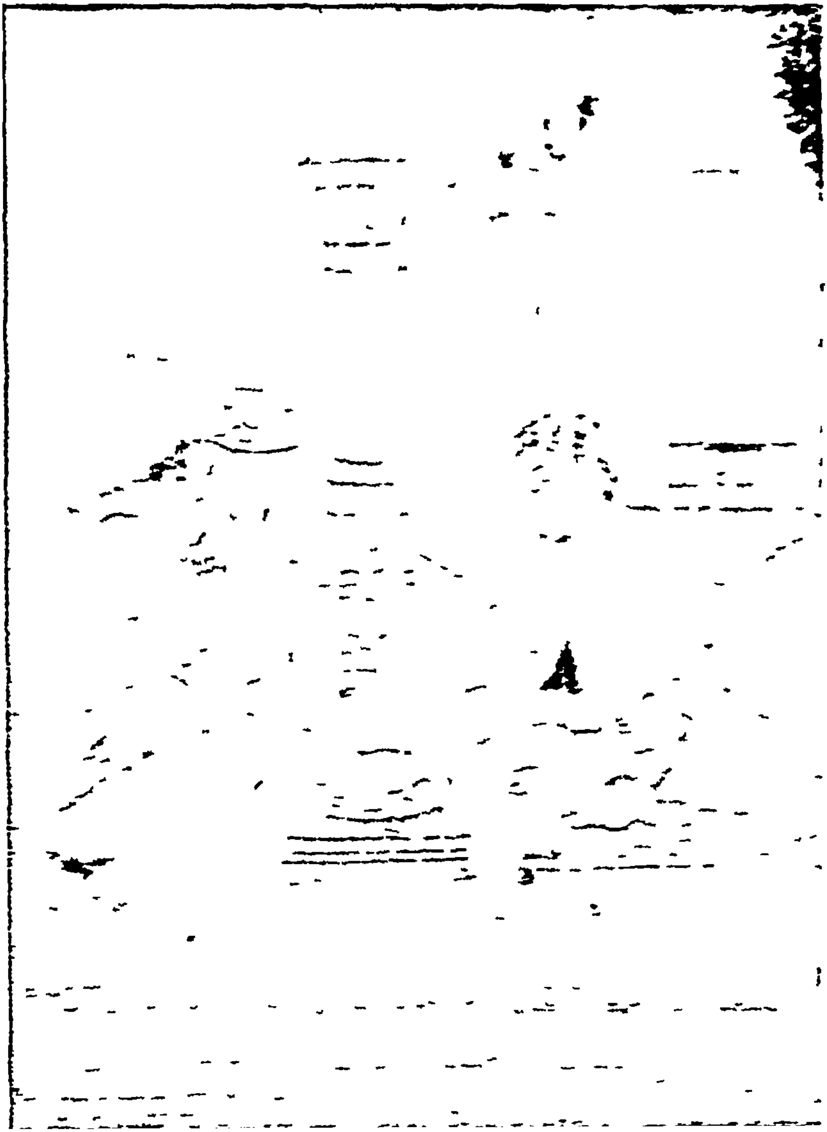
श्री विमलपुराणजी ३) का २॥)

श्री प्रद्युम्नचरित्र शास्त्र १०) का ५)

आज पत्र लिखिये

पता—नेमीचन्द बाकलीवाल,

पो० मदनगंज (किशनगढ)



ॐ

वृहज्जिनवाणी संग्रह

प्रथम अध्याय ।

प्रातःक्रिया और दर्शनपाठादि संग्रह ।

प्रत्येक जैनबंधुको सुबह उठकर नीचे लिखे मत्र और पाठ बोलने चाहिए, सामायिकसे आगे बतलाई गई विधिके अनुसार सामायिक करना चाहिए ।

१ नमस्कार मंत्र ।

गाथा ।

णमो अरहंताणं, णमोसिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥
अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ।

२ सामायिक पाठ भाषा

१ प्रतिक्रमण कर्म ।

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी ।
जन्ममरण नित किये पापको है अधिकारी ॥

कोटि भवांतरमाहिं मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक॥
हे सर्वज्ञ जिनेश! किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मन-वच-काय-योगकी गुप्ति विना लभ॥
आप समीप हजूर माहिं मैं खडो खडो सब।
दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब॥
२॥ क्रोधमानमदलोभमोहमायावशि प्रानी।
दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी॥
विना प्रयोजन एकेंद्रिय वितिचउपंचेंद्रिय।
आप प्रसादहिं मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय॥
३॥ आपसमें इकठौर थापकरि जे दुख दीने।
पेलि दिये पगतलैं दाबिकरि प्राण हरीने॥
आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक।
अरज करूं मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक॥ ४॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय॥
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि। यह
पडिक्कोणो कियो आदि षटकर्ममाहिं विधि॥५॥

२। द्वितीय प्रत्याख्यान कर्म।

इसके आदि वा अंतमें आलोचना पाठ बोलकर फिर तीसरे सामायिक कर्मका पाठ करना चाहिए।

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे। तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे॥ सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादै। जा प्रसादतैं मिलै सर्व सुख दुःख न लाधै॥ ६॥

मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ। किये पाप अघढेर पापमति होय चित्त दुठ॥ निंदू हूं मैं बारबार निज जियको गरहूं। सब-विधि धर्म उपाय पाय फिर पापहि करहूं॥ ७॥

दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी। सतसंगति संजोग धर्मजिनश्रद्धा, धारी॥ जिन बचनामृत धार समावर्तै जिनवानी। तोहू जीव संघारे धिक धिक धिक हम जानी॥ ८॥

इंद्रियलंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब। अज्ञानी जिमि करै तिसी विधि हिंसक ह्वै अब॥ गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले। ते सब दोष किये निंदू अब मन वच तोले॥ ९॥

आलोचनविधिथकी दोष लागे जु घनेरे। ते सब दोष विनाश होउ तुम तें जिन मेरे॥ बारबार इसभांति मोहमद दोष कुटिलता। ईर्षादिकतें भये निंदिये जे भयभीता॥ १० ॥

३ तृतीय सामायिक कर्म।

सब जीवनमें मेरे समताभाव जग्यो है। सब जिय मोसम समता राखो भाव लग्यो है॥ आर्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूं सामायिक। संजम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायक॥ ११ ॥

पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउकाय वनस्पति। पंचहि थावरमाहिं तथा त्रस जीव बसें जित॥ बेइंद्रिय तिय चउ पंचेंद्रियमांहि जीव सब। तिन तें क्षमा कराऊं मुझपर क्षमा करो अब॥१२॥

इस अवसरमें मेरे सब सम कंचन अरु तृण। महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहिं सम गण॥ जामन मरण समान जानि हम समता कीनी। सामायिकका काल जिते यह भाव नवीनी।१३।

मेरो है इक आतम तामें ममत जु कीनो। और

सबै मम भिन्न जानि समतारसभीनो ॥ मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह, मोतैं न्यारे जानि जथारथ रूप कर्यो गह ॥ १४ ॥ मैं अनादि जगजालमांहि फांसि रूप न जाण्यो। एकेंद्रिय दे आदि जंतुको प्राण हराण्यो ॥ ते सब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी। भवभ-वको अपराध छिमा कीज्यो कर मरजी ॥१५॥

४ चतुर्थ स्तवनकर्म

नमौं ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्म-को। संभव भवदुखहरण करण अभिनंद शर्म को॥ सुमति सुमति दातार तार भवसिंधु पार कर। पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीति धर ॥ १६ ॥ श्रीसुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्धकर । श्रीचंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देह कांतिधर ॥ पुष्पदंत दमिदोपकोश भविपोष रोपहर। शीतल शीतल करण हरण भवताप दोषकर ॥ १७ ॥ श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन। वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक

भवभयहन ॥ विमल विमलमति देन अंतगत है अनंत जिन। धर्मशर्मशिवकरण शांतिजिन शांतिविधायिन ॥ १८ ॥ कुंथ कुंथुमुख जीवपाल अरनाथ जाल हर। मल्लि मल्लसम मोहमल्लमारन प्रचार धर। मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुर-संघहिं नमि जिन। नेमिनाथ जिन नेमि धर्म-रथमांहि ज्ञानधन ॥ १९ ॥ पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्ष रमापति। वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भवदुःख कर्मकृत ॥ या विधि में जिन संघ-रूप चउवीस संख्यधर। स्तवूं नमूं हूं वारवार वंदूं शिव सुखकर ॥ २० ॥

५ पञ्चम वन्दनाकर्म।

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सुसनमति। वर्द्ध-मानअतिवीर वंदि हूं मनवचतनकृत ॥ त्रिश-लातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं। वंदों नित प्रति कनकरूप तनु पापनिकंदूं ॥ २१ ॥ सिद्धा-रथ नृपनंददुंददुख दोष मिटावन, दुरित दवा-नल ज्वलित ज्वाल जगजीव उधारन ॥ कुंडल

पुर करि जन्म जगत जिय आनँदकारन। वर्ष बहत्तर आयु पाय सवही दुख टारन ॥ २२ ॥ सप्तहस्त तनु तुंग भंगकृतजन्ममरणभय। वाल-ब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥ दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन। आप बसे शिव-मांहि ताहि वंदौं मन वच तन ॥ २३ ॥ जाके वंदनथकी दोप दुखदूरहि जावे। जाके वंदन थकी मुक्तितिय सन्मुख आवे ॥ जाके वंदनथकी वंद्य होवें सुरगनके, ऐसे वीर जिनेश वन्दि हूं क्रमयुग तिनके ॥ २४ ॥ सामायिक पटकर्ममांहिं वंदन यह पंचम। वंदों वीरजिनेंद्र इंद्रशतवंद्य वंद्य मम ॥ जन्म मरणभय हरो करो अघशांति शांतिमय। मैं अघकोप सुपोष दोपको दोष विनाशय ॥ २५ ॥

६ छठा कायोत्सर्ग कर्म।

कायोत्सर्ग विधान करूं अंतिम सुखदाई। काय-त्यजनमय होय काय सबको दुखदाई ॥ पूरव दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं। जिनगृह

वंदन करूं हरूं भवपापतिमिर में ॥२६ ॥ शिरो. नती मैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकें। आवर्ता. दिक क्रिया करूं मन वच मद हरिकें॥ तीनलोक जिनभवनमाहिं जिन हैं जु अकृत्रिम। कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धद्वीप माहीं वन्दों जिम।२७। आठकोडि परि छप्पन लाख जु सहस सत्याणूं। च्यारि शतक पर असी एक जिनमंदिर जाणूं॥ व्यंतर ज्योतिषिमाहिं संख्यरहिते जिनमंदिर। ते सब वंदन करूं हरहु मम पाप संघकर॥ २८॥ सा- मायिकसम नाहिं और कोउ वैरमिटायक। सामा यिकसम नाहिं और कोउ मैत्रीदायक॥ श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक। यह आव श्यक किये होय निश्चय दुखहानक॥ २९॥ जे भवि आतमकाज-करण उद्यमके धारी। ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी॥ राग रोष मदमोहक्रोध लोभादिक जे सब। बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातें कीज्यो अब॥ ३०॥

* इति सामायिक पाठ समाप्त *

३ सामायिक करनेकी विधि

गृहस्थके नित्यकर्म छह हैं। देवपूजा १, गुरुकी भक्ति करना २, स्वाध्याय करना ३, संयम पालना ४, तप करना ५, और दान करना ६। सामायिक करना इन षटकर्मोंमेंसे तपके अंतर्गत है, इसलिये प्रत्येक गृहस्थको प्रतिदिन सवेरे ही एकबार, दूसरी प्रतिमाके धारीको सवेरे शाम दो बार और तीसरी सामायिक प्रतिमाधारीको दुपहर, रातमें कमसे कम तीन बार सामायिक करना चाहिये। उपवास या उपवाससे पूर्वके दिन इससे ज्यादा समय तक करना चाहिये।

सामायिकका काल जघन्य दो घड़ी अर्थात् एक मुहूर्तका (४८ मिनिटका) है, मध्यमकाल चार घड़ी या दो मुहूर्तका और उत्कृष्ट काल ६ घड़ीका है और जो प्रतिमाधारी नहीं हैं, अव्रती हैं, उनके लिये ४८ मिनिटका नियम नहीं है, वे अपने अपने अवकाशके अनुसार कम जियादा भी कर सकते हैं।

सामायिक करनेका सबसे उत्तमकाल सवेरेका है सो सवेरे ४ बजे या सूर्योदयसे पहिले शय्यासे उठकर ही करना चाहिये। गृहस्थ यदि श्वासोच्छ्वासादिसे अपवित्र हो तो हाथ पांव धोकर कपड़ा बदलकर घरके किसी एकांत स्थानमें (जहां कि—डांस मच्छर आदिकी कोई भी बाधा न हो) अथवा जिनमंदिरजी या धर्मशालामें उत्तर या पूर्वमुख कुशासनपर बैठकर सामायिक धारण करना चाहिये। जिनमंदिरजीमें उत्तर पूर्वमुख देखकर बैठनेका कोई नियम नहीं है क्योंकि मंदिरजी नव देवोंमेंसे एक देव है। देवके सम्मुख बैठकर सामायिक करना सर्वोत्तम है।

हाथोंको पहिले आवर्तके बाद एक बार दहिने हाथकी तरफ झुका कर फिर तीसरी बार पीठपीछे नमस्कार करते समय माथे पर हाथ रखकर और चौथीबार बांयी तरफ हाथ झुकाकर जुड़े हुये हाथोंपर मस्तक रखकर शिरोनति कर लें।

इस प्रकार चारों तरफ चार बारमें बारह आवर्त और चार शिरोनति करनेके पश्चात् पहले जिस तरफ मुह करके बैठे वा खड़े हों, उसी तरफ पद्मासन वा अर्द्ध पद्मासनसे बैठकर शांतचित्त हो-कर सामायिकका पाठ संस्कृत वा भाषा धीरे धीरे पढ़ै, जबानी याद न हो तो पुस्तक सामने रखकर मनमें उसके अर्थको समझता हुआ पढ़ै।

सामायिक पाठमें प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, सामायिक,स्तवन, वंदन और कायोत्सर्ग ये छह कर्म हैं। प्रतिक्रमणमें भगवानके सन्मुख अपने किये हुये पापकार्योंको स्मरण करके आलोचना (प्रार्थना) करना है। प्रत्याख्यान कर्ममें ये सब दोष मैंने प्रमा-दके वशीभूत होकर किये हैं सो मैं आपके पास अपनी निंदा करके प्रार्थना करता हूं कि मेरे ये दोष मिथ्या होवो। सामायिक कर्ममें समस्त जीवोंमें और उत्तम मध्यम समस्त पदार्थोंमें राग द्वेष छोड़कर समस्त जीवोंमें अपने किये हुये अपराधोंकी क्षमा मांग-कर समताभाव धरनेकी प्रतिज्ञा है। चौथे स्तवनकर्ममें चौवीसों-तीर्थंकर भगवानको नमस्कार पूर्वक स्तुति (गुणप्रशंसा) करना है। पाचवें वन्दनाकर्ममें अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी-को प्रशसापूर्वक बारंबार नमस्कार करना है। सो पाठ करते समय इन पांचों अध्यायोंकी पूर्तिमें नमस्कार करना चाहिये और छठा कायोत्सर्ग है सो पहिलेकी तरह खड़े होकर शरीरसे ममता-

४ आलोचना पाठ।

यह आलोचनापाठ सामायिक कालमें प्रथमकर्म प्रतिक्रमण कर्म है उस कर्मके आदि या अन्तमें बोलना चाहिए।

दोहा–वंदों पांचों परमगुरु, चौवीसों जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरनके काज ॥१॥

सखी छंद चौदह मात्रा।

सुनिये जिन अरज हमारी। हम दोष कियेअति भारी॥ तिनकी अब निर्वृत्ति काज। तुम सरन लही जिनराज॥ २॥ इक वे ते चउ इंद्री वा। मनरहित सहित जे जीवा॥ तिनकी नहिं करुणा धारी। निरदइ है घात विचारी ॥ ३॥ समरंभ समारंभ आरंभ। मनवचतन कीने प्रारंभ। कृत कारित मोदन करिकें। क्रोधादि चतुष्टय धरिकें॥ ४॥ शत आठ जु इमि भेदनतें। अघ कीने परछेदनतें॥ तिनकी कहुं कोलों कहानी। तुम जानत केवलज्ञानी॥ ५॥ विपरीत एकांत विनयके। संशय अज्ञान कुनयके॥ वश होय घोर अघ कीने। वचतें नहिं जाय कहीने॥ ६॥

कुगुरनकी सेवा कीनी। केवल अदयाकरि भीनी। याविधि मिथ्यात भ्रमायो। चहुंगति मधि दोष उपायो॥ ७॥ हिंसा पुनि झूठ जु चोरी। परवनितासों दृग जोरी॥ आरंभपरिग्रह भीनो। पनपाप जु या विधि कीनो।८। सपरस रसना घ्राननको। चखु कान विषयसेवनको॥ बहु करम किये मनमानी। कछु न्याय अन्याय न जानी॥ ९॥ फल पंच उदंवर खाये। मधु मांस मद्य चितचाहे॥ नहिं अष्टमूलगुणधारी। विसन न सेये दुखकारी॥१०॥ दुइवीस अभख जिनगाये। सो भी निशदिन भुंजाये॥ कछु भेदाभेद न पायो। ज्यों त्योंकरि उदर भरायो॥११॥ अनंतानु जु वंधी जानो। प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो॥ संज्वलन चौकरी गुनिये। सब भेद जु षोडश मुनिये॥ १२॥ परिहास अरतिरति शोग। भय ग्लानि तिवेद संजोग॥ पनचीस जु भेद भये इम। इनके वश पाप किये हम॥ १३। निद्रावश शयन कराई। सुपनेमधिदोष

लगाई। फिर जागि विषयवन धायो। नाना-
विध विषफल खायो ॥१४॥ कियेऽहार निहार-
विहारा। इनमें नहिं जतन विचारा॥ विन देखी
धरी उठाई। विन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५।
तव ही परमाद सतायो। वहुविधि विकलप उप-
जायो॥ कछु सुधिवुधि नाहिं रही है। मिथ्या-
मति छाय गयी है॥ १६॥ मरजादा तुमढिंग
लीनी। ताहूमें दोष जु कीनी॥ भिन भिन अव
कैसें कहिये। तुम ज्ञानविषें सव पइये॥ १७॥
हा हा! मैं दुठ अपराधी। त्रसजीवनराशि विरा-
धी॥ थावरकी जतन न कीनी। उरमें करुना
नहिं लीनी॥ १८॥ पृथिवी वहु खोद कराई।
महलादिक जागां चिनाई॥ पुनि विनगाल्यो
जल ढोल्यो। पंखातैं पवन विलोल्यो॥१९॥ हा
हा! मैं अदयाचारी। वहु हरितकाय जु विदारी
॥ तामधि जीवनके खंदा। हम खाये धरि आनं
दा॥ २०॥ हा हा! परमाद वसाई। विन देखे
अगनि जलाई॥ तामधि जे जीव जु आये। ते

हू परलोकनिधाये ।२१। बांध्यो अन्न गानि पिसायो
ईंधनबिन सोधि जलायो।।झाडूतें जागां बुहारीं चिवटी
आदिक जीव बिदारी ।।२२।। जल छानि जिवानी
कीनी । सो हू पुनि डारि जु दीनी । नहिं जल थानक
पहुंचाई । किरिया बिन पाप उपाई ।।२३।। जल मल
मोरिन गिरवायो।कृमिकुल बहु घात करायो। नदियन
बिच चीर धुवाये । कोसनके जीव मराये ।।२४।। अ-
न्नादिक शोध कराई।तामैं जु जीव निसराई।।तिनका
नहिं जतन कराया । गरियालैं धूप डराया ।।२५।।
पुनि द्रव्यकमावन काज बहु आरंभ हिंसा साज । किये
तिसनावश अघभारी।करुना नहिं रंच विचारी।।२६।।
इत्यादिक पाप अनंता । हम कीने श्री भगवंता ।। सं-
तति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहियन जाई ।।२७।।
ताको जु उदय अब आयो । नानाविध मोहि सतायो।।
फल भुञ्जत जिय दुख पावै । वचतैं कैसें करि गावै
।२८। तुम जानत केवल ज्ञानी, दुख दूर करो शिव-
थानी । हम तो तुम शरण लही है । जिन तारन
बिरद सही है ।। २९ ।। जो गांवपती इक होवे

सो भी दुखिया दुख खोवे ॥ तुम तीनभुवनके स्वामी । दुख मेटहु अंतरजामी ॥ २९ ॥ द्रोपदिको चीर बढायो । सीताप्रति कमल रचायो ॥ अंजनसे किये अकामी । दुख मेट्यो अंतरजामी ॥ ३०॥ मेरे अवगुन न चितारो । प्रभु अपनो विरद सम्हारो ॥ सब दोषरहित करि स्वामी । दुख मेटहु अंतरजामी ॥३१॥ इंद्रादिक पदवी न चाहूं । विषयनिमें नाहिं लुभाऊं ॥ रागादिक दोष हरीजे । परमातम निजपद दीजे ॥ ३२ ॥ दोहा—दोषरहित जिनदेवजी. निजपद दीज्यो मोय । सब जीवनके सुख बढे, आनँद मंगल होय ॥ अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी' आप जिनंद । ये ही वर मोहि दीजिये, चरनशरन आनंद ॥इति॥

५ सुप्रभात स्तोत्र ।

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे ।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः

संगीतस्तुतिगंधर्वैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः
॥१॥ श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभिरालीढपाद
युग ! दुर्धरकर्मदूर । श्रीनाभिनंदन ! जिनाजित
शंभवाख्य ! त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातं
॥२॥ छत्रत्रयप्रचलच्चामरवीज्यमानदेवाभिनंदन
मुने सुमते जिनेंद्र । पद्मप्रभारुणमणिद्युतिभासु-
रांग, त्व० ॥ ३ ॥ अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलव-
र्णगात्रप्रालेयतारगिरिमौक्तिकवर्णगौर । चंद्रप्रभ
स्फटिक पांडुर पुष्पदंत ! त्व० ॥ ४ ॥ संतप्तकां-
चनरुचे जिनशीतलाख्य । श्रेयान्विनष्टदुरिताष्ट
कलंकपंक वंधूकवंधुर रुचे जिनवासुपूज्य,
त्व० ।५। उद्दंडदर्पकरिपो विमलामलांग स्थेमन्न-
नंतजिदनंतसुखांवुराशे । दुष्कर्मकल्मषविव
र्जित धर्मनाथ, त्व० ॥ ६ ॥ देवामरीकुसुमस-
न्निभ शांतिनाथ कुंथोदयागुणविभूषणभूषि-
तांग देवाधिदेव भगवन्नर तीर्थनाथ, त्व० ।७।
यन्मोहमल्लमदभंजन मल्लिनाथ क्षेमं करावि-
तथशासनसुव्रताख्य । यत्संपदा प्रशमितो नमि

नामधेय त्व० ॥ ८ ॥ तापिच्छगुच्छरुचिरो-
ज्ज्वल नेमिनाथ घोरोपसर्गविजयिन् जिन-
पार्श्वनाथ। स्याद्वादसूक्तिमणिदर्पण वर्द्धमान,
त्व० ॥९॥ प्रालेयनीलहरितारुणपीतभासंयन्मू-
र्तिमव्यय सुखावसथं मुनींद्राः । ध्यायंति
सप्ततिशतं जिन वल्लभानां, त्व० ॥१०॥ सुप्र-
भातं सुनक्षत्रं मांगल्यं परिकीर्तितं। चतुर्विंशति,
तीर्थानां सुप्रभातं दिने दिने ॥ ११ ॥ सुप्रभातं
सुनक्षत्रं श्रेयः प्रत्यभिनंदितं। देवता ऋषयः
सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने ॥ १२ ॥ सुप्रभातं
तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः। येन प्रवर्तितं
तीर्थं भव्यसत्त्व सुखावहं ॥१३॥ सुप्रभातं जिनें-
द्राणां ज्ञानोन्मीलितचक्षुषां । अज्ञानतिमिरां-
धानां नित्यमस्तमितोरविः ॥ १४ ॥ सुप्रभातं
जिनेंद्रस्य वीरः कमललोचनः। येन कर्माटवी
दग्धा शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥ १५ ॥ सुप्रभातं
सुनक्षत्रं सुकल्याण सुमंगलं। त्रैलोक्याहितकर्तॄ-
णां जिनानामेव शासनं ॥१६ ॥ इति ॥

ऋषभदेव ऋषिदेवसहाई । अजित अजितरिपु संभव संभव, अभिनंदन नंदन व्वलाई ॥ ऋषभदेव० ॥१॥ सुमति सुमति भवि पदमपदम अलि, देत सुपास सुपास भलाई । चितचकोर चंदा चंदप्रभ पुहुपदंत पुहुपनि-भजि भाई ॥ ऋषभ०॥२॥ शीतल शीतलजड़ता नाशे, श्रेयान् श्रेयान् जोति जगाई । वासुपूज्य वासवपद पूजें, विमल विमल कीरति जगछाई ॥ ऋषभ०॥३॥ गुण अनंत अघ अंत अनंत हैं, धरम धर्म वरषा वरसाई । शांति शांति कुंथ्वादि जंतुपर, कुंथुनाथ करुणा करवाई ॥ ऋषभ० ॥४॥ अरह अरहविधि मल्लि मल्लवर, मुनिसुव्रत मुनिसुव्रतदाई, नमि नमि सुरनर, नेमिधरमरथ, नेमि प्रभू काटे भव काई ॥ ऋषभ० ॥५॥ पास पाश छेदी चहुंगतिकी, महावीर महावीर बड़ाई ॥ द्यानत परमानँद पदकारन, चौवीसों नामारथ गाई ॥ ऋषभ० ॥६॥

राग भैरों।

उठोरे सुज्ञानी जीव जिनगुन गावोरे ॥ उठोरे० ॥टेक॥ निशि तो नशाय गई, भानुको उद्योत भयो, ध्यानको लगावो प्यारे, नींदको भगावोरे ॥उठो रे० ॥१॥ भववनचौरासी वीच, भ्रमतो फिरत नीच, मोहजाल फंद फँस्यो, जन्म मृत्यु पावोरे ॥ उठो रे० ॥२॥ आरज पृथ्वीमें आय, उत्तम नरजन्म पाय, श्रावककुलको लहाय, मुक्ति क्यों न जावोरे ॥उठो रे० ॥३॥ विषयनि राचि राचि, बहुविधि पाप सांचि, नरकनि जाय क्यों, अनेक दुःख पावोरे ॥उठो रे०॥४॥ परको मिलाप त्यागि, आतमके काज लागि, सुबुधि बतावे गुरु, ज्ञान क्यों न लावोरे ॥ उठो रे० ॥५॥

राग बसंत।

भोर भयो भज श्री जिनराज, सफल होहिं तेरे सब काज॥टेक॥ धन संपति मनबांछित भोग। सब विधि जान बने संयोग ॥ भोर० ॥१॥ कल्पवृक्ष ताके घर रहै, कामधेनु नित सेवा

है। पारस चिंतामनि समुदाय, हितसों आय मिलै सुखदाय॥ भोर० ॥२॥ दुर्लभतैं सुलभ्य है जाय, रोग शोग दुख दूर पलाय। सेवा देव करैं मनलाय, विघन उलटि मंगल ठहराय॥ ॥ भोर० ॥ ३ ॥ डायनि भूत पिशाच न छलै, राजचोरको जोर न चलै॥ जस आदर सौभाग्य प्रकाश, द्यानत सुरगमुकतिपदवास ॥भोर०॥

राग भैरों।

भोर भयो सब भविजन मिलकर, जिनवर पूजन आवो (जावो), अशुभ मिटावो पुण्य बढावो, नैनन नींद गमावो ॥ भोर० ॥ टेक ॥ तनको धोय धारि उजरे पट, शुद्ध जलादिक ल्यावो। वीतराग छवि हरखि निरखिकै, आगमोक्त गुन गावो ॥ भोर० ॥ १ ॥ शास्तर सुनो भनो जिनवानी, तपसंजम उपजावो। धरि सरधान देवगुरु आगम, सात तत्त्व रुचि लावो ॥ भोर भयो० ॥२॥ दुःखित जनकी दया ल्याय उर, दान चारविधि द्यावो। रागरोष तजि भजि

जिनपदको, 'बुधजन' शिवपद पावो ॥ भोर० ॥

७ मेरी चाह ।

(स्नान करते समय बोलना चाहिये)

मैं देव नित अरहंत चाहूं, सिद्धका सुमिरन करों। मैं सूर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरों ॥ मैं धर्म करुणामय जु चाहूं, जहां हिंसा रंच ना। मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूं, जासुमें परपंच ना ॥ १ ॥ चौवीस श्रीजिनदेव चाहूं, और देव न मन बसै। जिन बीस क्षेत्रविदेह चाहूं, वंदितें पातक नसै ॥ गिरनार शिखर समेद चाहूं, चंपापुर पावापुरी। कैलाश श्रीजिनधाम चाहूं, भजत भाजै भ्रमजुरी ॥ २ ॥ नवतत्त्वका सरधान चाहूं और तत्व न मन धरौं। षट्द्रव्यगुन परजाय चाहूं, [illegible] भय हरों ॥ पूजा परम जिनराज चाहूं, और देव न [illegible]। तिहुकालकी मैं जाप चाहूं, पाप नहिं लागै [illegible] सम्यक दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहूं, भावसों। दशलक्षणा म[illegible] चाहूं, महा हरख उछाहसों ॥ सोलह जु कारन दुख निवारण, सदा चाहूं, प्रीतिसों। मैं चित अठाई पर्व चाहूं, महामंगल रीतिसों ॥४॥ मैं वेद चारों सदा चाहूं, आदि अन्त निवाहसों। पाये धरमके चार चाहूं, अधिक चित्त उछाहसों ॥ मैं दान चारों सदा चाहूं, भवनवशि लाहो लहूं आराधना मैं चारि चाहूं, अन्तमें ये ही गहूं ॥ ५ ॥ भावना बारह जु भाऊं, भाव निरमल होत हैं। मैं व्रत जु बारह सदा चाहूं, त्याग भाव उद्योत हैं ॥ प्रतिमा दिगंबर सदा चाहूं, ध्यान आसन सोहना। वसुकर्म तें मैं छुटा चाहूं, शिवलहूं जहँ मोह ना ॥ ६ ॥ मैं साधु-जनको संग चाहूं, प्रीति तिनहीसों करों। मैं पर्वके उपवास चाहूं,

उदर आरंभ परिहरौं। इस दुक्खम पंचमकालमाहीं कुल श्रावक मैं लह्यो। अरु महाव्रत धरि सकों नाहीं, निबल तन मैंने गह्यो ॥७॥ आराधना उत्तम सदा, चाहूं सुनो जिनरायजी। तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी॥ वसुकर्म नाश विकास ज्ञानप्रकाश मोको कीजिये। करि सुगतिगमन समाधिमरण सुभक्ति चरनन दीजिये ॥ ८ ॥

८ दृष्टाष्टक स्तोत्र

(दर्शनार्थ जाते हुये जबसे जिनमंदिर दिखने लगे तबसे इसका पाठ करना प्रारंभ कर दे)

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारी भव्यात्मनां विभवसंभवभूरिहेतुः। दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वल कूटकोटीनद्धध्वजप्रकरराजिविराजमानं ॥ १ ॥
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैक लक्ष्मीधामार्द्धिवर्द्धित महामुनि सेव्यमानं। विद्याधरामरवधूजनमुक्त-दिव्यपुष्पांजलिप्रकरशोभितभूमिभागं ॥ २ ॥
दृष्टं जिनेंद्रभवनं भवनादिवासविख्यातनाकगणिकागणगीयमानं। नानामणिप्रचयभासुररश्मि-जालव्यालीढनिर्मलविशालगवाक्षजालं ॥ ३ ॥
दृष्टं जिनेंद्रभवनं सुरसिद्धयक्षगंधर्वकिन्नर करा-

पितवेणुवीणा । संगीतमिश्रितनमस्कृतधारना-
दैरापूरितांबरतलोरुदिगंतरालं ॥ ४ ॥ दृष्टं जि-
नेंद्रभवनं विलसद्विलोलमालाकुलालिललिताल-
कविभ्रमाणं । माधुर्यवाद्यलयनृत्यविलासिनीनां
लीलाचलद्वलयनूपुरनादरम्यं ॥ ५ ॥ दृष्टं जिनें-
द्रभवनं मणिरत्नहेमसारोज्ज्वलैः कलशचामर-
दर्पणाद्यैः । सन्मंगलैः सततमष्टशतप्रभेदैर्विभ्रा-
जितं विमलमौक्तिकदामशोभं ॥ ६ ॥ दृष्टं जिनें-
द्रभवनं वरदेवदारुकर्पूरचंदनतरुष्कसुगंधिधूपैः ।
मेघायमानगगने पवनाभिघातचंचच्चलद्विमलके-
तनतुंगशालं ॥ ७ ॥ दृष्टं जिनेंद्रभवनं धवलात-
पत्रच्छायानिमग्नतनुयक्षकुमारवृंदैः । दोधूयमा-
नसितचामरपंक्तिभासं भामंडलद्युतियुतप्रतिमा-
भिरामं ॥ ८ ॥ दृष्टं जिनेंद्रभवनं विविधप्रकार-
पुष्पोपहाररमणीयसुरत्नभूमिः । नित्यं वसंत-
तिलकश्रियमादधानं सन्मंगलं सकलचंद्रमुनीं-
द्रवंद्यं ॥ ९ ॥ दृष्टं मयाद्यमणिकांचनचित्रतुंग-
सिंहासनादिजिनबिंबविभूतियुक्तं । चैत्यालयं-

दतुलं परिकीर्तितं मे सन्मंगलं सकल चंद्रमुनी-द्रवंद्यं ॥ १० ॥ इति ॥

९ मंदिरजीमें प्रवेश करना आदि ।

मंदिरजीकी वेदीगृहमें प्रवेश करते ही "ओं जय जय जय नि सहि नि:सहि नि सहि" इसप्रकार उच्चारण कर नीचे लिखा अद्याष्टक स्तोत्र बोलकर दर्शनपाठादि बोले ।

१० अद्याष्टक स्तोत्र ।

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम । त्वा-मद्राक्षं यतो देव हेतुमक्षय संपदः ॥ १ ॥ अद्य संसारगंभीरपारावारः सुदुस्तरः । सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ २ ॥ अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते । स्नातोहं धर्मतीर्थेषु जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ ३ ॥ अद्य मे सफलं जन्म प्रशस्तं सर्वमंगलं । संसारार्णवती-र्णोऽहं जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ ४ ॥ अद्य कर्मा-ष्टकज्वालं विधूतं सकषायकं । दुर्गतेर्विनिवृत्तो-ऽहं जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ ५ ॥ अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादशस्थिताः । नष्टानि विघ्न

जालानि जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥६॥ अद्य नष्टो महाबंधः कर्मणां दुःखदायकः। सुखसंगं समापन्नो जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥७॥ अद्य कर्माष्टकं नष्ट दुःखोत्पादन कारकं। सुखांभोधिनिमग्नोऽहं जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ ८ ॥ अद्य मिथ्यांधकारस्य हंता ज्ञान दिवाकरः। उदितो मच्छरीरेस्मिन् जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥९॥ अद्याहं सुकृतीभूतो निर्धूताशेषकल्मषः। भुवनत्रयपूज्योऽहं जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ १० ॥ अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानंदितमानसः। तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ ११ ॥ इति ॥

११ नमस्कारमंत्रदर्शनपाठादि।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं

चत्तारि मंगलं–अरहंत मंगलं। सिद्ध मंगलं। साहू मंगलं। केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥१॥ चत्तारि लोगुत्तमा–अरहंत लोगुत्तमा। सिद्ध लोगुत्तमा। साहू लोगुत्तमा। केवलिपण्णत्तो

धम्मो लोगुत्तमा ॥ २ ॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जा-
मि-अरहंतसरणं पवज्जामि। सिद्धसरणं पव्व-
ज्जामि। साहुसरणं पव्वज्जामि। केवलिपण्णत्तो
धम्मोसरणं पव्वज्जामि। ओं ह्रौं ह्रौं स्वाहा ॥

वर्तमान चौवीस तीर्थंकरोंके नाम कवित्त।

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पद्म
सुपास प्रभुचंद। पुहपदंत शीतल श्रेयांस प्रभु,
वासुपूज्य प्रभु विमल सुछंद ॥ स्वामि अनंत
धर्मप्रभु शांति सु, कुंथु अरह जिन मल्लि अनंद
मुनिसुव्रत नमि नेमि पास, वीरेश सकल वंदौं
सुखकंद ॥१॥ श्रीऋषभः१ अजितः२ संभवः३
अभिनंदनः४सुमतिः५पद्मप्रभः६सुपार्श्वः७चंद्रप्र-
भः८पुष्पदंतः९शीतलः१० श्रेयांसः११ वासुपू-
ज्यः१२विमलः१३अनंतः१४धर्मः१५ शांतिः१६
कुंथुः१७अरः१८मल्लिः१९मुनिसुव्रतः२० नमिः
२१नेमिः२२पार्श्वनाथः२३महावीरः२४ इति व-
र्तमान कालसंबंधिचतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो
नमोनमः ॥

इसप्रकार बोलकर साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। नमस्कारके पश्चात् पूजनके लिये चावल चढाना हो, तो नीचे लिखे पद्य तथा मंत्र पढ़कर चढावे। गीता छंद—

यह भवसमुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई। अति दृढ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही॥ उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं। अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरुनिरग्रंथ-नितपूजा रचूं॥१॥

तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन। जासों पूजों परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन॥१॥ ओं ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥१॥

यदि पुष्पोंसे पूजन करना हो तो नीचे लिखा पद्य पढ़ें।

जे विनयवंत सुभव्य उर अंबुज-प्रकाशन भान हैं। जे एकमुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहिं प्रधान हैं। लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं। अरहंत श्रुतसिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं॥२॥

विविधभाँति परिमलसुमन, भ्रमर जास आधीन।

जासों पूजों परमपद देवशास्त्रगुरु तीन ॥२॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

यदि किसीको लौंग, बादाम इलायची या और प्रासुक फल चढ़ाना हो तो नीचे लिखे पद्य और मन्त्र पढ़कर चढ़ावें।

लोचन सुरसना घ्राण उर उत्साहके करतार हैं। मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुण सार हैं॥ सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, सकल अमृतरस सचूं। अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरुनिरग्रंथनितपूजा रचूं॥३॥

जे प्रधानफलफलविषै, पंचकरण रसलीन। जासों पूजों परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन॥३॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

यदि किसीको अर्घ चढ़ाना हो, तो नीचे लिखे पद्य व मन्त्र बोलकर चढ़ाना चाहिये।

जल परम उज्वल गंध अक्षत पुष्प चरु दीपक धरूं। वर धूप निर्मल फल विविध बहु जनमके पातक हरूं॥ इहभाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि

करत शिवपंकति मचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नित पूचा रचूं ॥४॥

वसुविधि अर्घ सँजोयके, अतिउछाह मनकीन।
जासों पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥४॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

१२। दर्शनदशक।

छप्पय।

देखे श्रीजिनराज, आज सब विघन नशाये।
देखे श्रीजिनराज, आज सब मंगल आये॥
देखे श्रीजिनराज, काज करना कछु नाहीं।
देखे श्रीजिनराज, हौंस पूरी मनमांही॥ तुम देखे श्री जिनराज पद, भौजल अंजुलिजल भया। चिंतामनिपारसकल्पतरु, मोहसबनिसों उठि गया ॥१॥

देखे श्रीजिनराज, भाज अघ जाहिं दिसंतर।
देखे श्रीजिनराज, काज सब होंय निरंतर॥
देखे श्रीजिनराज, राज मनवांछित करिये। देखे

श्रीजिनराज नाथ दुख कबहुं न भरिये ॥ तुम देखे श्रीजिनराजपद, रोमरोम सुख पाइये। धनि आज दिवस धनि अब घरी, माथ नाथकौं नाइये ॥२॥

धन्य धन्य जिनधर्म कर्मकौं छिनमैं तोरै। धन्य धन्य जिनधर्म परमपदसों हित जोरै ॥ धन्य धन्य जिनधर्म भर्मको मूल मिटावै। धन्य धन्य जिनधर्म शर्म[1]की राह बतावै ॥ जग धन्य धन्य जिनधर्म यह, सो परगट तुमने किया। भविखेत पाप[2]तप—तपतकौं, मेघरूप ह्वै सुख दिया ॥३॥

तेज सूर[3]सम कहूं, तपत दुखदायक प्रानी। कांति चंदसम कहूं, कलंकित मूरति मानी। वारिधिसम गुण कहूं, खारमें कौन भलप्पन ॥ पारससम जस कहूं, आपसम करै न पर-तन[4]॥ इन आदि पदारथ लोकमें, तुम[5]समान क्यों

---

१ कल्याणकी, आत्महितकी। २ पापरूप अग्निसे तप्त।
३ सूर्यसदृश। ४ पराये शरीरको अर्थात् दूसरी धातुओंको।
५ पटतर, उपमा।

दीजिये। तुम महाराज अनुपम दशा मोहि अनूपम कीजिये ॥४॥

तब विलंब नहिं कियो, चीर द्रोपदिको बाढ्यो। तब विलंब नहिं कियो, सेठ सिंहासन चाढ्यो॥ तब विलंब नहिं कियो, सीय पावकतैं टार्यो। तब विलंब नहिं कियो, नीरें मातंग उबार्यो॥ इहिविधि अनेकदुख भगतके, चूर दूर किय सुख अवनि। प्रभु मोहि दुःख नासनि-विषै, अब विलंब कारण कवन ॥५॥

कियो भौनतैं गौन, मिटी आरति संसारी। राह आन तुम ध्यान, फिकर भाजी दुखकारी देखे श्री जिनराज, पाप मिथ्यात विलायो। पूजाश्रुति बहुभगति, करत सम्यकगुण आयो इस मारवाडसंसारमें कल्पवृक्ष तुम दरश है। प्रभु मोहि देहु भौ भौ विषै, यह वांछा मन सरस है ॥६॥

---

१ जलमें स। २ हाथी। ३ पृथिवीमे। ४ घरसें। ५ गमन। ६ मारवाड़रूपी (वृक्षरहित सूखे देशरूपी) ससारमें।

जै जै श्रीजिनदेव सेवतुमर्ग अघनाशक। जै जै श्रीजिनदेव सर्वे षटद्रव्य प्रकाशक॥ जै जै श्रीजिनदेव, एक जो शर्नो यावें। जै जै श्री जिनदेव, टेव अहमेव मिटावें। जै जै श्रीजिन देव प्रभु, हेय करमरिपु दलनकों। हूजे सहाय संघरायजी, हम तयार शिवचलनकों॥ ७॥

जै जिनंद आनंदकंद, सुरवृंदवंद्यपद। ज्ञानवान सब जान, सुगुन मनिखान आनपद॥ दीनदयाल कृपाल, भविक भौजाल निकालक। आप बूझ सब सूझ, गूझ नहि बहुजन पालक। प्रभु दीनबंधु करुनामयी, जगउधरन तारनतरन दुखरासनिकास स्वदासकों, हमे एक तुमही सरन॥८॥

देखनीक लखिरूप, वंदिकरि वंदनीक हुव। पूजनीक पद पूज, ध्यानकरि ध्यावनीक ध्रुव॥ हरष बढाय बजाय, गाय जस अंतरजामी। दरब चढाय अघाय, पाय संपति निधि स्वामी

१ भेद। २ गद ऐसा भी पाठ है। ३ गुप्तछिपी ४ देखनेलायक।

तुमगुण अनेक मुख एकसों कौन भांति बर-
नन करौं । मनवचनकायबहुप्रीतिसौं, एक
नामहीसौं तरौं ॥९॥

चैत्यालय जो करै, धन्य सो श्रावक कहिये ।
तामैं प्रतिमा धरै, धन्य सो भी सरदहिये ॥ जो
दोनों विस्तरै, संघनायक ही जानों । बहुत
जीवकों धर्म,—मूलकारन सरधानों । इस दुख-
मकाल विकरालमें, तेरो धर्म जहां चलै । हे नाथ
काल चौथो तहां, ईति[1] भीति[2] सबही टलै ॥१०॥

दर्शन दशक कवित्त, चित्तसों पढै त्रिकालं ।
प्रीतम सनमुख होय, खोय चिंता गृहजालं ॥
सुखमें निसिदिन जाय, अंत सुरराय कहावै ।
सुर कहाय शिव पाय, जनम मृति जरा मिटावै ॥
धनि जैनधर्म दीपक प्रगट, पाप तिमिर छय-
कार है । लखि साहिबराय सुआँखसों, सरधा-
तारनहार है ॥ ११ ॥ इति ॥

---

१ अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि सात । २ इहलोक परलोक भय आदि सात ।

१३ । दर्शनस्तुति

छप्पय ।

तुव जिनंद दिट्ठियो, आज पातक सब भज्जे तुव जिनंद दिट्ठियो, आज वैरी सब लज्जे ॥ तुव जिनंद दिट्ठियो, आज मैं सरवस पायो । तुव जिनंद दिट्ठियौ आज चिंतामणि आयौ ॥ जै जै जिनंद त्रिभुवन तिलक आज काज मेरो सर्यो । कर जोरि भविक विनती करत, आज सकल भवदुख टर्यो ॥ १ ॥ तुव जिनंद ममदेव सेव मैं तुमरी करिहौं । तुव जिनंद मम देव, नाथ तुम हिरदै धरिहौं । तुव जिनंद मम देव, तुही साहिब मैं बंदा । तुव जिनंद मम देव, मही कुमुदनि तुम चंदा ॥ जै जै जिनंद भवि कमल रवि, मेरो दुःख निवारिकै । लीजै निकाल भव जालतैं, अपनो भक्त विचारकै ॥२॥

१४ । दौलतरामजीकृत दर्शनस्तुति

सकल ज्ञेयज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन । सो जिनेंद्र जयवंत नित अरिरजरहसविहीन ॥१॥

पद्धरि छंद।

जय वीतराग विज्ञानपूर। जय मोहतिमिरको हरन सूर॥ जय ज्ञानअनंतानंत धार। दृगसुख वीरजमंडित अपार॥२॥ जय परमशांत मुद्रा समेत। भविजनको निज अनुभूति हेत॥ भवि भागनवचजोगेवशाय। तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नसाय॥३॥ तुमगुण चिंतत निजपरविवेक। प्रगटै विघटै आपद अनेक॥ तुम जगभूषण दूषणवियुक्त। सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त॥४॥ अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप। परमात्म परम पावन अनूप॥ शुभअशुभविभाव अभाव कीन। स्वाभाविकपरिणतिमयअछीन॥५॥ अष्टादश-दोषविमुक्त धीर। सुचतुष्टयमय राजत गँभीर॥ मुनिगणधरादि सेवत महंत। नवकेवललब्धि-रमा धरंत॥६॥ तुम शासन सेय अमेय जीव। शिव गये जाहिं जैहैं सदीव। भवसागरमें दुख छार वारि। तारनको अवरन आप टारि॥७॥ यह लखि निज दुखगदहरणकाज। तुमही

निमित्तकारण इलाज,—जाने तातैं मैं शरण आय। उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥८॥ मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप। अपनाये विधि फल पुण्य पाप। निजको परको करता पिछान। पर मैं अनिष्टता इष्टि ठान ॥ ९ ॥ आकुलित भयो अज्ञान धारि। ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ॥ तनपरणतिमें आपो चितार। कबहू न अनुभयो स्वपदसार ॥१०॥

तुमको विन जाने जो कलेश। पाये सो तुम जानत जिनेश ॥ पशुनारकनरसुरगतिमँझार। भव धर धर मर्‍यो अनंत बार ॥ ११ ॥ अब काललब्धिबलतैं दयाल। तुम दर्शन पाय भयो खुश्याल ॥ मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद्व चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद ॥ १२ ॥ तातैं अब ऐसी करहु नाथ। विछुरै न कभी तुव चरण साथ ॥ तुम गुणगणको नहिं छेव देव। जग तारनको तुव विरद एव ॥ १३ ॥ आतम के अहित विषय कषाय। इनमें मेरी परिणति

न जाय ॥ मैं रहूं आपमें आप लीन । सो होउँ ज्यों निजाधीन ॥ १४ ॥ मेरे न चाह कछु और ईश । रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश ॥ मुझ कारजके कारन सु आप । शिव करहु, हरहु मम मोहताप ॥ १५ ॥ शशि शांतिकरन तपहरन हेत । स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ॥ पीवत पियूष ज्यों रोग जाय । त्यों तुम अनुभवतें भव नसाय ॥१६॥ त्रिभुवनतिहुँकाल मँझार कोय । नहिं तुम विन निज सुखदायहोय ॥ मोउर यह निश्चय भयो आज । दुखजलधिउतारन तुम जिहाज ॥ १७ ॥

दोहा--तुम गुणगणमणि गणपती. गनत न पावहिं पार । 'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूं त्रियोगसँभार ॥ १८ ॥ इति ॥

१५ । भूधरकृत दर्शनस्तुति ।

हरिगीतिका ।

पुलकंत नयन चकोर पक्षी, हँसत उर इंदी-

वरो। दुर्बुद्धि चकवी विलख विछुरी, निविड मिथ्यातम हरो॥ आनंद अंबुधि उमगि उछर्‍यो, अखिल आतप निरदले। जिनवदन पूरनचंद्र निरखत, सकल मनवांछित फले॥ १॥ मम आज आतम भयो पावन, आज विघन विनाशिया। संसारसागर नीर निवड्यो, अखिल तत्त्व प्रकाशिया॥ अब भई कमला किंकरी मम, उभय भव निर्मल थये। दुख जर्‍यो दुर्गति वास निवड्यो, आज नव मंगल भये॥ २॥ मनहरन मूरति हेरि प्रभुकी, कौन उपमा लाइये। मम सकल तनके रोम हुलसे हर्षओर न पाइये। कल्याणकाल प्रतच्छ प्रभुको, लखैं जे सुरनर घने। तिहसमयकी आनंद महिमा, कहत क्यों मुख सों बने॥ ३॥ भर नयन निरखे नाथ तुमको और वांछा ना रही। मन ठठ मनोरथ भये पूरन रंक मानों निधि लही॥ अब होउ भव भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिये। कर जोर भूधरदास विनवै, यही वर मोहि दीजिये॥४॥

१६ दर्शनपाठ ।

प्रभु पतितपावन मैं अपावन. चरन आयो सरन जी । यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरनजी । तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविधप्रकारजी । या बुद्धिसेती निज न जाण्यो, भ्रम गिण्यो हितकारजी ॥ १ ॥ भवविकटवनमें करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हर्‍यो । तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्टगति धरतो फिर्‍यो ॥ धन घडी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो । अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुको लखलयो ॥ २ ॥ छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं । वसु प्रातिहार्य अनंत गुण जुत, कोटि रवि छविको हरैं ॥ मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदयरवि आतम भयो । मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो ॥३॥ मैं हाथ जोड नवाय मस्तक, वीनऊं तुव चरन जी । सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन तरन जी ॥ जाचूं नहीं सुरवास पुनि, नरराज

परिजन साथजी। बुध जाचहूं तुव भक्ति भव भव, दीजिये शिवनाथजी ॥ इति ॥

१७। ब्रह्मचारी ज्ञानानंदकृत दर्शन

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया। अवतक तुमको विनजाने, दुख पाये निज गुण हाने ॥ पाये अनंते दुःखअवतक, जगतको निज जानकर। सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर धर्म नहिं पहिचानकर ॥ भवबंध कारक सुखप्रहारक विषयमें सुखमानकर। निजपर विवेचक ज्ञानमय सुखनिधि सुधा नहिं पानकर ॥१॥ तव पद मम उरमें आये, लखिकुमति विमोह पलाये। निजज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहितमें लागी ॥ रुचिलगी हितमें आत्मके, सतसंगमें अव मन लगा। मनमें हुई अव भावना, तव भक्तिमें जाऊँ रँगा ॥ प्रियवचनकी हो टेव गुणि गुण गानमें ही चितपगै। शुभ शास्त्रका नितहो मनन, मन दोषवादनतें भगै ॥२॥ कब समता उरमें लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर। ममता-

भव भूतभगाकर, मुनिव्रत धारूं वन जाकर ॥ धरकर दिगंबररूप कब, अठवीसगुण पालन करूं । दोवीस परिषह सह सदा, शुभधर्म दश धारन करूं ॥ तप तपूं द्वादशविधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूं । अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्मरिपुको निर्जरूं ॥ ३ ॥ कब धन्य सुअवसर पाऊं, जब निजमें ही रमजाऊं । कर्ता-दिक भेद मिटाऊं, रागादिक दूर भगाऊं ॥ कर दूर रागादिक निरंतर, आतमको निर्मल करूं । बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूं ॥ आनंदकंद जिनंद बन उपदेशको नित उच्चरूं । आवै 'अमर' कब सुखद दिन 'जब' दुखद भवसागर तरूं ॥४॥ इति ॥

१८ । श्रीदर्शनपचीसी ।

तुम निरखत मुझको मिली, मेरी संपति आज ।
कहां चक्रवर्तिसंपदा, कहां स्वर्ग साम्राज ॥ १ ॥
तुम वंदत जिनदेवजी, नित नव मंगल होय ।
विघ्न कोटि ततछिन टरैं, लहहिं सुजस सब

ज्ञेय ॥ २॥ तुम जाने विन नाथजी. एक स्वा-
सके माहि । जन्ममरण अठदश किये. साता
गई नाहि ॥३॥ अन्य देव पूजत लहे. दुःख
नरकके बीच । भूखप्यास पशुगति सही. करचो
निरादर नीच ॥ ४ ॥ नाम उचारत सुख लहै.
दर्शनसो अघ जाय । पूजत पावै देव पद. ऐसे
हैं जिनराय ॥ ५ ॥ वंदत हूं जिनराज मैं. धर
उर समताभाव । तनधनजन—जगजालतें
धर विरागताभाव ॥ ६ ॥ सुनो अरज हे नाथ
जी. त्रिभुवनके आधार । दुष्टकर्मका नाशकर.
वेगि करो उद्धार ॥ ७ ॥ जाचत हूं मैं आपसों
मेरे जियके माहि । राग रोषकी कल्पना. क्यों
हू उपजै नाहि ॥ ८ ॥ अति अद्भुत प्रभुता
लखी. वीतरागतामाहि । विमुख होहिं ते दुख
लहैं. सन्मुख सुखी लखाहि ॥ ९ ॥ कलमल
कोटिक नहि रहैं. निरखत ही जिनदेव । ज्यों
रवि ऊगत जगतनें. हरै तिमिर स्वयमेव ॥१०॥
परमाणू पुद्गलतणी. परमातमसंजोग । भई पूज्य

सब लोकमें. हरे जन्मका रोग ॥ ११ ॥ कोटि जन्ममें कर्म जो. बांधे हुते अनंत। ते तुम छवी बिलोकितें, छिनमें हो है अंत ॥ १२ ॥ आन नृपति किरपा करें, तब कछु दे धन धान। तुम प्रभु अपने भक्तको. करल्यो आप समान ॥१३॥ यंत्र मंत्र मणि औषधी, विषहर राखत प्रान। त्यों जिनछवि सब भ्रम हरे, करे सर्व परधान। १४ ॥ त्रिभुवनपति हो ताहितें, छत्र विराजें तीन। अमरा नाग नरेशपद. रहें चरन आधीन ॥ १५ ॥ भवि निरखत भव आपने. तुव भामंडल बीच। भ्रम मेटें समता गहें. नाहिं लहे गति नीच ॥ १६ ॥ दोइ ओर ढोरत अमर. चौंसठ चमर सफेद। निरखत भविजनका हरें. भव अनेकका खेद ॥ १७ ॥ तरु अशोक तुव हरत है भविजीवनका शोक। आकुलता कुल मेटि कें. करे निराकुल लोक ॥ १८ ॥ अंतर बाहिर परिगहन. त्यागा सकल समाज। सिंहासन पर रहत हैं. अंतरीक्ष जिनराज ॥ १९ ॥ जीत भई

रिपु मोहतें. यश सूचत है तास। देव दुंदुभिनके सदा, वाजे बजें अकाश ॥ २० ॥ विन अक्षर इच्छारहित, रुचिर दिव्यध्वनि होय। सुरनरपशु समझें सवै, संशय रहै न कोय ॥ २१ ॥ वरसत सुरतरुके कुसुम, गुंजत अलि चहुं ओर। फैलत सुजस सुवासना, हरपत भवि सब ठौर ॥२२॥ समुद वाघ अरु रोग अहि, अर्गल बँध संग्राम। विघ्न विषम सबही टरैं, सुमरत ही जिननाम ॥ २३॥ सिरीपाल चंडाल पुनि, अंजन भीलकुमार। हाथी हरि अरि सब तरे, आज हमारी वार ॥ २४॥ बुधजन यह विनती करै. हाथ जोड शिर नाय। जबलों शिव नहिं होय तुव. भक्ति हृदय अधिकाय ॥ २५ ॥

इसप्रकार एक या दो कोई भी स्तुति पढकर पुन: साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। तत्पश्चात् नीचे लिखा श्लोक पढ़कर गंधोदक मस्तक पर डालना तथा ललाट हृदयादि उत्तम अगोंमें भी लगाना चाहिये।

१६। गंधोदक लेनेका मंत्र।

निर्मलं निर्मलीकरं पवित्रं पापनाशकं।

जिन गंधोदकं वंदे कर्माष्टकविनाशकं ॥ १ ॥
निर्मलसे निर्मल अती. अघनाशक सुखसीर।
वंदू जिनअभिषेककृत. यह गंधोदक नीर ॥

२० । आशिका लेनेका दोहा ।

श्रीजिनवरकी आशिका लीजे शीश चढाय।
भवभवके पातक कटैं. दुःख दूर हो जांय ॥१॥

तत्पश्चात् नीचे लिखे दो कवित्त पढ़कर जहा शास्त्रजी विराजमान हों, वहा शास्त्रजीको (जिनवाणीको) साष्टाग नमस्कार करके शास्त्रजी सुनना चाहिये अथवा थोडी बहुत किसी भी शास्त्रकी स्वाध्याय करना चाहिये ।

२१ शास्त्रजीको नमस्कार करनेके कवित्त ।

वीर हिमाचलतैं निकरी. गुरु गौतमके मुख कुंड ढरी है। मोहमहाचल भेद चली. जगकी जडतातप दूर करी है ॥ ज्ञान पयोनिधिमांहि रली. बहुभंगतरंगनिसों उछरी है। ता शुचि शारद गंगनदी प्रति. मैं अंजुलिकर शीश धरी है ॥१॥ या जगमंदिरमें अनिवार अज्ञान अँधेर छयो अति भारी। श्रीजिनकी धुनि दीपशिखासम. जो नहिं होत प्रकाशन-हारी ॥ तो किसभांति

स्वारथपांति. कहां लहते. रहते अविचारी । या विधि संत कहैं धनि हैं. धनि हैं जिनवैन बड़े उपकारी ॥ २ ॥

पाठकोंको इसीप्रकार स्तोत्र पढ़के तत्पश्चात् दीपधूपले नीचे लिखी अथवा जिसपर रुचि हो वह आरती करना चाहिये ।

२२. पंचपरमेष्ठीकी आरती ।

चाल दड़ी ।

मनवचतनकर शुद्धपंचपद. पूजें भविजन सुखदाई । सबजन मिलकर दीप धूप ले. करहिं आरती गुण गाई ॥ टेक ॥ प्रथमहिं श्रीअरहंत परमगुरु चौंतिस अतिशयसहित वसें । प्रातिहार्य वसु अतुल चतुष्टय. सहित समवसृत मांहि लसें क्षुधा तृषा भय जन्म जरा मृति. गद रति चिंता शोक महा । विस्मय स्वेद खेद मद निद्रा. राग रोष मिल मोह दहा. इन अष्टादश दोषरहितनित इंद्रादिक पूजत आई । सब०१। दूजे सिद्ध सदा सुखदाता. सिद्धशिलापर राजत हैं । सम्यक्-दर्शन ज्ञान वीर्य अरु.सूक्ष्मपणाकरि छाजत हैं: अगुरुलघू अवगहनशक्तिधर बाधाविन अश-

रीरा है। तिनका सुमिरण नित्य कियेतैं. शीघ्र नशत भवपीरा है ॥ या कारण नित चित्त शुद्ध कर.भजहु सिद्ध शिवके राई ।सब०॥२॥ तीजे श्रीआचार्य परमगुरु छत्तिस गुणके धारी हैं। दर्शन ज्ञान चरण तप वीरज पंचाचार प्रचारी हैं ॥ द्वादशतप दशधर्म गुप्तित्रय षट आवश्यक नित पालैं। सब मुनिजनको प्रायश्चित दे.मुनि व्रतके दूषण टालैं ॥ ऐसे श्रीआचार्य गुरुनकी पूजा करिये चितलाई ।सब० ।३। चौथे—श्रीउव-झाय चरणपंकजरज. सुखदा भविजनको । ग्यारह अंग सु पूर्वचतुर्दश पढैं पढावैं मुनिगन को ॥ मुनिके सब आचरण आचरैं द्वादशतपके धारी हैं। स्यादवाद सुखकारी विद्या. सबजगमें ऽस्तारी हैं ॥ ऐसे श्रीउवझाय गुरुनके चरण-गल पूजहु भाई। सब०।४। पंचमि आराति सर्व धुकी आठवीस गुण मूल धरैं । पंच महाव्रत समिति धर. इंद्रिय पांचों दमन करैं ॥ षट्-ावश्यक केशलोंच इकबार खडे भोजन करते।

दांतणस्नान त्याग भू सोवत. यथाजात मुद्रा धरते ॥ या विधि 'पन्नालाल' पंचपद. पूजत भवदुख नशजाई । सब जन मिलकर दीप धूप ले. करहिं आरती गुणगाई ॥५॥

इसप्रकार आरती बोलकर नीचे लिखा श्लोक, दोहा और मंत्र पढकर आरती मस्तक परचढावे ।

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्वमोहांधकारप्रतिघात- दीपान् । दीपैःकनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेंद्रसि- द्धांतयतीन्यजेऽहं ॥

स्वरप्रकाशनज्योति अति. दीपक तमकरहीन । जासों पूजों परमपद. देवशास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्व- पामीति स्वाहा ।

२३—धूप खेनेका श्लोक मंत्र ।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून् । धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् य- जेऽहं ॥२॥

दोहा--अगनिमाहिं परिमलदहन, चंदनादि गुण लीन। जासों पूजूं परमपद, देवशास्त्रगुरु तीन॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

दूसरा अध्याय ।

अभिषेक नित्यपूजादि संग्रह ।

२४ । अथ पंचमंगल ।

ये पांचों मङ्गल अभिषेकके समय न बोलकर सामग्री बनाते समय बोल लेना चाहिये ।

पणविवि पंच परमगुरु गुरु, जिनसासनो ।
सकलसिद्धिदातार सु, विघन विनासनो ॥
सारद अरु गुरु गौतम, सुमतिप्रकासनो ॥
मंगल कर चउ संघहि, पापपणासनो ॥
पापहि पणासन गुणहि गरुआ, दोष अष्टादश—रहिउ ।
धरिध्यान करमविनासि केवल-ज्ञान अविचल जिन लहिउ ॥
प्रभु पञ्चकल्याणक विराजित, सकल सुरनर ध्यावहीं ।
त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगत मङ्गल गावहीं ॥ १ ॥

१ । गर्भकल्याणक ।

जाके गरभकल्याणक, धनपति आइयो ।
अवधिज्ञान—परवान, सु इंद्र पठाइयो ॥

१—अनेक भाई इनका पाठ कुछका कुछ बोलने लगे हैं सो ठीक नहीं हमने बहुत प्राचीन प्रतिपरसे रूपचन्दजीकी खास व्रजभाषाकी कविताके अनुसार शुद्ध किया है सो इसप्रकार पढ़ना चाहिये ।

रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी ।
कनकरयणमणिमंडित, मंदिर अति बनी ॥
अति बनी पोरि पगारि परिखा, सुवन उपवन सोहये ।
नरनारि सुंदर चतुर भेख सु, देख जनमन मोहये ।
तहँ जनकगृह छहमास प्रथमहि, रतन धारा बरसियो ।
पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा करहिं सबविधि हरसियो ॥ १ ॥

सुरकुंजरसम कुंजर, धवल धुरंधरो ।
केहरि-केशरशोभित, नख सिखसुंदरो ॥
कमलाकलस-न्हवन, दुइ दाम सुहावनी ।
रविससि मंडल मधुर, मीन जुग पावनी ॥
पावनिकनक घट जुगम पूरन, कमलकलित सरोवरो ।
कल्लोलमालाकुलितसागर, सिंहपीठ मनोहरो ॥
रमणीक अमरविमान फणिपति-भुवन रवि छवि छाजई ।
रुचि रतनरासि दिपंत, दहन सु तेजपुंज विराजई ॥ २ ॥

ये सखि सोरह सुपने सूती सयनहीं ।
देखे माय मनोहर, पच्छिम रयनहीं ॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकाशियो ।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिहँ भासियो ॥
भासियो फल तिहि चिंत दंपति परम आनंदित भये ।
छहमासपरि नवमास पुनि तहँ, रैन दिन सुखसों गये ॥

गर्भावतार महंत महिमा सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मङ्गल गावहीं । । ॥

२। जन्मकल्याणक ।

मतिश्रुतअवधिविराजित, जिन जब जनमियो ।
तिहुंलोक भयो छोभित, सुरगन भरमियो ॥
कल्पवासि घर घंट, अनाहद बज्जिया ।
जोतिषघर हरिनाद, सहज गल गज्जिया ॥

बज्जिया सहजहिं संख भावन, भुवन सबद सुहावने ।
विंतरनिलय पटु पटह बज्जहि, कहत महिमा क्यों बने ॥
कंपित सुरासन अवधिबल जिन-जनम निहचै जानियो ।
धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो ॥ ५ ॥

जोजन लाख गयंद. वदन सौ निरमये ।
वदन वदन वसुदंत. दंत सर संठये ॥
सरसर-सौ पनवीस. कमलिनी छाजहीं ।
कमलिनि कमलिनि कमल पचीस विराजहीं ॥

राजहीं कमलिनी कमलऽठोतर सौ मनोहर दल बने ।
दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हाव भाव सुहावने ॥
मणि कनककिंकणि वर विचित्र, सु अमरमण्डप सोहये ।
घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये ॥ ६ ॥

तिहिं करि हरि चढि आयउ. सुरपरिवारियो ।

पुरिहि प्रदच्छन दे त्रय. जिन जयकारियो ॥
गुप्तजाय जिन-जननिहिं. सुखनिद्रा रची।
मायामयि सिसु राखि तौ. जिन आन्यो सची ॥
आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपित न हूजिये।
तब परम हरषित हृदय हरणा सहस लोचन १पूजिये।
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछग धरि प्रभु लीनऊ।
ईसान इंद्र सु चंद्र छवि सिर, छत्र प्रभुके दीनऊ ॥ ७ ॥
सनतकुमार माहेंद्र. चमर दुइ ढारहीं।
सेस सक्र जयकार. सबद उच्चारहीं ॥
उच्छवसहित चतुरविधि. सुर हरषित भये।
जोजन सहस निन्यानव. गगन उलँघि गये ॥
लँघिगये सुरगिर जहा पाडुक, वन विचित्र विराजहीं।
पांडुक शिला तहँ अर्द्धचंद्र समान, मणि छवि छाजहीं ॥
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊची गनी।
वर अष्ट-मङ्गल-कनक कलसनि सिंहपीठ सुहावनी ॥ ८ ॥
रचि मणिमंडप सोभित. मध्य सिंहासनो।
थाप्यो पूरव मुख तहँ, प्रभु कमलासनो ॥
बाजहिं ताल मृदंग. वेणु वीणा घने।
दुंदुभि प्रमुख मधुरधुनि, अवर जु बाजने ॥

१—पूजिये अर्थात् पूरण किये—बनाये।

बाजने बाजहिं सची सब मिलि, धवल मङ्गल गावहीं।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं॥
भरि छीरसागर जल जु हाथहिं, हाथ सुरगिरि ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ईशान इंद्र सु कलस ले प्रभु न्हावहीं॥ ६॥

बदन उदर अवगाह, कलसगत जानिये।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये॥
सहस-अठोतर कलसा, प्रभुके सिर ढरईं।
पुनि सिंगार प्रमुख, आचार सबै करईं॥

करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव, आनि पुनि मातहिं दये।
धनपतिहि सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गये॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मङ्गल गावहीं॥ १०॥

३—तपकल्याणक।

श्रमजलरहित सरीर, सदा सब मलरहिउ।
छीर वरन वर रुधिर, प्रथम आकृति लहिउ॥
प्रथम सार संहनन, सरूप विराजहीं।
सहज सुगंध सुलच्छन, मंडित छाजहीं॥

छाजहिं अतुलबल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने।
दस सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने।
आबाल काल त्रिलोकपति मन, रुचिर उचित जु नित नये।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगये॥ ११॥

भवतन-भोग-विरत्त, कदाचित चित्तए ।
धन जोबन पिय पुत्त, कलत्त अनित्तए ॥
कोउ न सरन मरनदिन, दुख चहुंगति भरचो ।
सुखदुख एकहि भोगत, जिय विधिवसिपरचो ॥
परचो विधिवसि आन चेतन, आन जड जु कलेवरो ।
तन असुचि परतैं होय आस्रव, परिहरेतैं संवरो ।
निरजरा तपबल होय, समकित,-विन सदा त्रिभुवन भम्यो ।
दुर्लभ विवेक विना न कबहूं परम धरमविषै रम्यो ॥ १२ ॥
ये प्रभु वारह पावन, भावन भाइया ।
लौकांतिक वर देव, नियोगी आइया ॥
कुसुमांजलि दे चरन, कमल सिर नाइया ।
स्वयंबुद्ध प्रभु थुतिकर, तिन समुझाइया ॥
समुझाय प्रभुको गये निजपुर, पुनि महोच्छव हरि कियो ।
रुचिरुचिर चित्र विचित्र सिविका,-करसु नदन-वन लियो ।
तहँ पचमुट्ठी लोंच कीनों, प्रथम सिद्धनि थुति करी ।
मंडिय महाव्रत पच दुद्धर सकल परिगह परिहरी ॥ १३ ॥
मणिमयभाजन कैस परिट्ठिय सुरपती ।
छीरसमुद-जल खिपकरि, गयो अमरावती ॥
तपसंयमबल प्रभुको, मनपरजय भयो ।
मौनसहित तप करत, काल कछु तहँ गयो ॥

गयो कछु तहं काल तपबल, रिद्धि वसुविधि सिद्धिया ॥
जसु धर्मध्यानबलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धिया।
खिपि सातवें गुण जतनविन तहँ, तीन प्रकृति जु बुधि बढिउ।
करि करण तीन प्रथम सुकलबल, खिपकसेनी प्रभु चढिउ ॥१४॥

प्रकृति छतीस नवें-गुण, थान विनासिया।
दसवें सूच्छमलोभ, प्रकृति तहँ नासिया ॥
सुकल ध्यानपद दूजो, पुनि प्रभु पूरियौ।
बारहवें-गुण सोरह, प्रकृति जु चूरियौ ॥

चूरियौ त्रेसठ प्रकृति इहविधि, घातियाकरमनितणी।
तप कियो ध्यानप्रयत बारह-विधि त्रिलोकसिरोमणी ॥
निःक्रमणकल्याणक सु महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मङ्गल गावहीं ॥ १५ ॥

४—ज्ञानकल्याणक।

तेरहवें गुण-थान सयोगि जिनेसुरो।
अनँतचतुष्टयमंडिय, भयो परमेसुरो ॥
समवसरन तब धनपति, बहुविधि निरमयो ॥
आगमजुगति प्रमान, गगनतल परिठयो ॥

परिठयो चित्र विचित्र मणिमय, सभामण्डप सोहये।
तिहिंमध्य बारह बने कोठे, वनक सुरनर मोहये।
मुनि कलपवासिनि अरजिका पुनि ज्योति भौमि-भवनतिया।
पुनि भवनव्यतर नभग सुरनर पसुनि कोठे बैठिया ॥ १६ ॥

मध्यप्रदेश तीन, मणिपीठ तहां बने ।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने ॥
तीन छत्र सिर सोहत त्रिभुवन मोहए ।
अंतरीच्छ कमलासन, प्रभुतन सोहए ॥
सोहये चौसठ चमर ढरत, अशोकतरुतल छाजए ।
पुनि दिव्यधुनि प्रतिसबदजुत तहँ, देव दुंदभि बाजए ।
सुरपुहुपवृष्टि सुप्रभामण्डल, कोटि रवि छवि छाजए ।
इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजए ॥ १७ ॥
दुइसै जोजनमान सुभिच्छ चहूं दिसी ।
गगनगमन अरु प्राणी, वध नहिं अहनिसी ॥
निरुपसर्ग निरहार, सदा जगदीशए ।
आनन चार चहूंदिसि, सोभित दीसए ॥
दीसय असेस विसेस विद्या, विभव वर ईसुरपना ।
छायाविवर्जित सुद्ध फटिक समान तन प्रभुका बना ॥
नहिं नयनपलकपतन कदाचित, केस नख सम छाजहीं ।
ये घातियाछयजनित अतिशय, दस विचित्र विराजहीं ॥ १८ ॥
सकल अरथमय मागधि-भाषा जानिए ।
सकल जीवगत मैत्री-भाव बखानिए ॥
सकलरितुज फलफूल, वनस्पति मन हरै ।
दरपनसम मनि अवनि, पवन गतिअनुसरै ॥

अनुभव्यो परमानंद सुखसों, नारि नर जो सेवता ।
जोजन प्रमान धरा सुमार्जहिं, जहां मारुत देवता ॥
पुनिकरहिं मेघकुमार गंधोदक सुवृष्टि सुहावनी ।
पदकमलतर सुरखिपहिं कमलसु, धरणि ससिसोभा बनी ॥

अमलगगनतल अरु दिसि, तहँ अनुहारहीं ।
चतुरनिकाय देवगण, जय जयकारहीं ॥
धर्मचक्र चले आगें, रविजहँ लाजहीं ।
पुनि भृंगार-प्रमुख वसु मंगल राजहीं ॥

राजहीं चौदह चारु अतिशय, देव रचित सुहावने ।
जिनराज केवलज्ञानमहिमा, अवर कहत कहा बने ॥
तब इंद्र आय कियो महोच्छव, सभा शोभा अति बनी ।
धर्मोपदेश दियो तहां, उच्चरिय वानी जिनतनी ॥ २० ॥

क्षुधातृषा अरु रोग, रोष असुहावने ।
जनम जराअरु मरण, त्रिदोष भयावने ॥
रोग सोग भय विस्मय, अरु निद्रा घनी ।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गनी ॥

गनिये अठारह दोष तिनकरि रहितदेव निरंजनो ।
नव परम केवललब्धिमंडित सिवरमनि मनरंजनो ॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ २१ ॥

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो।
भव्यनिप्रति उपदेस्यो, जिनवर तारिसो॥
भवभयभीत भविकजन, सरणै आइया॥
रत्नत्रयलच्छन सिवपंथ लगाइया॥
लगाइया पथ जु भव्य पुनि प्रभु, तृतिय सकल जु पूरियो।
तजि तेरवा गुणथान जोग, अजोगपथपग धारियो॥
पुनि चौदहें चौथे सुकलबल, बहत्तर तेरह हती।
इमि घाति वसुविध कर्म पहुँच्यो, समयमैं पचमगती॥२२॥

लोकसिखर तनुवात,-वलयमहँ संठियो।
धर्मद्रव्यविन गमन न जिहि आगैं कियो॥
मयनरहित मूषोदर, अंवर जारिसो।
किमपि हीन निजतनुतैं, भयो प्रभु तारिसो॥
तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय छनछयी।
निश्चयनयेन अनंतगुण, विवहार नय वसुगुणमयी॥
वस्तुस्वभाव विभावविरहित, सुद्ध परिणति परिणयो।
चिद्रूपपरमानंदमंदिर, सिद्ध परमातम भयो॥ २३॥

तनुपरमाणू दामिनिपर, सब खिरगए।
रहे सेस नखकेश-रूप, जे परिणए॥

१—जारिसो—जैसा। २—तारिसो—तैसा

तब हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभसच्यो ।
मायामयि नख केशरहित, जिनतनु रच्यो ॥
रचि अगरचंदन प्रमुख परिमल, द्रव्य जिन अपकारियों ।
पदपतित अगनिकुमार मुकुटानल, सुविध संस्कारियो ॥
निर्वाण कल्याणक सु महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि "रूपचंद" सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥२४॥

मैं मतिहीन भगतिवस भावन भाइया ॥
मंगल गीतप्रबंध, सु जिनगुण गाइया ॥
जो नर सुनहिं, बखानहिं सुर धरि गावहीं ।
मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं ॥
पावहीं आठों सिद्धि नवनिधि, मन प्रतीत जो लावहीं ।
भ्रम भाव छूटै सकल मनके, निजस्वरूप लखावहीं ॥
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन, सु होंहिं मंगल नितनये ।
भणि 'रूपचंद' त्रिलोकपति, जिनदेव चउसंघहिं जये ॥२५॥

---

२५ लघु अभिषेक पाठ ।

जल दुग्ध दधि आदिसे पंचामृत अभिषेक करते समय बोलना । अगर संस्कृत पाठ पढ़ना नहीं आता हो तो आगे छपाहुआ भाषा पंचामृत अभिषेक पाठ बोलकर करना ।

श्रीमज्जिनेंद्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं स्याद्वादना-

यकमनंतचतुष्टयार्हम् । श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृ-
तैकहेतुर्जैनेंद्रयज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥१॥

(इस श्लोकको पढकर जिनचरणोंमें पुष्पांजलि छोडनी चाहिये)

श्रीमन्मंदरसुन्दरे शुचिजलैर्धौतैः सदर्भाक्षतैः
पीठे मुक्तिकरं निधायरचितं त्वत्पादपद्मस्रजः ।
इंद्रोऽहं निजभूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे
मुद्राकंकणशेखरान्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे ।२

(इस श्लोकको पढकर अभिषेक करनेवालोंको यज्ञोपवीत तथा अनेक (सच्चे या चदनके) आभूषण धारण करना चाहिये ।

सौगंध्यसंगतमधुव्रतझंकृतेन, संवर्ण्यमानामिव
गंधमनिंद्यमादौ । आरोपयामि विबुधेश्वरवृंद-
वंद्यपादारविंदमभिवंद्य जिनोत्तमानां ॥३॥

इसे पढकर अभिषेक करनेवालोंको अगमें चदनके नव अगह तिलक करना चाहिये ।

ये संति केचिदिह दिव्यकुलप्रसूता नागाः प्रभूत
बलदर्पयुता विबोधाः । संरक्षणार्थममृतेन शुभेन
तेषां प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिं ॥४॥

(इसको पढकर अभिषेकके लिये भूमि या चौकीका प्रक्षालन करे)

क्षीरार्णवस्य पयसांशुचिभिः प्रवाहैः प्रक्षालि-

तं भूरवैरेयंदनेकवारम् । अत्युद्धमुद्यनमहं जिन पादपीठं प्रक्षालयामि भवसंभवतापहारि ॥ ५ ॥

(जिसपर विराजमान करै उस सिंहासनका प्रक्षालन करै)

श्रीशारदासुमुखनिर्गतबीजवर्णं श्रीमंगलीकवरसर्वजनस्य नित्यं । श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नं श्रीकारवर्णलिखितं जिनभद्रपीठे

(इस श्लोकको पढ़कर सिंहासनपर श्रीकार लिखना चाहिये)

इंद्राग्निदंडधरनैर्ऋतपाशपाणि वायूत्तरेशशशिमौलिफणींद्रचंद्राः । आगत्य यूयमिह सानुचराः सचिह्नाः स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके ॥ ७ ॥

(नीचे लिखे मंत्रोंको पढ़कर क्रमसे दशदिक्पालोंके लिये अर्घ चढ़ावै)

१ ओं आं क्रों ह्रीं इंद्र आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा ।

२ ओं आं क्रों ह्रीं अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा ।

३ ओं आं क्रों ह्रीं यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा ।

४ ओं आं क्रों ह्रीं नैऋत आगच्छ आगच्छ नैऋताय स्वाहा ।

५ ओं आं क्रों ह्रीं वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा ।

६ ओं आं क्रों ह्रीं पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा ।

७ ओं आं क्रों ह्रीं कुबेर आगच्छ आगच्छ कुबेराय स्वाहा ।

८ ओं आं क्रों ह्रीं ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा ।

इति विसर्जनं ।

दध्युज्ज्वलाक्षतमनोहरपुष्पदीपैः पात्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण । त्रैलोक्यमंगलसुखानलकामदाहमारार्तिकं तव विभोरवतारयामि ॥

पं पांडुकामलशिलागतमादिदेवमस्नापयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि । कल्याणमीप्सुरहमक्षततोयपुष्पैः संभावयामि पुर एव नदीय बिंबं ॥१॥

सत्पल्लवार्चितमुखान्कलधौतरूप्यताम्रारकूटघटितान्पयसा सुपूर्णान् । संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान् संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकांते

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना

चंदनेन, श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदलचयैरुद्गमै रेभिरुद्धैः । हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमं दीपयद्भिः प्रदीपैः धूपैः प्रायोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं [illegible] परमदेवाय श्री अर्हत्पूजायै [illegible] निर्वपामीति स्वाहा ।

दूरावनम्रसुरनाथकिरीटकोटीसंलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरांघ्रिं । प्रस्वेदतापमलमुक्तमपि प्रकृष्टैर्भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाभिषिंचे ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं श्रीमतं भगवंतं कृपालसंतं वृषभादि महावीरपर्यंत-चतुर्विंशतितीर्थंकरपरमदेवं आद्यानां आद्ये जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे ··· नाम्नि नगरे मासानामुत्तमेमासे ···मासे···· पक्षे ···शुभदिने मुनिआर्यिका-श्रावकश्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषिंचे नमः ।१२

([illegible]) [illegible] ।

उत्कृष्टवर्णनवहेमरसाभिरामदेहप्रभावलयसंगमलुप्तदीप्तिं । धारां घृतस्य शुभगंध गुणानुमेयां

वंदेर्हतां सुरभिसंस्नपनोपयुक्तां ॥ १३ ॥

ऊपर लिखा पूरा मत्र पढकर मंत्रमें "जलेनाभिर्षिचे" की जगह 'घृतेनाभिषिचे' पढ़कर घृतके कलशसे स्नपन करना चाहिये)

संपूर्ण शारदशशांकमरीचिजालस्यंदैरिवात्म यशसामिव सुप्रवाहैः क्षीरैर्जिनाः शुचिरैरभि- षिंच्यमानाः संपादयंतु मम चित्तसमीहितानि ॥

(ऊपरके मत्रमे जलेनाभिर्सिचेकी जगह 'क्षीरेणाभिषिचे' पढ़कर दुग्धके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

दुग्धाब्धिवीचिपयसांचितफेनराशिपांडुत्वकांति- मवधीरयतामतीव। दध्नां गतां जिनपतेः प्रतिमां सुधारा संपद्यतां सपदि वांछितसिद्धये नः ॥१५॥

ऊपर लिखे मत्रमें 'जलेन' की जगह 'दध्ना' पढ़कर दधिके कल- शसे अभिषेक करना चाहिये।

भक्त्या ललाटतटदेशनिवेशितोच्चैः हस्तैश्च्युताः सुरवराऽसुरमर्त्यनाथैः। तत्काल पीलितमहेक्षुर- सस्य धारा सद्यः पुनातु जिनबिंबगतैव युष्मान् ॥

ऊपरके मत्रमे 'जलेन'की जगह 'इक्षुरसेन' पढकर इक्षुरसके कलशसे अभिषेक करना चाहिये।

संस्नापितस्य घृतदुग्धदधीक्षुवाहैः सर्वाभिरौष-

बिभिरर्हतउज्ज्वलाभिः। उद्वर्तितस्य विदधाम्य-
भिषेकमेलाकालेयकुंकुमरसोत्कटवारिपूरैः ॥१७॥

(ऊपरके मंत्रमें "जलेन" की जगह 'सर्वौषधेन' पढ़कर सर्वौ-
षधीके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुःसमाद्यैरामोदवासित-
समस्तदिगंतरालैः। मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुंग-
वानां त्रैलोक्यपावनमहं स्नपनं करोमि ॥१८॥

यहां 'जलेन' की जगह 'सुगन्धजलेन' पढ़कर चन्दन कपूर आदि
सुगंधित पदार्थों से बनाये जलसे स्नपन करना चाहिये।

इष्टैर्मनोरथशतैरिव भव्यपुंसां पूर्णैः सुवर्ण-
कलशैर्निखिलैर्वसानैः। संसारसागरविलंघनहेतु-
सेतुमाप्लावये त्रिभुवनैकपतिं जिनेंद्रं ॥१९॥

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकं
नागेंद्रत्रिदशेंद्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकं ॥
सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसंपादकं।
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन! स्नानस्य गंधोदकं

२६। अथ लघुपंचामृताभिषेक भाषा

घृत दुग्ध आदिसे पचामृत अभिषेक करना हो तो यह पाठ बोलना अथवा पचामृतके अभावमे सिर्फ जलधारासे काम लेना।

श्रीजिनवर चौवीस वर, कुनयध्वांतहर भान।
अमितवीर्यदृगबोधसुख, युत तिष्ठो इहि थान॥

नाराच छद।

गिरीश शीस पांडुपै, सचीश ईश थापियो।
महोत्सवो अनंदकंदको, सवै तहां कियो॥
हमें सो शक्ति नाहिं, व्यक्त देखि हेतुआपना।
यहां करैं जिनेंदचंद्रकी सुबिंब थापना॥२॥

(पुष्पाजलि क्षेपण करके श्रीवर्णपर जिनबिंबकी स्थापना करना)

सुन्दरी छद।

कनकमणिमय कुंभ सुहावने। हरि सुछीर भरे अति पावने। हम सुवासित नीर यहां भरैं। जगतपावन-पांय तरैं धरैं॥३॥

(पुष्पाजलि क्षेपण करके वेदीके कोनोंमें चार कलशोंकी स्थापना)

हरिगीतका छद।

शुद्धोपयोग समान भ्रमहर, परम सौरभ पावनो। आकृष्टभृंगसमूह गंग समुद्भवो अति

भावनो ॥ मणिकनककुंभ निसुंभकिल्विष. विमल शीतल भरि धरों। श्रम स्वेद मल निरवार जिन त्रय धार दे पांयनि परों ॥४॥

(मंत्रसे शुद्धजलकी शीत धारा जिनबिंबपर छोड़ना)

अति मधुर जिनधुनि सम सुप्राणित प्राणिवर्ग सुभावसों। बुधचित्तसम हरिचित्त नित्त, सुमिष्ट इष्ट उछावसों। तत्काल इक्षुसमुत्पप्रासुक रतनकुंभविषै भरों। यमत्रासतापनिवार जिन त्रयधार दे पांयनि परों ॥५॥

(उपरका मंत्र पढ़ इक्षुरसकी धारा देना)

निष्टप्तक्षिप्तसुवर्णमदद्मनीय ज्यों विधि जैनकी। आयुप्रदा बलबुद्धिदा रक्षा. सु यों जिय सैनकी ॥ तत्कालमंथित. क्षीर उत्थित. प्राज्य मणिझारी भरों। दीजै अनुल्बल मोहि जिन, त्रयधार दे पांयनि परों ॥६॥

(घृतरसकी धारा देना)

शरदभ्र शुभ्र सुहाटकद्युति. सुरभि पावन सोहनो। क्लीबत्वहर बल धरन पूरन. पयसकल

श्रीजिन जगमें ऐसो, को बुधवंत जू। जो तुम गुणवरनानि करि पावै अंत जू॥ इंद्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी। कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवनधनी॥

अनुपम अमित तुमगणनिवारिध, ज्यों अलोकाकाश है। किमि धरैं हम उर कोषमें सो अकथगुणमणिराश है॥ पै जिनप्रयोजन सिद्धि की तुम नाममें ही शक्ति है। यह चित्तमें सरधान यातैं नाम हीमें भक्ति है॥१॥ ज्ञानावरणी दर्शनआवरणी भने। कर्ममोहनी अंतराय चारों हने॥ लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञानमें। इंद्रादिकके मुकुट नये सुरथानमें॥ तब इंद्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरनयुत बंदत भयो। तुम पुन्यको प्रेर्यो हरी ह्वै मुदित धनपतिसों चयो॥ अब वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपदको करौ। साक्षात् श्रीअरहंतके दर्शन करौ कल्मष हरौ॥ २॥ ऐसे वचन सुने सुरपतिके

धनपती। चल आयो ततकाल मोद धारैं अती॥
वीतराग छवि देखि शब्द जय जय च्यौं। दे
परदच्छिना वार वार वंदत भयो॥ अति भक्ति
भीनो नम्रचित ह्वै समवशरण रच्यौं सही।
ताकी अनूपम शुभगतीको, कहन समरथ कोउ
नही॥ प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणि-
मय छाजही। नगजडित गंधकुटी मनोहर
मध्यभाग विराजही॥ ३॥ सिंहासन तामध्य
वन्यौं अदभुत दिपै। तापर वारिज रच्यो प्रभा
दिनकर छिपै॥ तीनछत्र सिर शोभित चौसठ
चमरजी। महाभक्तियुत ढोरत हैं तहां अमर
जी॥ प्रभु तरन तारन कमल ऊपर, अंतरीक्ष
विराजिया। यह वीतरागदशा प्रतच्छ विलोकि
भविजन सुख लिया॥ मुनि आदि द्वादश
सभाके भवि जीव मस्तक नायकें। वहुभांति
वारंवार पूजें, नमें गुणगण गायकें॥ ४॥ पर-
मौदारिक दिव्य देव पावन सही। क्षुधा तृषा
चिंता भय गद दूषण नही॥ जन्म जरा मृति

अरति शोक विस्मय नसे। राग रोष निद्रा मद मोह सबै खसे॥ श्रमविना श्रमजलरहित पावन अमल ज्योतिस्वरूपजी। शरणागतनिको अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी॥ ऐसे प्रभूकी शांतिमुद्राको न्हवन जलतैं करैं। 'जस' भक्तिवश मन उक्तितैं हम भानु ढिग दीपक धरैं॥ ५॥ तुमतौ सहज पवित्र यही निश्चय भयो। तुम पवित्रताहेत नहीं मज्जन ठयो॥ मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यो। महामलिन तनमैं वसुविधिवश दुख सह्यो॥ बीत्यो अनंतौ काल यह, मेरी अशुचिता ना गई। तिस अशुचिताहर एक तुम ही भरहु बांछा चित ठई॥ अब अष्टकर्म बिनाश सब मल रोषरागादिक हरौ। तनरूप कारागेहतैं उद्धार शिववासा करौ॥६॥ मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये। आवागमन विमुक्त रागवर्जित भये॥ पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही। नयप्रमानतैं जानि महा साता लही॥ पापाचरण तजि न्हवन करता चित्तमैं ऐसे धरूं।

साक्षात श्रीअरहंतका मानों न्हवन परसन करूं। ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबंध तैं। विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं है शर्म सब विधि तासतैं ॥ ७ ॥ पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतैं। पावन पान भये तुम चरननि परसतैं ॥ पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यानतैं। पावन रसना मानी, तुम गुण गानतैं ॥ पावन भई परजाय मेरी, भयौ मैं पूरणधनी। मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्णभक्ति नहीं बनी ॥ धन्य ते बडभागि भवि तिन नीव शिवघरकी धरी। वर क्षीरसागर आदि जलमणि कुंभभरि भक्ती करी ॥ ८ ॥ विघनसघनवनदाहन-दहन प्रचंड हो। मोहमहातमदलन प्रबल मारतंड हो ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो। जगविजयी जमराज नाश ताको करो ॥ आनंदकारण दुखनिवारण, परममंगल मय सही। मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित तार सुन्यौ नहीं ॥ चिंतामणी पारस कलपतरु,

एकभव सुखकार ही। तुम भक्तिनवका जे ते, भये भवदधि पार ही ॥९॥ दोहा—

तुम भवदधितें तरि गये, भये निकल अविकार
तारतम्य इस भक्तिको, हमें उतारो पार ॥१०॥

॥ इति हरजसराय कृत अभिषेक पाठ ॥

२८ विनयपाठ दोहावली।

इहि विधि ठाडो होयके, प्रथम पढै जो पाठ। धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ ॥१॥ अनंत चतुष्टयके धनी, तुमही हो सिरताज ॥ मुक्ति वधूके कंथ तुम, तीन भुवनके राज ॥२॥ तिहुं जगकी पीडाहरन, भवदधि शोषणहार। ज्ञायक हो तुम विश्वके, शिवसुखके करतार ॥३॥ हरता अघअंधियारके, करता धर्मप्रकाश। थिरतापददातार हो, धरता निजगुण रास ॥४॥ धर्मामृत उर जलधिसों, ज्ञानभानु तुम रूप। तुमरे चरणसरोजको, नावत तिहुं जग भूप ॥ ५ ॥ मैं वंदौं जिनदेवको, कर अति निरमल भाव ॥ कर्मबंधके छेदने, और न कछु

उपाव ॥ ६ ॥ भविजनकों भवकूपतें. तुमही काढनहार ॥ दीनदयाल अनाथपति. आतम गुणभंडार ॥७॥ चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल ॥ सरल करी या जगतमें भविजन को शिवगैल ॥ ८ ॥ तुमपदपंकज पूजतें. विघ्न रोग टर जाय ॥ शत्रु मित्रताकों धरें, विष निरविषता थाय ॥९॥ चक्रीखगधरइंद्रपद, मिलैं आपतें आप ॥ अनुक्रम कर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप ॥१०॥ तुम विन मैं व्याकुल भयो, जैसे जलविन मीन । जन्मजरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन ॥ ११ ॥ पतित वहुत पावन किये, गिनती कौन करेव । अंजनसे तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव ॥१२॥ थकी नाव भवदधिविषै, तुम प्रभु पार करेय । खेवटिया तुम हो प्रभू, जय जय जय जिनदेव ॥१३॥ रागसहित जगमैं रुल्यो, मिले सरागी देव । वीतराग भेट्यो अवैं, मेटो राग कुटेव ॥ १४ ॥ कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अज्ञान

आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ॥१५॥ तुमको पूजें सुरपती, अहिपति नरपति देव। धन्य भाग्य मेरो भयो, करनलग्यो तुम सेव ॥१६॥ अशरणके तुम शरण हो, निराधार आधार॥ मैं डूबत भवसिंधुमें खेओ लगाओ पार ॥१७॥ इंद्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान। अपनो विरद निहारिकैं, कीजे आप समान ॥१८॥ तुमरी नेक सुदृष्टितैं, जग उतरत है पार। हाहा डूब्यो जात हों, नेक निहार निकार ॥ १९ ॥ जो मैं कहहूं औरसों, तो न मिटै उरझार। मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार ॥ २० ॥ वंदों पाचौं परमगुरु, सुर गुरु वंदत जास। विघनहरन मंगलकरन, पूरन पूरन परम प्रकाश ॥ २१ ॥ चौवीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय। शिवमग साधक साधु नमि रच्यो पाठ सुखदाय ॥२२॥

---

२६ नित्य नियमपूजा।

अथ देव शास्त्रगुरुपूजा संस्कृत।

ओं जय जय जय। नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु। णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं। णमो उवज्झायाणं, णमोलोये सव्वसाहूणं ॥१॥ ओं ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः। (पुष्पांजलि क्षेपण करना) चत्तारि मंगलं—अरहंतमंगलं, सिद्धमंगलं, साहूमंगलं, केवलिपण्णत्तो, धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंतलोगुत्तमा सिद्धलोगुत्तगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मोलोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि॥ ओं नमोऽर्हते स्वाहा।

(यहा पुष्पाजलि क्षेपण करना)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंचनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

मनंतचतुष्टयार्हं। श्रीमूलसंघ सुदृशां सुकृतैक
हेतुर्जैनेंद्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥ ८ ॥
स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय, स्वस्ति-
स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय। स्वस्ति प्रकाश-
सहजोर्ज्जितदृङ्मयाय, स्वस्ति प्रसन्नललिता-
द्भुतवैभवाय ॥९॥ स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधा-
प्लवाय, स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय,
स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय, स्वस्ति त्रिका-
लसकलायतविस्तृताय ॥ १० ॥ द्रव्यस्य शुद्धि-
मधिगम्य यथानुरूपं, भावस्य शुद्धिमधिकामधि
गंतुकामः। आलंबनानि विविधान्यवलंब्यव-
ल्गन्, भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञं ॥ ११ ॥
अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि, वस्तून्यनूनमखि-
लान्ययमेकएव। अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोध
वह्नौ, पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥१२॥

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनंदनः।

श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः। श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचंद्रप्रभः। श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः। श्रीश्रेयांसः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः। श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनंतः। श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशांतिः। श्रीकुंथुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः। श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रतः। श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः। श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः।

(पुष्पांजलि क्षेपण)

नित्याप्रकंपाद्भुतकेवलौघाः स्फुरन्मनःपर्यय शुद्धबोधाः। दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१॥

पुष्पांजलि क्षेपणा। आगे भी प्रत्येक श्लोकके अंतमें पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये)

कोष्ठस्थधान्योपममेकबीजं संभिन्नसंश्रोतृपदानुसारि। चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ २ ॥ संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादनघ्राणविलोकनानि। दि[illegible]

न्मतिज्ञानबलाद्वहंत; स्वस्ति क्रियासुः परमर्ष-
यो नः ।३। प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येक-
बुद्धा दशसर्वपूर्वैः । प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तवि-
ज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।४। जंघावलि-
श्रेणिफलांबुतंतुप्रसूनबीजांकुर चारणाह्वाः । न-
भोंऽगणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परम-
र्षयो नः ॥५॥ अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि
लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि । मनोवपुर्वा-
ग्बलिनश्च नित्य. स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः
॥६॥ सकामरूपित्ववशित्वमैश्य प्राकाम्य मंतर्द्धि-
मथाप्तिमाप्ताः । तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः
स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥७॥ दीप्तं च त-
प्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः ।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्ष-
यो नः ॥८॥ आमर्षसर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषा-
द्दष्टिविषंविषाश्च । सखिल्ल विड्जल्लमलौषधीशाः
स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥९॥ क्षीरं स्रवंतो-
ऽत्र घृतं स्रवंतो मधुस्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः।

अक्षीणसंवासमहानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ १० ॥

इति परमर्षिस्वस्तिमंगलविधान ।

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकलतनुभृतां पापसंतापहर्ता, त्रैलोक्याक्रांतकीर्तिः क्षतमदनारिपुर्घातिकर्मप्रणाशः । श्रीमान्निर्वाणसंपद्वरयुवतिकरालीढकंठैः सुकंठैर्देवेंद्रैर्वंद्यपादो जयति जिनपतिः प्राप्तकल्याणपूजः ॥ १ ॥

जय जय जय श्रीसत्कांतिप्रभो जगतां पते ! जय जय भवानेव स्वामी भवांभसि मज्जतां । जय जय महामोहध्वांतप्रभातकृतेऽर्चनं । जय जय जिनेश त्वं नाथ प्रसीद करोम्यहम् ॥२ ॥

ओं ह्रीं भगवज्जिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् (इत्याह्वानम्)

ओं ह्रीं भगवज्जिनेंद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । (इतिस्थापनम्)

ओं ह्रीं भगवज्जिनेंद्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट्

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति ! त्वत्पादपंकेरुह, द्वंदे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्यामया प्रार्थ्यते । मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते सदा

त्राहि मां, दृग्दानेन मयि प्रसीद भवती संपूजयामोऽधुना ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

संपूजयामि पूज्यस्य पादपद्मयुगं गुरोः।
तपः प्राप्तप्रतिष्ठस्य गरिष्ठस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह! अत्र अवतर अवतर। संवौ०

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव २ वषट्।

(जिनको केवल भाषाष्टक परसे भाव पूजा करना हो, वे आगे ९६ पृष्टमें लिखे हुये भाषाष्टकको बोलकर पूजा करें)

देवेंद्रनागेंद्रनरेंद्रवंद्यान् शुंभत्पदान् शोभितसारवर्णान्। दुग्धाब्धिसंस्पर्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥१॥

मलिन वस्तु उज्वल करै यह स्वभाव जलमांय, जलसे जिन पद पूजिये कुल कलंक मिट जाय। नीर बुझावे अग्निको तृषा रोग नहिं जाय, तृषारोग प्रभु तुम हरो यातें पूजूं पांय ॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ताम्यत्त्रिलोकोदरमध्यवर्तिसमस्तसत्वाहित-हारिवाक्यान्। श्रीचंदनैर्गंधविलुब्धभृंगैर्जिनेंद्र-सिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥२॥

तपत वस्तु शीतल करै, चंदन शीतल आप, चन्दनसे पूजा करूं मिटै मोह संताप। चंदन शीतलता करै भवाताप नहिं जाय, भवाताप प्रभु तुम हरो यातैं पूजूं पाय।

संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्या। दीर्घाक्षतांगैर्धवलाक्षतौघैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥३॥

तन्दुल धवल पवित्र अति नाम सु अक्षत तास, अक्षतसों जिन पूजिये अक्षत गुण परकास, अक्षय अक्षय मैं कहूं सो अक्षय पद पाय, महा अक्षय पद तुम लियो यातैं पूजूं पाय।

अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान्वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान्। कुंदारविंदप्रमुखैः प्रसूनैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥४॥

पुष्प चाप धर पुष्प सर धारी मनमथ वीर, यातैं पूजा पुष्पकी हरै मदनकी पीर। कामबाण पुष्पै हरो सो तुम और जय, यातैं मैं पायन पडू मदन काम नशि जाय ॥

कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

कुदर्पकंदर्पविसर्प्पसर्प्पप्रसह्यनिर्णाशनवैनतेयान्। प्राज्याज्यसारैश्चरुभी रसाढ्यैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥५॥

परम अन्न नैवेद्य विधि क्षुधाहरण तन पोष, जे पूजैं नैवेद्यसों मिटै क्षुधादिक दोष, भोजन नाना विधि किये मूल क्षुधा नहिं जाय, क्षुधारोग प्रभु तुम हरो यातैं पूजूं पाय।

क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्वमोहांधकारप्रतिघातदीपान्। दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥६॥

आपापर देखे सकल, निशिमें दीपक जोत, दीपकसों जिन पूजिये निर्मल ज्ञान उद्योत। दीप घटा घटमें बसै ज्ञानघटा घट आय, दूढत डोलै कर्मको कृत कला मिट जाय।

मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून्। धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥७॥

पावक दहै सुगन्धको धूप चढ़ावै सोय, खेवत धूप जिनेशको अष्टकर्म क्षय होय। जब धूपायनमें लगे ध्यान अग्निकर धीर, कर्म काठिया खेइये त्रिभुवन पति गम्भीर।

अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसाप्यगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभावान्। फलैरलं मोक्षफलाभिसारे जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥८॥

जो जैसी करनी करै सो तैसा फललेय, फल पूजा महाराजकी निश्चय शिव फल देय। फलियन फलियन मैं कहू सो फलियन फल नाहिं, महा मोक्षफल तुम लियो यातैं पूजूं पाय।

मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्वारिगंधाक्षतपुष्पजातैर्नैवेद्यदीपामलधूपधूम्रैः। फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोगान् जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥९॥

जलधारा चंदन घसी अक्षत पुष्प नैवेद्य, दीप धूप फल अर्घयुत ये पूजा वसु भेव। ये जिनपूजा अष्ट विधि कीजे कर शुचि अंग, प्रति पूजा जलधार दु दीजे धार अभंग।

अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा कुर्वते, त्रैसंध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयंतो नराः। पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणांस्ते भव्याः सकलावबोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते परम् ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षेपण करना)

वृषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनंदनः। सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ १ ॥ चंद्राभः पुष्पदंतश्च शीतलोभगवान्मुनिः । श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥ २ ॥ अनंतो धर्मनामा च शांति कुंथुर्जिनोत्तमः। अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥ ॥ ३ ॥ हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः । ध्वस्तोपस्वर्ग दैत्यारिः पार्श्वो नागेंद्रपूजितः ।४। कर्मांतकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसंभवः एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥ ५ ॥ पूजिता भरताद्यैश्च भूपेंद्रैर्भूरिभूतिभिः । चतुर्विधस्य संघस्य शांतिं कुर्वंतु शाश्वतीं ॥६॥ जिने

भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदाऽस्तु मे । सम्य-
क्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ७ ॥

(पुष्पांजलिं क्षेपण करना)

श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
सज्ज्ञानमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ८ ॥

(पुष्पांजलिम्)

गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
चारित्रमेव संसार वारणं मोक्षकारणं ॥ ९ ॥

(पुष्पांजलिम्)

अथ देव जयमाला प्राकृत

वत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे पइपोसिउ तुहु खत्त-
धरु । तुहु चरण विहाणे केवलणाणे तुहु परम-
प्पउ परमपरु ॥ १ ॥ जय रिसहरिसीसर णमि-
यपाय । जय अजिय जियंगमरोसराय ॥ जय
संभव संभवकयविओय । जय अहिणंदण णंदि-
य पओय ॥ २ ॥ जय सुमइ सुमइसम्मयपयास,
जय पउमप्पह पउमाणिवास ॥ जय जयहि सु-
पास सुपासगत्त । जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥३॥
जय पुप्फयंत दंतंतरंग । जय सीयल सीयलव-

यणभंग ॥ जय सेय सेयकिरणोहसुज्ज। जय वासुपुज्ज पुज्जाण पुज्ज ॥ ४ ॥ जय विमल विमलगुणसेढिठाण जय जयहि अणंताणंतणाण। जय धम्म धम्मतित्थयर संत। जय सांति सांति विहियायवत्त ॥ ५ ॥ जय कुंथु कुंथुपहुअंगिसदय। जय अर अर माहर विहियसमय॥ जय मल्लि मल्लि आदामगंध। जय मुणिसुव्वयसुव्वयणिबंध ॥ ६ ॥ जय णमि णमियामरणियरसामि। जय णेमि धम्मरहचक्कणेमि। जय पास पासछिंदणकिवाण। जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण ॥ ७ ॥

घत्ता—इह जाणिय णामहिं दुरियविरामहिं परहिंवि णमिय सुरावलिहिं। अणहणाहिं अणाइहिं समिय कुवाइहिं पणविवि अरहंतावलिहिं ॥

ओं ह्रीं वृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनेभ्यो अर्घं निर्व०

अथ शास्त्रजयमाला।

संपइसुहकारण कम्मवियारण भवसमुद्दतारणतरणं। जिणवाणि णमस्सामि सत्तिपयासामि

सग्गमोक्खसंगमकरणं ॥ १ ॥ जिणंदमुहाओ
विणिग्गयतार। गणिंदविगुंफिय गंथपयार ॥
तिलोयहिमंडण धम्मह खाणि। सयापणमामि
जिणिंदहवाणि ॥ २ ॥ अवग्गह ईह अवाय जु
एहिं। सुधारण भेइहिं तिण्णि सएहिं ॥ मई
छत्तीस बहुप्पमुहाणि। सया पणमामि जिणिंदह
वाणि ॥३॥ सुदं पुण दोण्णि अणेयपयार। सु-
बारहभेय जगत्तयसार ॥ सुरिंदणरिंदसमुच्चि-
य जाणि। सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥४॥
जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि। पयासइ पुण्ण
पुराकिउलद्धि ॥ णिउग्गुपहिल्लउ एहु वियाणि।
सया पणमाणि जिणिंदह वाणि ॥५॥ जु लोय
अलोयह जुत्ति जणेइ। जु तिण्णि विकालसरू-
व भणेइ ॥ चउग्गइ लक्खण दुज्जउ जाणि।
सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥ ६ ॥ जिणिंद-
चरित्तविचित्त मुणेइ। सुसावहिधम्मह जुत्ति
जणेइ ॥ णिउग्गु वि तिज्जउ इत्थु वियाणि।
सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥७॥ सुजीव

अजीवह तच्चह चक्खु । सुपुण्ण विपाव विबंध विमुक्खु ॥ चउत्थुणिउग्गुविभासिय जाणि । सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥८॥ तिभेयहिँ ओहिविणाणविचित्तु । चउत्थरिजोविउलं मइ-उत्तु ॥ सुखाइय केवलणाण वियाणि । सया पण-मामि जिणिंदहवाणि ॥९॥ जिणिंदह णाणु जग-त्त्तय भाणु । महातमणासिय सुक्खणिहाणु ॥ पय-च्चउ भत्तिभरेण वियाणि । सया पणमामि जिणिं दह वाणि ॥१०॥ पयाणि सुवारहकोडि सयेण । सुलक्ख तिरासिय जुत्ति भरेण ॥ सहस अट्ठा-वण पंच वियाणि । सया पणमामि जिणिंदह-वाणि ॥ ११ ॥ इक्कावण कोडिउ लक्ख अठेव । सहसचुलसीदियसा छक्केव ॥ सढाइगवीसह गंथ-पयाणि । सया पणमामि जिणिंदहवाणि ॥१२॥

घत्ता—इह जिणवरवाणि विशुद्धमई । जो अवियण णियमण धरई । सो सुरणरिंद संपइ लहई । केवलणाण वि उत्तरई ॥१३॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

अथ गुरु जयमाला प्राकृत।

भावियह भवतारण, सोलहकारण, अज्जवि तित्थयरत्तणहं। तवकम्म असंगइ दयधम्मंगइ पालवि पंच महव्वयहं ॥१॥ वंदामि महारिसि सीलवंत। पंचेंद्रियसंजम जोगजुत्त ॥ जे ग्यारह अंगह अणुसरंति। जे चउदह पुव्वह मुणि थुणंति ॥२॥ पादाणु सारवर कुट्ठबुद्धि। उप्पण्णु जाह आयासरिद्धि ॥ जे पाणाहारी तोरणीय जे रुक्खमूल आतावणीय ॥ ३ ॥ जे मोणिधाय चंदाहणीय। जे जत्थत्थवाणि णिवासणीय ॥ जे पंचमहव्वय धरणधीर। जे समिदिगुत्ति पालणहि वीर ॥४॥ जे वड्ढहिं देहविरत्तचित्त। जे रायरोसभयमोहचित्त ॥ जे कुगइहि संवरु विगयलोह। जे दुरियविणासणकामकोह ॥ ५ ॥ जे जल्लमल्लतणलित्त गत्त। आरंभपरिग्गह जे विरत्त ॥ जे तिण्णकाल बाहर गमंति। छट्ठट्ठम दसमउ तउ चरंति ॥६॥ जे इकगास दुइगास लिंति जे णीरसभोयण रइ करंति ॥ ते मुणिवर

वंदउं ठियमसाण. जे कम्मडहइ वर सुक्कझाण
॥ ७ ॥ बारहविहसंजम जे धरांति । जे चारिउ
विकहा परिहरंति ॥ बावीस परीषह जे सहंति।
संसारमहण्णउ ते तरंति ॥ ८ ॥ जे धम्मबुद्धि
महियलि थुणंति । जे काउस्सग्गो णिसि गमंति॥
जे सिद्धविलासणि अहिलसंति । जे पक्खमास
आहार लिंति ॥९॥ गोदूहण जे वीरासणीय ।
जे धणुहसेज वज्जासणीय । जे तववलेण आयास
जंति जे गिरि गुहकंदरविवरथंति ॥ १० ॥ जे
सत्तु मित्त समभाव चित्त । ते मुनिवर वंदउं
दिढचरित्त ॥ चउवीसह गंथह जे विरत्त । ते
मुनिवर वंदउं जगपवित्त ॥११॥ जे सुज्झाणिज्झा
एकचित्त । वंदामि महारिसि मोखपत्त ॥ रयण-
त्तयरंजिय सुद्धभाव । ते मुणिवर वंदउं ठिदि-
सहाव ॥१२॥

घत्ता—जे तपसूरा, संजमधीरा, सिद्धवधू अणु-
राईया । रयणत्तयरंजिय, कम्मह्गंजिय, ते ऋ-
षिवरमय झाईया ॥

१०. अथ देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा

अडिल्ल छंद

प्रथमदेव अरहंत सुश्रुत सिद्धांतजू। गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुर पंथजू। तीन रतन जगमांहि सो ये भवि ध्याइये। तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये ॥१॥ दोहा--पूजों पद अरहंतके, पूजों गुरुपदसार। पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार ॥१॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्रावतरावतर। संवौषट्। ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

गीता छंद

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, वंदनीक सुपदप्रभा। अति शोभनीक सुवरण उज्वल, देखि छवि मोहित सभा॥ वर नीर क्षीरसमुद्रघटभरि अग्र तसु बहुविधि नचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥ १ ॥ दोहा—

मलिन वस्तु हरलेत सब, जल स्वभाव मलछीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरुतीन ॥ १ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० ॥१॥

जे त्रिजग उदर मँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे। तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे॥ तसु भ्रमर लोभित घ्राण पावन सरस चंदन घसि सचूं। अरहंत० ॥ दोहा—
चंदन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥२॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व० ॥ २ ॥

यह भवसमुद्र अपार तारण,—के निमित्त सुविधि ठई। अति दृढ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही॥ उज्जल अखंडित सालि तंदुल पुंज धरि त्रयगुण जचूं। अरहंत० ॥ दोहा—
तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥३॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जे विनयवंत सुभव्य उर अंबुज प्रकाशन भान

१। जे एक मुख चारित्र भाषत त्रिजगमाहिं प्रधान हैं। लहि कुंद कमलादिक पहुप, भव २ कुवेदनसों बचूं॥ अरहंत०॥४॥ दोहा—

विविधभांति परिमलसुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन॥४॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व०॥४॥

अतिसबल मदकंदर्प जाको क्षुधाउरग अमान है। दुस्सह भयानक तासु नाशनको सु गरुड समान है॥ उत्तम छहोंरसयुक्त नित, नैवेद्यकरि घृतमें पचूं। अरहंत०॥५॥ दोहा—

नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजनसरस नवीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन॥५॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व०॥५॥

जे त्रिजगउद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली। तिहि कर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाश जोति प्रभावली॥ इहभांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं। अरहंत०॥६॥ दोहा—

स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन

जासों पूजों परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥६॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीप निर्व० ॥ ६ ॥

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै। वर धूप तासु सुगंधताकरि, सकल परिमलता हंसै ॥ इहभांति धूप चढाय नित भवज्वलनमाहि नहीं पचूं। अरहंत० ॥ ७ ॥ दोहा-

अग्निमांहि परिमलदहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥७॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूप निर्व० ॥७॥

लोचन सु रसना घ्रान उर उत्साहके करतार हैं। मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफलगुणसार हैं॥ सो फल चढावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूं। अरहंत० ॥ ८ ॥ दोहा--

जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रस लीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥८॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा ॥

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं। वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनम-

के पातक हरूं॥ इहभांति अर्घ चढाय नित भवि। करत शिवपंकतिमचूं। अरहंत० ॥१॥ दोहा—
वसुविधि अर्घ सँजोयके, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥९॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

अथ जयमाला।

देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीनरतनकरतार।
भिन्न भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुणविस्तार॥

पद्धड़ि छंद।

कर्मनकी त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोपराशि। जे परम सुगुण हैं अनँत धार, कहवतके छ्यालिस गुण गँभीर॥२॥ शुभ समवसरन शोभा अपार, शतइंद्र नमत करसीसधार। देवाधिदेव अरहंत देव, वंदों मनवचतनकरि सु सेव॥ ३॥ जिनकी धुनि है ओंकाररूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप। दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत॥ ४॥ सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूँथे बारह सु अंग॥

रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहुप्रीति ल्याय ।५। गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध । संसारदेह वैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ।।६।। गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस, भवतारन तरन जिहाज ईस । गुरुकी महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मनवचनकाय ।। ७ ।। सोरठा—

कीजै शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरै ।
द्यानत सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

सूचना—आगे जिस भाईको निराकुलता हो, वह नीचे लिखे अनुसार वीस तीर्थंकरोकी भाषा पूजा करै । यदि स्थिरता न हो तो इस पूजाके आगेमें जो अर्घ लिखा है उसको पढ़कर अर्घ चढ़ा देवे ।

२१ । श्रीबीस तीर्थंकरपूजा भाषा ।

दीप अढाई मेरु पन, अरु तीर्थंकर वीस ।
तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस ॥१॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत । ठ ठ ।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः ! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् ।

इंद्र फणींद्र नरेंद्र वंद्य, पद निर्मल धारी ।
शोभनीक संसार, सारगुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधि सम नीरसों (हो), पूजों तृषा निवार
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेह मँझार ॥
श्री जिनराज हो भव, तारणतरण जिहाज ॥१॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्यु विनाशनाय जलं०

(इस पूजामें बीस पुंज करना हो, तो इस प्रकार मन्त्र बोलना)

ओं ह्रीं सीमंधर–युगमंधर–बाहु सुबाहु-सजातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन अनंतवीर्य सूरप्रभ–विशालकीर्ति–वज्रधर-चंद्रानन-भद्रबाहु भुजंगम–ईश्वर—नेमिप्रभ—वीरसेण—महाभद्र–देवयशोऽजितवीर्येति विंशतिविद्यमान तीर्थङ्करेभ्यो जन्ममृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

तीनलोकके जीव, पाप आताप सताये ।
तिनकों साता दाता, शीतल वचन सुहाये ॥
बावन चंदनसों जजूं (हो) भ्रमन-तपत निरवार । सीमंधर० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं नि०

(इसके स्थानमें यदि इच्छा हो, तो बड़ा मंत्र पढ़ें)

यह संसार अपार महासागर जिनस्वामी ।
तातैं तारे बडी, भक्ति-नौका जगनामी ॥
तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजों तुम गुण-
सार । सीमंधर० ॥ ३ ॥
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व०
भविक-सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो ।
जति श्रावक आचार, कथनको, तुमही बडे हो ॥
फूलसुवास अनेकसों (हो) पूजों मदन प्रहार ।
सीमंधर० ॥ ४ ॥
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्य क्षुधारोगविनाशनाय दीप निर्व०
काम नाग विषधाम, नाशको गरुड कहे हो ।
छुधा महादवज्वाल, तासको मेघ लहे हो ॥
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो), पूजों भूखविडार ।
सीमंधर० ॥ ५ ॥
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं०
उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहिं भऱ्यो है ।
मोह महातम घोर, नाश परकाश कऱ्यो है ॥
पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योतिकरतार ।
सीमंधर० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं०

कर्म आठ सब काठ,--भार विस्तार निहारा। ध्यान अगनि कर प्रकट, सरव कीनो निरवारा॥ धूप अनूपम खेवतैं (हो), दुःख जलैं निरधार। सीमंधर० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं०।

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं। सबको छिनमें जीत जैनके मेरु खरे हैं॥ फल अति उत्तमसों जजों (हो) वांछितफलदातार। सीमं०

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वं०।

जल फल आठों दर्व, अरघकर प्रीति धरी है। गणधर इंद्रनहूतैं, थुति पूरी न करी है॥ द्यानत सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार। सीमं०

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि०।

अथ जयमाला आरती।

सोरठा--ज्ञान सुधाकर चंद, भविकखेतहित मेघ हो। भ्रमतमभान अमंद, तीर्थंकर बीसों नमों॥

चौपाई १६ मात्रा।

सीमंधर सीमंधर स्वामी। जुगमंधर जुगमंधर

नामी। बाहु बाहु जिन जगजन तारे। करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥१॥ जात सुजात केवलज्ञानं। स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं। ऋषभानन ऋषि भानन दोषं। अनंतवीरज वीरजकोषं ॥२॥ सौरीप्रभ सौरीगुणमालं। सुगुण विशाल विशाल दयालं। वज्रधार भव गिरिवज्जर हैं। चंद्रानन चंद्रानन वर हैं ॥३॥ भद्रबाहु भद्रनिके करता। श्रीभुजंग भुजंगम हरता॥ ईश्वर सबके ईश्वर छाजें। नेमिप्रभु जस नेमि विराजें ॥४॥ वीरसेन वीरं जग जानै। महाभद्र महाभद्र बखानै॥ नमों जसोधर जसधरकारी। नमों अजितवीरज बलधारी ॥५॥ धनुष पांचसै काय विराजै। आव कोडिपूरव सब छाजै॥ समवसरण शोभित जिनराजा। भवजलतारनतरन जिहाजा ॥६॥ सम्यक रत्नत्रयनिधिदानी। लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी॥ शतइंद्रनिकरि बंदित सोहैं। सुरनर पशु सबके मन मोहैं॥ ७॥

दोहा--तुमको पूजें वंदना, करै धन्य नर सोय।

द्यानत सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

३२। अथ विद्यमान बीस तीर्थंकरोंका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूप फलार्घकैः । धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्री सीमंधरयुगमंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभऋषभानन अनन्तवीर्य सूर्यप्रभविशालकीर्तिवज्रधरचन्द्रानन भद्रबाहुभुजंगमईश्वरनेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशोऽजितवीर्येति विंशतिविद्यमानतीर्थङ्करेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

३३। अकृत्रिम चैत्यालयोंके अर्घ ।

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यंत्रिलोकीगतान् । वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान् ॥ सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैर् द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिंबेभ्योऽर्घं निर्व०

वर्षेषु वर्षांतरपर्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मंदरेषु, यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिन

पुंगवानां ॥ २ ॥ अवनितलगताना कृत्रमाकृ-
त्रिमाणां वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानां ॥
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां । जिनवर-
निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥ ३ ॥ जंबूधात-
किपुष्करार्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवाँश्च चंद्रांभोज-
शिखंडिकंठकनकप्रावृड्घना भाजिनाः ॥ सम्य-
ग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धनाः।भूताः
नागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥४॥
श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबु
वृक्षे, वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचिके कुंडले मा-
नुषांके । इष्वाकारेंजनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यं-
तरे स्वर्गलोके, ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहि-
तले यानि चैत्यालयानि ॥५॥ द्वौ कुंदेंदुतुषार-
हारधवलौ द्वाविंद्रनीलप्रभौ । द्वौ बंधूकसमप्रभौ
जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ । शेषाः षोडश ज-
न्ममृत्युरहिताः संततहेमप्रभास्ते संज्ञानदिवा-
कराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः ॥६॥

ओं ह्रीं त्रिलोकसंबंधि-कृत्याकृत्रिमचैत्यालयेभ्योऽर्घं निर्वपा०

इच्छामि भंते चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि. तीसुवि लोयेसु भवणवासिय वाणविंतरजोयसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा संपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ह्णाणेण णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति। अहमवि इहसंतो तत्थसंताइ णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

(इत्याशीर्वाद । पुष्पाजलिं क्षिपेत्)

अथ पौर्वाह्णिक-माध्याह्णिक-अपराह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीपंचमहागुरुभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं णमो आइरी-

याणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।
तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

३४। अथ सिद्धपूजा द्रव्याष्टक।

ऊर्ध्वाधोरयुतं सविंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं।
वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधितत्त्वान्वितं॥
अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकार संवेष्टितं।
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः॥

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो। भव भव। वषट्।

निरस्तकर्मसंबंधं, सूक्ष्मं नित्यं निरामयम्।
वंदेऽहं परमात्मानममूर्तमनुपद्रवम्॥ १॥

(यहा सिद्धयत्रकी भी स्थापना करना)

जिन त्यागियोंको विना द्रव्य चढ़ाये भावोंके द्रव्योंसे ही पूजा करना हो, वे आगे भावाष्टक है, उसको बोलकर करैं। अष्टद्रव्यसे पूजा करनेवालोंको भावपूजाका अष्टक कदापि नहि बोलना चाहिये।

द्रव्याष्टक।

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्म्यगम्यं, हान्यादि

भावरहितं भववीतकायं । रेवापगावरसरोयमु-
नोद्भवानां, नीरैर्यजे कलशगैर्वरसिद्धचक्रं ॥१॥

आनन्दकन्दजनकं घनकर्ममुक्तं, सम्यक्त्वशर्मग-
रिमं जननार्तिवीतं । सौरभ्यवासितभुवं हरि-
चंदनानां, गंधैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥२॥

सर्वावगाहनगुणं सुसमाधिनिष्ठं, सिद्धं स्वरूप-
निपुणं कमलं विशालं । सौगंध्यशालिवनशालि-
वराक्षतानां, पुंजैर्यजे शशिनिभैर्वरसिद्धचक्रम् ।३।

नित्यंस्वदेहपरिमाणमनादिसंज्ञं, द्रव्यानपेक्ष-
ममृतं मरणाद्यतीतं । मंदारकुंदकमलादिवन-
स्पतीनां, पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वस्वभावगमनं सुमनोव्यपेतं, ब्रह्मादिबीज-
सहितं गगनावभासम् । क्षीरान्नसाज्यवटकै, रस-
पूर्णगर्भैर्नित्यं

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुद्रोगविध्वंसनाय नैवेद्यं

आतंकशोकभयरोगमदप्रशांत,—निर्द्वंद्वभाव-
धरणं महिमानिवेशं । कर्पूरवर्तिबहुभिः कनका-
वदातैर्,--दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहांधकारविनाशनाय दीपं

पश्यन्समस्तभुवनं युगपन्नितांतं. त्रैकाल्यवस्तु
विषये निविडप्रदीपम् । सद्द्रव्यगंधघनसारवि-
मिश्रितानां, धूपैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥७॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं

सिद्धासुरादिपतियक्षनरेंद्रचक्रैर्ध्येयं शिवं सक-
लभव्यजनैःसुवंद्यं । नारिंगपूगकदलीवरनारि-
केलैः सोऽहं यजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं

गंधाढ्यं सुपयोमधुव्रतगणैः संगं वरं चंदनं ।
पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकं ॥
धूपं गंधयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये ।
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं, सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनंतवीर्यं । कर्मौघकक्षदहनं सुखसस्य बीजं वंदे सदा निरुपमं वरसिद्धचक्रं ॥१०॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने महार्घं निर्व० स्वाहा ॥

त्रैलोक्येश्वरवंदनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं यानाराध्य निरुद्धचंडमनसः संतोऽपि तीर्थंकराः ॥ सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणैर् युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान् ॥ (पुष्पांजलिं)

अथ जयमाला ।

विराग सनातन शांत निरंश । निरामय निर्भय निर्मल हंस ॥ सुधाम विबोधनिधान विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ १ ॥ विदूरितसंसृतिभाव निरंग । समामृतपूरित देव विसंग ॥ अबंधकषाय विहीनविमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ २ ॥ निवारितदुष्कृतकर्मविपास । सदामल केवलकेलिनिवास ॥ भवोदधिपारग शान्त विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह

॥ ३ ॥ अनंतसुखामृतसागर धीर । कलंक-
रजोमलभूरिसमीर ॥ विखंडितकाम विराम
विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ४ ॥
विकारविवर्जित तर्जितशोक । विबोधसुनेत्र-
विलोकितलोक ॥ विहार विराव विरंग विमोह
प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ५ ॥ रजोमल-
खेदविमुक्त विगात्र । निरंतर नित्य सुखामृत-
पात्र ॥ सुदर्शनराजित नाथ विमोह । प्रसिद्ध
विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ६ ॥ नरामरवंदित नि-
र्मल भाव । अनंत मुनीश्वरपूज्य विहाव ॥ सदो-
दय विश्वमहेश विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध
समूह ॥ ७ ॥ विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र ।
परात्परशंकरसार वितंद्र ॥ विकोप विरूप
विशंक विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ८
जरामरणोज्झित वीतविहार । विचिंतित नि-
र्मल निरहंकार ॥ अचिंत्यचरित्र विदर्प विमोह ।
प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ९ ॥ विवर्ण विगंध
विमान विलोभ । विमाय विकाय विशब्द विशो-

म॥ अनाकुल केवल सर्व विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ १० ॥ घत्ता—

असमसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं, परपरणति मुक्तं पद्मनंदींद्रवंद्यं। निखिलगुणनिकेतं सिद्ध-चक्रं विशुद्धं, स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिं ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अथाशीर्वाद। अडिल्लछंद।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो। समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो। शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनंत हो, जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो ॥ १ ॥ ध्यान अगनिकर कर्म कलंक सबै दहे, नित्य निरंजनदेव सरूपी ह्वै रहे। ज्ञायकके आकार ममत्वनिवारिकैं, सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकें ॥ २ ॥

दोहा—अविचलज्ञानप्रकाशतैं, गुण अनंतकी खान। ध्यान धरै सो पाइये, परम सिद्ध भगवान ॥ ३ ॥

३५। अथ सिद्धपूजाका भावाष्टक।

निजमनोमणिभाजनभारया, समरसैकसुधारसधारया।
सकलबोधकलारमणीयकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥जलं॥
सहजकर्मकलंकविनाशनैरमलभावसुवासितचंदनै।
अनुपमानगुणावलिनायकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥चंदनं॥
सहजभावसुनिर्मलतंदुलै सकल दोषविशालविशोधनै।
अनुपरोधसुबोधनिधानकं, सहज सिद्धमहं परिपूजये ॥अक्ष०॥
समयसारसुपुष्पसुमालया सहजकर्मकरेण विशोधया।
परमयोगबलेन वशीकृतं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ पुष्पं ॥
अकृतबोधसुदिव्यनिवेद्यकैर्विहितजातजरामरणांतकैः।
निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥नैवेद्यं॥
सहजरत्नरुचिप्रतिदीपकै, रुचिविभूतितमः प्रविनाशनै।
निरवधिस्वविकाशप्रकाशनैः सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥दीपं॥
निजगुणाक्षयरूपसुधूपनैः स्वगुणघातिमलप्रविनाशनै।
विशदबोधसुदीर्घसुखात्मकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥धूपं॥
परमभावफलावलिसंपदा, सहजभावकुभावविशोधया।
निजगुणास्फुरणात्मनिरंजनं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥फलं॥
नेत्रोन्मीलिविकाशभावनिवहैरत्यंतबोधाय वै।
वार्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीप धूपै फलै ॥
यश्चिंतामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत्।
सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयं ॥ ६ ॥

इति सिद्धपूजा भावाष्टक।

सिद्धपूजाके भावाष्टकके साथ बोलने के भाषा के दोहे

मोहि तृषा दुख देत, सो तुमने जीती प्रभू ।
जलसे पूजू मैं तोय, मेरो रोग निवारियो ॥ जल० ॥

हम भव आतप माहि, तुम न्यारे ससार से ।
कीज्यो शीतल छांहि, चन्दन से पूजा करू ॥ चदन ॥

हम अवगुण समुदाय, तुम अक्षय गुण के भरे ।
पूजू अक्षत ल्याय, दोष नाश गुण कीजिये ॥ अक्षत ॥

काम अग्नि है मोहि, निश्चय शील स्वभाव तुम ।
फूल चढाऊ मै तोय, मेरो रोग निवारियो ॥ पुष्प ॥

मोहि क्षुधा दुख भूर, ध्यान खडग करि तुम हती ।
मेरी बाधा चूर, नैवज से पूजा करू ॥ नैवेद्यम् ॥

मोह तिमिर हम पास, तुम पै चेतन ज्योति है ।
पूजो दीप प्रकाश, मेरो तम निरवारियो ॥ दीप ॥

अष्टकर्म बन जाल, मुक्ति माहि स्वामी सुख करो ।
खेऊ धूप रसाल, अष्ट कर्म निरवारियो ॥ धूप ॥

अन्तराय दुख टाल, तुम अनन्त थिरता लही ।
पूजू फल दरशाय विघन टाल शिव फल करो ॥ फल ॥

हममे आठो ही दोष, जजहुँ अर्घ ले सिद्धजी ।
दीज्यो वसु गुण मोय, कर जोड्यां द्यानत खड्यो ॥ अर्घ ॥

भजन संख्या १

[तर्ज–इक दिल के टुकडे हजार हुये 'प्यार की जीत']

भव भव के दुखडे अपार सहे, कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा।
गतियो मे अकेला भ्रमत फिरा, कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥

शुभ कर्म उदय हो जाने से, मानव का जीवन पाया था ।
जीवन के थपेडे लगते ही कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥१॥

मल मूत्र भरा, इस विस्तर पर बचपन की वे घडियाँ बीती।
जब पैरो के बल खडा हुआ कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥२॥

अलमस्त जवानी आते ही मै भूल गया सब अपनापन ।
तरुणाई की मदहोशी मे, कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥३॥

यौवन की हरियाली बीती, और शुष्क बुढापा आ धमका ।
काया का पतझड खूब हुआ, कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥४॥

झूठे विषयो मे फँस करके, जीवन को तमाशा कर डाला ।
था 'रतन' वही ककड बनकर, कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा ॥५॥

भजन संख्या २

[तर्ज—वो पास रहें या दूर रहें..'बडी बहिन']

भगवन्त भजन क्यो भूला रे बस यह ही एक सहारा है ।
ससार रैन का सपना है, ना कोई यहाँ पर तेरा है ॥ टेर ॥

ये थैली हेली धन प्यादे, ये साथ चलेंगे ना तेरे ।
सिर काल कुदाल लिये ठाडो पलभरका ना पतियारा है ॥ १ ॥

तज राग द्वेष छल माया को, भक्ति रसमे तू घुल जा रे।
फिर आतम ज्ञान सु 'दीप' जगे और मोक्षपुरी मिल जाये रे ॥ २ ॥

३६ । सोलहकारणका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं
यजे ॥ १ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

३७ । दशलक्षणधर्मका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं
यजे ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भूतोत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्य संयम
तपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलाक्षणिकधर्मेभ्यो अर्घं नि० स्वाहा

३८ । रत्नत्रयका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः
धवलमंगलगानरवाकुलेजिनगृहेजिनरत्नमहं यजे

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशप्रका-
रसम्यक्चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

३९ । अथ पंचपरमेष्ठिजयमाला ।

मणुय-णाइंद-सुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसु-
क्खावली पत्तया । दंसणं णाण झाणं अणंतं

बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥१॥ जेहि झाणग्गिवाणेहिं अइथद्दयं, जम्मजरमरणणय रत्तयं दड्डयं। जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते जिणा दिंतु सिद्धावरं णाणयं ॥२॥ पंचहाचारपंचग्गि संसाहया, वारसंगाइ सुयजलहिं अवगाहया। मोक्खलच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खं गया संगया ॥ ३ ॥ घोरसंसारभीमाड वीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे। णट्ठ मग्गाण जीवाण पहदेसया, बंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥ ४ ॥ उग्गतवयरणकरणेहिं झीणं गया, धम्मवरझाणसुक्केझाणंगया। णिब्भरं तवसिरीएसमालिंगया, साहओ ते महामोक्खपह मग्गया ॥५॥ एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदये, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए। लहइ सो सिद्ध सुक्खाइवरमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं

आर्या।

अरिहा सिद्धाइरीया, उवज्झाया साहु पंचपरमिट्ठी
एयाण णमुकारो, भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घं निर्व॰

अथाशीर्वादः।

इच्छामि भंते पंचगुरुभत्ति कओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताण। अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं। अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरीयाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं। तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं। णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ वोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं। इत्याशीर्वादः।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

४०। अथ शांतिपाठ स्तुति।

(शांतिपाठ बोलते समय दोनों हाथोंसे पुष्पवृष्टि करते रहें।)

दोधकवृत्तं।

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रं। अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममंबुजनेत्रं॥१॥ पंचमभीप्सितचक्रधराणां पू-

जितमिंद्रनरेन्द्रगणैश्च। शांतिकरं गणशांतिमभी-प्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥ २ ॥ दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुंदुभिरासनयोजनघोषौ। आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मंडलतेजः ॥ ३ ॥ तं जगदर्चितशांतिजिनेंद्रं शांतिकरं शिरसा प्रणमामि। सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं मह्यमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

वसंततिलका छंद।

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः। ते मे जिनाः प्रवरवंश जगत्प्रदीपास्तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु

इन्द्रवज्रा।

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्यतपोधनानां। देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥ ६ ॥

स्रग्धरावृत्तं।

क्षेमं सर्व प्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो

यांतु नाशं। दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके, जैनेंद्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

अनुष्टुप्।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञान भास्कराः ।
कुर्वंतु जगतःशांतिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥८॥
प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

अथेष्ट प्रार्थना।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथादोषवादे च मौनं ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
संपद्यंतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥

आर्यावृत्तं।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं ।
तिष्ठतु जिनेंद्र ! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥१०॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु
॥११॥ दुःक्खखओ कम्मखओ, समाहिमरणं च

षोडिलाहो य। मम होउ जगतबन्धव तव, जिणवर चरणसरणेण ॥ १२ ॥

संस्कृतप्रार्थना।

त्रिभुवनगुरो! जिनेश्वर! परमानन्दैककारण कुरुष्व। मयि किंकरेत्र करुणां यथा तथा जायते मुक्तिः ॥१३॥ निर्विण्णोहं नितरामर्हन् बहुदुक्खया भवास्थित्या। अपुनर्भवाय भवहर! कुरु करुणामत्र मयि दीने ॥ १४ ॥ उद्धर मां पतितमतो विषमाद् भवकूपतः कृपां कृत्वा। अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीति पुनः पुनर्वच्मि ॥ १५ ॥ त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरणं जिनेश! तेनाहं। मोहरिपुदलितमानं फूत्करणं तव पुरः कुर्वे ॥१६॥ ग्रामपतेरपि करुणा परेण केनाप्युपद्रुते पुंसि। जगतां प्रभो! न किं तव, जिन! मयि खलु कर्मभिः प्रहते ॥७१॥ अपहर मम जन्म दयां, कृत्वेत्येकवचसि वक्तव्यं। तेनातिदग्ध इति मे देव! बभूव प्रलापित्वं ॥ १८ ॥ तव जिनवर चरणाब्जयुगं करुणामृतशीतलं यावत्। संसारतापतप्तः करो

मि हृदि तावदेव सुखी ॥ १९ ॥ जगदेकशरण भगवन् ! नौमि श्रीपद्मनंदितगुणौघ ! किं बहुना कुरु करुणामत्र जने शरणमापन्ने ॥२०॥

(परिपुष्पाजलिं क्षिपेत्)

४१। अथ विसर्जनं।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया।
तत्सर्वंपूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥१॥
आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनं।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥२॥
मंत्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥३॥
आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमं।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वेयांतु यथास्थितिं।४।

४२। अथ भाषास्तुतिपाठ।

तुम तरणतारण भवनिवारण, भविकमन आनंदनो। श्रीनाभिनंदन जगतवंदन, आदिनाथ निरंजनो ॥१॥ तुम आदिनाथ अनादि सेऊँ सेय पदपूजा करूं। कैलाश गिरिपर रिष-

भजिनवर, पदकमल हिरदै धरूं ॥ २ ॥ तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली। इह विरद सुनकर सरन आयो, कृपा कीज्यो नाथजी ॥ ३ ॥ तुम चंद्रवदन सु चंद्रलच्छन चंद्रपुरि परमेश्वरो। महासेननंदन, जगतवंदन चंद्रनाथ जिनेश्वरो ॥ ४ ॥ तुम शांतिपाँचकल्याण पूजों, शुद्धमनवचकाय जू। दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन, विघन जाय पलाय जू ॥ ५ ॥ तुम बालब्रह्म विवेकसागर, भव्यकमल विकाशनो। श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो ॥ ६ ॥ जिन तजी राजुल राजकन्या, कामसेन्या वश करी। चारित्ररथ चढि होय दूलह, जाय शिवरमणी वरी ॥ ७ ॥ कंदर्प दर्प सुसर्पलच्छन, कमठ शठ निर्मद कियो। अश्वसेननंदन जगतवंदन सकलसँघ मंगल कियो ॥ ८ ॥ जिनधरी बालकपणे दीक्षा, कमठमानाविदारकैं। श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्रके पद, मैं नमों शिरधारकैं ॥ ९ ॥ तुम कर्मघाता मोक्षदाता,

दीन जानि दया करो। सिद्धार्थनंदन जगत बंदन, महावीर जिनेश्वरो ॥१०॥ छत्र तीन साहैं सुरनर मोहैं, वीनती अवधारिये। करजोड़ि सेवक वीनवै प्रभु आवागमन निवारिये ॥ ॥११॥ अब होउ भवभव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहों। करजोड़ यो वरदान मांगूं, मोक्षफल जावत लहों ॥१२॥ जो एक मांहीं एक राजत एकमांहिं अनेकनो। इक अनेकाकि नहीं संख्या नमूं सिद्ध निरंजनो ॥१३॥

चौ०—मैं तुम चरणकमलगुणगाय। बहुविधि भक्ति करी मनलाय ॥ जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि। यह सेवाफल दीजे मोहि ॥ १४ ॥ कृपा तिहारी ऐसी होय। जामन मरन मिटावो मोय ॥ वारवार में विनती करूं। तुम सेयां भवसागर तरूं ॥ १५ ॥ नाम लेत सव दुख मिटजाय। तुमदर्शन देख्याप्रभु आय ॥ तुम हो प्रभु देवनका देव मैं तो करूं चरण तव सेव ॥१६॥ मैं आयो पूजनके काज। मेरो जन्म सफल भयो

आज। पूजाकरके नवाऊं शीश। मुझ अपराध
क्षमहु जगदीश ॥१७॥
सुखदेना दुख मेटना, यही तुम्हारी वान।
मो गरीवकी वीनती, सुन लीज्यो भगवान॥
पूजन करतें देवकी, आदिमध्य अवसान।
सुरगनके सुख भोगकर, पावे मोक्ष निदान॥१९
जैसी महिमा तुमविषें, और धरै नहिं कोय।
जो सूरजमें जोति है, तारणमें नहिं सोय।२०।
नाथ तिहारे नामतें, अघ छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतें, अंधकार विनशाय।२१।
वहुत प्रशंसा क्या करूं, मैं प्रभु वहुत अजान।
पूजाविधि जानूं नहीं, सरन राखि भगवान॥

इति भाषास्तुति पाठ।

तीसरा अध्याय।

देवशास्त्रगुरु स्तुति सग्रह।

४३। नामावली स्तुति।

छद १६ मात्रा।

जय जिनंद सुखकंद नमस्ते। जय जिनंद
जितफंद नमस्ते॥ जय जिनंद वरवोध नमस्ते

जय जिनंद जितक्रोध नमस्ते ॥ १ ॥ पापताप-हर इंदु नमस्ते। अर्हवरनजुतविंदु नमस्ते॥ शिष्टाचार विशिष्ट नमस्ते। इष्ट मिष्ट उत्कृष्ट नमस्ते ॥ २ ॥ पर्म धर्म वर शर्म नमस्ते। मर्म भर्मघन धर्म नमस्ते ॥ दृग विशाल वरभाल नमस्ते। हृददयाल गुनमाल नमस्ते ॥३॥ शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध नमस्ते। रिद्धिसिद्धि वरवृद्धि नमस्ते ॥ वीतराग विज्ञान नमस्ते। चिद्विलास धृत ध्यान नमस्ते ॥ ४ ॥ स्वच्छगुणांबुधि रत्न नमस्ते। सत्व हितंकरयत्न नमस्ते ॥ कुनयक-रीमृगराज नमस्ते। मिथ्याखगवरवाज नमस्ते ॥ ५ ॥ भव्यभवोदधिपार नमस्ते। शर्मामृत-सिवसार नमस्ते ॥ दरश-ज्ञान-सुखवीर्य नमस्ते। चतुराननधरधीर्य नमस्ते ॥ ६ ॥ हरिहरब्रह्मा विष्णु नमस्ते। मोहमर्दमनुजिष्णु नमस्ते ॥ महादान मह भोग नमस्ते। महाज्ञान महजोग नमस्ते ॥ ७ ॥ महाउग्रतपसूर नमस्ते। महा मौनगुणभूरि नमस्ते ॥ धरमचक्रि वृषकेतु

नमस्ते । भवसमुद्रशतसेतु नमस्ते ॥ विद्या ईश मुनीश नमस्ते । इंद्रादिकनुतशीस नमस्ते । जय रत्नत्रयराय नमस्ते । सकल जीवसुखदाय नमस्ते ॥ ९ ॥ असरणशरणसहाय नमस्ते । भव्यसुपंथलगाय नमस्ते ॥ निराकार साकार नमस्ते । एकानेक अधार नमस्ते ॥१०॥ लोका लोकविलोक नमस्ते । त्रिधा सर्वगुणथोक नमस्ते ॥ सल्लदल्लदलमल्ल नमस्ते । कल्लमल्लजितछल्ल नमस्ते ॥ ११ ॥ भुक्तिमुक्तिदातार नमस्ते । उक्तिसुक्तिशृंगार नमस्ते ॥ गुणअनंत भगवंत नमस्ते । जै जै जै जयवंत नमस्ते ॥ १२ ॥

४४। जिनेंद्रस्तुति।

गीता छंद।

मंगलसरूपी देव उत्तम तुम शरण्य जिनेशजी तुम अधमतारण अधम मम लखि मेट जन्मकलेश जी ॥टेक॥ तुम मोह जीत अजीत इच्छातीत शर्मामृत भरे। रजनाश तुम वर भासहग नभ ज्ञेय सब इक उडुचरे॥ रटरास क्षति

अति अमित वीर्य सुभाव अटल सरूप हो। सब रहित दूषण त्रिजगभूषण अज अमल चिद्रूप हो ॥१॥ इच्छा विना भविभाग्यतैं तुम, ध्वनि सु होय निरक्षरी। षटद्रव्यगुणपर्यय अखिलयुत एकछिनमैं उच्चरी। एकांतवादी कुमत पक्षविलिप्त इम ध्वनि मद हरी। संशय तिमिरहर रविकला भविशस्यकों अमरित झरी ॥ २ ॥ वस्त्राभरण विन शांतमुद्रा, सकल सुरनरमन हरै। नाशाग्रदृष्टि विकारवर्जित निरखि छवि संकट टरै ॥ तुम चरणपंकज नखप्रभा नभ कोटिसूर्य प्रभा धरै। देवेंद्र नाग नरेंद्र नमत सु, मुकुटमणिद्युति विस्तरै ॥ ३ ॥ अंतर बहिर इत्यादि लक्ष्मी, तुम असाधारण लसै। तुम जाप पापकलापनासै, ध्यावते शिवथल वसै ॥ मैं सेय कुदृग कुबोध अव्रत, चिर भ्रम्यो भववन सबै। दुख सहे सर्व प्रकार गिरिसम, सुख न सर्षपसम कबै ॥ ४ ॥ परचाहदाहदह्यो सदा कबहूं न साम्यसुधा चख्यो। अनुभव अपूरब स्वादुविन नित, विषय

रसचारो भख्यो ॥ अब बसो मो उरमें सदा प्रभु, तुम चरण सेवक रहों। वर भक्ति अति दृढ होहु मेरे, अन्य विभव नहीं चहों ॥ ५ ॥ एकें-द्रियादिक अंतग्रीवक, तक तथा अंतरघनी। पर्य्याय पाय अनंतबार अपूर्व, सो नहिं शिवध-नी ।संसृतिभ्रमणतैं थकित लखि निज, दासकी सुन लीजिये। सम्यकदरश वरज्ञानचारितपथ 'विहारी' कीजिये ॥

४५। दुःखहरण स्तुति।

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तु-मारा बाना है। मत मेरी बार अबार करो, मोहि देहु विमल कल्याना है ॥टेक॥ त्रैकालिक वस्तु प्रत्यक्ष लखो, तुमसों कछु बात न छाना है। मेरे उर आरत जो वरतें, निहचै सब सो तुम जाना है ॥ अवलोक विथा मत मौन गहो नहिं मेरा कहीं ठिकाना है। हो राजिवलोचन सोचविमोचन, मैं तुमसों हित ठाना है ॥ श्री० ॥१॥ सब ग्रंथनिमें निरग्रंथनिने, निरधार यही

भणधार कही। जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायक ज्ञानमही॥ यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही। क्यों मेरी बार विलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही॥ श्री०॥२॥ काहूको भोग मनोग करो, काहूको स्वर्गविमाना है। काहूको नागनरेशपती, काहूको ऋद्धि निधाना है। अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है। इनसाफ करो मत देर करो, सुखवृंद भरो भगवाना है॥ श्री०॥ ३॥ खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है। तुम ही समरत्थ न न्याव करो, तब बंदेका क्या चारा है॥ खल घालक पालक बालकका नृपनीति यही जगसारा है। तुम नीतिनिपुन त्रैलोकपती, तुमही लगि दौर हमारा है॥ श्री०॥४॥ जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसें तुमहीको माना है। तुमरे ही शासनका स्वामी, हमको शरना सरधाना है॥ जिनको तुमरी शरनागत है, तिन-

सों जमराज डराना है। यह सुजस तुम्हारे सांचेका, सब गावत वेद पुराना है ॥ श्री० ॥ ५॥ जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है। अघ छोटा मोटा नाशि तुरत, सुख दिया तिन्हें मनमाना है ॥ पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढा असमाना है। भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुबेर समाना है ॥ श्री० ॥६॥ चिंतामन पारस कल्पतरू, सुखदायक ये परधाना है। तव दासनके सब दास यही, हमरे मनमें ठहराना है ॥ तुम भक्तनको सुरइंदपदी, फिर चक्रपतीपद पाना है। क्या बात कहों विस्तार बड़ी, वे पावें मुक्ति ठिकाना है ॥ श्री० ॥ ७ ॥ गति चार चुरासी लखविषें, चिन्मूरत मेरा भटका है। हो दीनबंधु करुणानिधान, अबलौं न मिटा वह खटका है॥ जब जोग मिला शिवसाधनका, तब विघन कर्मने हटका है। तुम विघन हमारे दूर करो सुख देहु निराकुल घटका है ॥ श्री० ॥ ८ ॥

गजग्राहग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजन त-
स्कर तारा है। ज्यों सागर गोपदरूप किया,
मैनाका संकट टारा है॥ ज्यों सूलीतें सिंहासन
औ बेडीको काट विडारा है। त्यों मेरा संकट
दूर करो, प्रभु मोकूं आस तुम्हारा है ॥ श्री०
॥ ९ ॥ ज्यों फाटक टेकत पांय खुला औ, सांप
सुमन कर डारा है। ज्यों खड्ग कुसुमका माल
किया, बालकका जहर उतारा है ॥ ज्यों सेठ
विपत चकचूर पूर, घर लक्ष्मीसुख विस्तारा
है। त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकूं आस
तुमारा है ॥श्री०॥१०॥ यद्यपि तुमको रागादि
नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना है। चिन्मूरति
आप अनंतगुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है
तदपि भक्तनकी भीड हरो, सुखदेत तिन्हें जु
सुहाना है। यह शक्ति अचिंत तुम्हारीका, क्या
पावे पार सयाना है॥ श्री० ॥११ ॥ दुखखंडन
श्रीसुखमंडनका, तुमरा प्रन परम प्रमाना है।
वरदान दया जस कीरतका, तिहुंलोकधुना

महान मगर इक तामें ॥३॥ तिहमुख जीव पर्यो दुख पावे। हे जिन ! तुम विन कौन छुडावे ॥ अशरनशरन अनुग्रह कीजे। यह दुख मेटि मुकति मुहि दीजे ।४। दीरघकाल गया विललावे अब ये सूल सहे नहिं जावे ॥ सुनियत यों जिन शासनमाहीं। पंचमकाल परमपद नाहीं ॥ ५ ॥ कारन पांच मिलैं जब सारे। तब शिव सेवक जाहिं तिहारे ॥ तातें यह विनती अब मेरी। स्वामी! शरण लई हम तेरी ॥६॥ प्रभु आगे चित चाह प्रकासौं। भव भव श्रावककुल अभिलाषौं॥ भवभव जिन आगम अवगाहौं। भव भव भक्ति चरणकी चाहौं ॥ ७ ॥ भव भवमें सत संगति पाऊं। भव भव साधनके गुन गाऊं ॥ परनिंदा मुख भूलि न भाखूं। मैत्रीभाव सबनसौं राखूं ॥८॥ भव भव अनुभव आतमकेरा। होहु समाधिमरण नित मेरा ॥ जबलौं जनम जगतमें लाधौं काल लब्धिबल लहि शिवसाधौं ॥९॥ तबलौं ये आपति मुझ हूजौ, भक्ति प्रताप मनोरथ पूँजौ ॥

प्रभु सब समरथ हम यह लोरें। 'भूधर' अरज करत कर जोरें ॥१०॥

९७। करुणाष्टक।

करुणा ल्यो जिनराज हमारी. करुणा ल्यो०॥टेक अहो जगतगुरु जगपतीजी. परमानंदनिधान। किंकरपर कीजे दयाजी. दीजे अविचल थान। हमारी०॥१॥भव दुखसों भयभीत होंजी. शिवपद वांछासार। करो दया मुझ दीनपैजी. भवबंधन निरवार॥हमारी०॥२॥ पर्यो विषम भवकूपमेंजी हे प्रभु! काढो मोहि। पतित उधारण हो तुम्हीं जी फिर फिर विनऊं तोहि॥हमारी०॥३॥ तुम प्रभु परम दयाल हो जी. अशरनके आधार। मोहि दुष्ट दुख देत हैं जी. तुमसों करहुं पुकार हमारी० ॥ ४ ॥ दुःखित देखि दया करैजी, गांवपती इक होय। तुम त्रिभुवनपति कहत होंजी क्यों न छुडावो सोय। हमारी० ॥ ५ ॥ भव आताप तबै भुजैंजी. जब राखूं उर धोय। दया सुधारस सीयराजी. तुम पदपंकज दोय॥

म्हारी० ॥६॥ सही एक मुझ वीनतीजी, स्वामी! हर संसार। बहुत भ्रम्यौ हूँ आपनोजी, दिलख्यौ बारंबार। म्हारी० ॥७॥ पदमनंदिको अर्थ लेकै, अरज करी हित काज। शरणागत भूधरतणीजी, राखहु जगपति लाज॥म्हारी० ॥८

४८। पार्श्वनाथ स्तुति।

सोरठा।

पारसप्रभुको नाऊँ, सार सुधारस जगतमें।
मैं याकी बलि जाऊँ, अजर अमरपद मूल यह॥१॥

हरिगीतिका छन्द

राजत उतंग अशोक तरुवर, पवन प्रेरित थरहरै। प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानौं मन हरै॥ तस फूल गुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी। सो जयो पार्श्व जिनेंद्र पातकहरन जग चूड़ामनी॥२॥ निज मरन देखि अनंग डरप्यो, सरन ढूंढत जग फिरयो। कोई न राखै चोर प्रभुको, आयपुनि पायनि गिरयो॥ यौं हार निज हथियार डारे पुहुपवर्षा

मिस भनी । सो जयो० ॥ ३ ॥ प्रभुअंगनीलउ-
तंगगिरितैं वानि शुचि सरिता ढली । सो भेदि
भ्रमगजदंतपर्वत, ज्ञानसागरमैं रली ॥ नय सप्त-
भंग-तरंग-मंडित, पापतापविध्वंसनी । सो जयो०
॥ ४ ॥ चंद्रार्चिचयछवि चारु चंचल, चमरवृंद
सुहावने । ढोलै निरंतर यक्षनायक, कहत क्यों
उपमा वनै ॥ यह नीलगिरिके शिखर मानों,
मेघझरि लागी घनी । सोजयो० ॥ ५ ॥ हीरा
जवाहिर खचित वहुविधि, हेमआसन राजये ।
तहँ जगत जनमनहरन प्रभु तन, नील वरन
विराजये । यह जटिल वारिजमध्यमानौं, नील
मणिकलिका वनी । सोजयो० ॥ ६ ॥ जगजीत
मोह महान जोधा जगतमें पटहा दियो । सो
शुकल-ध्यान-कृपानवल जिन, निकट वैरी वश
कियो ॥ ये वजत विजयनिशान दुंदुभि, जीत
सूचै प्रभुतनी । सोजयो० ॥ ७ ॥ छदमस्थपदमें
प्रथम दर्शन, ज्ञानचारित आदरे । अव तीन तेई
छत्रछलसों, करत छाया छवि भरे ॥ अति धवल

रूप अनूप उतन, सोभामिसभा रनी । सोजगो॰
दुति देखि जाकी चंद सरमै, तेजसों रवि लाजई ।
तव प्रभामंडलजोग जगमैं, कौन उपमा छाजई ॥
इत्यादि अतुल विभूति मंडित, सोहिये त्रिभुव-
नधनी । सोजगो॰ ॥ ६ ॥ यों अगम महिमा
सिंधु साहब, शक पार न पावहीं । तजि हासमय
तुम दास 'भूधर' भगतिवश यश गावहीं ॥ अब
होउ भवभव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं । कर
जोरि यह वरदान मांगौं, मोखपद जावत लहौं ॥

[illegible]

५६ । श्रीमहावीर प्रार्थना ।

हे सर्वज्ञ वीर जिनदेवा, चरन शरन हम आते हैं ।
ज्ञान अनंतगुणाकर तुमको चरनन सीस नवाते
हैं ॥ १ ॥ कथन तुम्हारा सबको प्यारा, कहीं
विरोध नहीं पाता । अनुभवबोध अधिक जिनके
है, उन पुरुषोंके मन भाता ॥ २ ॥ दर्शन ज्ञान
चरित्रस्वरूपी, मारग तुमने दिखलाया । यही मार्ग
हितकारी सबका, पूर्व ऋषीगणने गाया ॥ ३ ॥

रत्नत्रयको भूल न जावें, इसीलिये उपनयन करें। ब्रह्मचर्यको दृढतम पालें, सप्तव्यसनका त्याग करें ॥ ४ ॥ नीतिमार्गपर नित्य चलें हम योग्याहार विहार करें । पालें योग्याचार सदाहम, वर्णाचार विचार करें ॥ ५ ॥ धर्ममार्ग अरु वैधमार्गसे, देशोद्धार विचार करें । आर्षवचन हम दृढतम पालें, सत्सिद्धांतप्रचार करें ॥ ६ ॥ श्रीजिनधर्म बढै दिनदूनो, पंच आप्तनुति नित्य करें। सत्संगतिको पाकर स्वामिन्, कर्म कलंक समूल हरें ॥ ७ ॥ फलें भाव ये सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं। 'लाल' बाल मिल भाल वीरके, चरणोंमें शिर धरते हैं ॥ ८ ॥

५० शारदाष्टक ।

नमो केवल नमोकेवल रूप भगवान । मुख ओंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै । रचि रचि आगम उपदिसै भविक जीव संशय निवारैं। सो सत्यारथ शारदा. तासु भक्ति उर आन्। छंद भुजंगप्रयातमैं. अष्टक कहौं बखान ॥ १ ॥

॥८॥ अशोका मुदेका विवेका विधानी। जगज्जंतु मित्रा विचित्रावसानी॥ समस्ता विलोका निरस्ता निदानं। नमोदेवि० ॥९॥

शार्दूल।

जैनवानी जैनवानी सुनहिं जे जीव।
जे आगमरुचि धारि. जे प्रतीत मनमांहिं आनहिं।
अव धारहिं जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहिं॥
जे हितहेतु बनारसी देहिं धर्म उपदेश।
ते सव पावहिं परमसुख तज संसार कलेश ॥१०॥

इति शारदाष्टक।

५१ शारदास्तवन प्रभाती।

केवलिकन्ये वाङ्मय गंगे. जगदंवे अघ नाश हमारे। सत्य स्वरूपे.मंगलरूपे मनमंदिरमें तिष्ठ हमारे ॥टेक॥ जंबूस्वामी गौतम गणधर. हुये सुधर्मा पुत्र तुम्हारे। जगतें स्वयं पार है करके दे उपदेश वहुत जन तारे॥ १॥ कुंदकुंद अकलंकदेव अरु, विद्यानंदिआदिमुनि सारे। तव कुलकुमुद चंद्रमा ये शुभ. शिक्षामृत दे स्वर्ग

निवारे ॥३॥ तूने उत्तम तत्त्व प्रकाशे, जगके भ्रम सब क्षय कर डारे। तेरी ज्योति निरख लज्जा वश, रवि-शशि छिपते नित बिचारे॥ भवभय पीड़ित व्यथित चित्त जन, जब जो आये शरण तिहारे, छिन भरमें उनके सब दुख मेटे, करुणा करि संकट सब टारे॥४॥ जबतक विषय कषाय नशै नहिं, कर्म-शत्रु नहिं जाय निवारे। तबतक 'ज्ञानानंद' रहै नित, सब जीवनतैं समता धारे॥५॥

५७ शारदा-स्तुति ।

[illegible]

अकेला ही हूँ मैं कर्म सब आये सिमटके।
लिया है मैं तेरा शरण अब माता सटकके॥
अभावन है मोकों कष्ट दुख देना जनमका।
करो भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका॥१॥
दुखी हुआ भारी, भ्रमत फिरता हूँ जगतमें।
सहा जाता नाहीं अकल घबराती व्यथनमें॥
करों क्या मा मेरी, चलत वश नाहीं मिटनका।
करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका॥२॥

सुनो माता मोरी, अरज करता हूं दरदमें ।
दुखी जानों मोकों, डरप कर आयो शरनमें ।
कृपा ऐसी कीजे, दरद मिटजावे मरनका । करों
भक्ती तेरी हरो दुख माता भ्रमनका ॥ ३ ॥
पिलावें जो मोकों, सुबुधिकर प्याला अमृतका ।
मिटावें जो मेरा सरव दुख सारा फिरनका ।
परों पावां तेरे हरो दुख सारा फिकरका । करों
भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥ ४ ॥

सवैया ।

मिथ्या-तम नाशवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपा-परभासवेको भानुसी बखानी है । छहों द्रव्य जानवेको बंधविधि भानवेको स्वपर पिछानवेको परम प्रमानी है ॥५॥ अनुभौ बतायवेको जीवके जतायवेको, काहू न सतायवेको भव्य उर आनी है । जहांतहां तारवेको पारके उतारवेको, सुख विसतारवेको येही जिनवानी है ।६

दोहा ।

यह जिनवानी की थुती, अल्प बुद्धि परमान ।

रती । सो जिनमारग सांचा जती ॥५॥ काडी आदि रतन परजंत । घटित अघट धनभेद अनंत ॥ दत्त अदत्त न फरसैं जोइ । तारण तरण मुनीश्वर सोय ॥६॥ पशु पंछी नर दानव देव । इत्यादिक रमणी-रति-सेव ॥ तजहिं निरंतर मदन विकार । सो मुनि नमहुं जगतहितकार ॥ ७ ॥ द्विविध परिग्रह दशविध जान । संख असंख अनंत वखान ॥ सकल संगतज होय निरास । सो मुनि लहै मोखपद वास ॥ ८ ॥ अधोदृष्टि मारग अनुसरै । प्रासुक भूमि निरख पग धरै ॥ सदय हृदय साधै शिवपंथ । सो तपीश निरभय निरग्रंथ ॥ ९ ॥ निरभिमान निरवद्य अदीन । कोमल मधुर दोष दुखहीन ॥ ऐसे सुवचन कहैं स्वभाव । सो रिषिराज नमहुं धरि भाव ।१०। उत्तम कुल श्रावक संचार । तास गेह प्रासुक आहार ॥ भुंजै दोष छियालिस टाल । सो मुनि वंदों सुरति सँभाल ॥ ११ ॥ उचित वस्तु निज हित परहेत । तथा धरम उपकरण अचेत ॥

काल। सुकति पंथकी करे सँभाल॥ शत्रु मित्र दोऊ सम गिणे। सो मुनिराज करमरिपु हणे ॥१९॥ अरहन्त सिद्ध सूरि उवझाय। साधु पंच पद परम सहाय॥ इनके चरणनिमें मनलाय। तिह मुनिवरके वंदों पाय॥२०॥ पावनपंच परमपदइष्ट। जगतमाहिं जानै उतकिष्ट॥ ठानै गुणथुति बारंबार। सो मुनिराज लहै भवपार ॥२१॥ ज्ञानक्रियागुण धारे चित्त। दोष विलोकि करें प्राछित्त॥ नित प्रतिक्रमण क्रिया रसलीन। सो सुसाधु संजम परवीन॥२२॥ श्री जिनवचनरचन विस्तार। द्वादशांग परमागम सार॥ निजमति मान करें सज्झाउ[1]। सो मुनिवर वंदहुं धर भाव॥२३॥ काउसग्ग मुद्रा धारि नित्त। शुद्ध स्वरूप विचारे चित्त॥ त्यागे त्रिविध जोग ममकार। सो मुनिराज नमों निरधार॥ २४॥ प्रासुक शिला उचित भू खेत। अचल अंग समभाव समेत॥ पच्छिमरैन अलप निद्राल

1 स्वाध्याय।

५४। अथ भूधरकृत गुरुस्तुति।

बंदौं दिगंबर गुरुचरन जग,—तरन तारन जान। जे भरमभारी रोगको हैं, राजवैद्य महान जिनके अनुग्रह विन कभी, नहिं कटै कर्मजँजीर। ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥ १ ॥ यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार। ये भोग विषपकवानसे, इहभांति शोच विचार ॥ तप विरचि श्रीमुनि वनबसे सब छांडि परिगह भीर। ते साधु०॥२॥ जे काच कंचनसम गिनहिं, अरि मित्र एक सरूप। निंदा बड़ाई सारिखी, वनखंड शहर अनूप ॥ सुख दुःख जीवनमरनमैं, नहिं खुशी नहिं दिलगीर। ते साधु० ॥३॥ जे बाह्य परवत वनबसैं, गिरि गुफा महल मनोग। सिल सेज समता सहचरी, शशिकिरनदीपक जोग ॥ मृग मित्र भोजन तपमई विज्ञान निरमल नीर। ते साधु० ॥ ४ ॥ सूखहिं सरोवर जल भरे, सूखहिं तरंगिनि-तोय ॥ बाटहि बटोही ना चलैं. जहँ घाम

गरमी होय ॥ तिहँकालमुनिवरतपतपाहि, गिरि शिखरठाडे धीर । ते साधु० ॥ ५ ॥ घनघोर गरजहिं घनघटा, जलपरहिं पावसकाल । चहुँ ओर चमकहि बीजुरी, अति चलै सीरी व्याल ॥ तरुहेठ तिष्ठहिं तव जती, एकान्त अचल शरीर । ते साधु० ॥ ६ ॥ जव शीतमास तुपारसों, दाहै सकल वनराय । जव जमै पानी पोखरां, थरहरै सवकी काय ॥ तव नगन निवसैं चौहटै, अथवा नदीके तीर । ते साधु० ॥७॥ करजोर 'भूधर' बीनवै, कव मिलहिं वे मुनिराज । यह आशा मनकी कव फलै, मम सरहिं सगरे काज ॥ संसार विषम विदेशमैं, जे विना कारण वीर । ते साधु० ॥ ८ ॥

५५ अथ भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति ।

राग भरतरी—दोहा ।

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जिहाज ।
आप तिरहिं पर तारहीं, ऐसे श्रीऋषिराज ॥
॥ ते गुरु० ॥१॥ मोहमहारिपु जानिकैं छाड्यो

सब घरबार। होय दिगंबर वन बसे, आतम शुद्ध विचार ॥ ते गुरु० ॥२॥ रोग उरग-बिलवपु गिण्यो, भोग भुजंग समान। कदलीतरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान ॥तेगुरु०॥३॥ रतन-त्रयनिधिउरधरैं, अरु निरग्रंथ त्रिकाल। मार्‍यो कामखवीसको, स्वामी परमदयाल ॥ तेगुरु० ॥ पंचमहाव्रत आदरैं, पांचों समिति समेत। तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर पदहेत ॥ तेगुरु० ॥ ५ ॥ धर्म धरैं दशलाछनी, भावैं भावन सार। सहैं परीषह बीस द्वै, चारित-रतन-भँडार ॥ तेगुरु०६ ॥ जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर। शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर ॥ ते गुरु० ७ ॥ पावस रैन डरावनी, बरसै जलधरधार। तरुतल निवसै तब यती, बाजै झंझा ब्यार ॥ ते गुरु० ८ ॥ शीत पड़ै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय। तालतरंगनिके तटैं. ठाडे ध्यान लगाय ॥ ते गुरु० ।९। इहि विधि दुद्धर तप तपैं. तीनोंकाल मंझार। लागे

सहज सरूपमें तनसों ममत निवार ॥ते गुरु०॥
पूरव भोग न चिंतवैं, आगम बांछैं नाहिं। चहुं-
गतिके दुखसों डरै, सुरति लगी शिवमाहिं ॥
ते गुरु० ॥११॥ रंगमहलमें पौढते, कोमल सेज
बिछाय। ते पच्छिम निशि भूमिमें, सोवें संवरि
काय ॥ते गुरु० १२॥ गजचढि चलते गरवसों,
सेना सजि चतुरंग। निरखि निरखि पग वे धरैं,
पालैं करुणा अंग ॥ ते गुरु०॥१३॥ वे गुरु चरण
जहां धरे, जगमें तीरथ जेह। सो रज मम मस्तक
चढो, भूधर मांगे एह ॥ ते गुरु० १४ ॥

५६। अथ गुर्वावली लिख्यते।

जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे। संसारविषम
खारसों जिनभक्त उधारे ॥ टेक ॥ जिनवीरके
पीछे यहां निर्वानके थानी। बासठ वरषमें तीन
भये केवलज्ञानी। फिर सौ बरषमैं पांच श्रुतके-
वली भये। सर्वांग द्वादशांगके उमंग रस लये॥
॥जैवंत०॥१॥ तिस बाद वर्ष एकशतक और
तिरासी। इसमैं हुये दशपूर्व ग्यारै अंगके भाषी॥

ग्यारै महामुनीश ज्ञानदानके दाता । गुरुदेव सोई देहिंगे भविवृंदको साता। जैवंत० २। तिस बाद वर्ष दोय शतक बीसके माहीं । मुनि पांच ग्यारै अंगके पाठी हुये ह्यांहीं ॥ तिसबाद वरष एकसौ अठारमें जानी । मुनि चार हुये एक आचारांगके ज्ञानी । जैवंत० ॥ ३ ॥ तिसबाद हुये हैं जु सुगुरु पूर्वके धारक । करुणानिधान भक्तको भवसिंधु उधारक ॥ करकंजतैं गुरु मेरे उपर छांह कीजिये। दुख द्वंद्वको निकंदके आनंद दीजिये ॥ जैवंत० ॥ ४ ॥ जिनवीरके पीछेसों वरष छहसौ तिरासी । तबतक रहे इक अंगके गुरुदेव अभ्यासी ॥ तिसबाद कोई फिर न हुये अंगके धारी। पर होते भये महा सुविद्वान उदारी ॥ जैवंत०।५। जिनसों रहा इस कालमें जिनधर्मका शाका। रोपा है सात भंगका अभंग पताका ॥ गुरुदेव नयंधरको आदि दे बडे नामी । निरग्रंथ जैनपंथके गुरुदेव जो स्वामी ॥ ॥ जैवंत० ६ ॥ भाषों कहां लों नाम बडी बार

लगैगा। परनाम करों जिससे बेडा पार लगैगा जिसमेंसे कछुइक नाम सूत्रकारके कहों। जिन नामके प्रभावसे परभावको दहों ॥जैवंत० ७॥ तत्वार्थसूत्र नामि उमास्वामी किया है। गुरुदेव ने संक्षेपसे क्या काम किया है ॥ जिसमें अपार अर्थने विश्राम किया है। बुधवृंद जिसे ओरसे परनाम किया है ॥जैवंत०।८। वह सूत्र है इस कालमें जिनपंथकी पूंजी। सम्यक्त्व ज्ञानभाव है जिस सूत्रकी कूंजी ॥ लडते हैं उसी सूत्रसों परवादके मूंजी ॥ फिर हारके हट जाते हैं इक पक्षके लूंजी ॥ जैवंत०।९। स्वामी समंतभद्र महाभाष्य रचा है। सर्वंग सात भंगका उमंग मचा है ॥ परवादियोंका सर्व गर्व जिससे पचा है। निर्वान सदनका सोई सोपान जचा है ॥ ॥जैवंत०१०। अकलंकदेव राजवारतीक बनाया। परमान नयनिक्षेपसों सब वस्तु बताया ॥ श्लोक वारतीक विद्यानंदजी मंडा। गुरुदेवने जडमूल सों पाखंडाको खंडा ॥जै० ११॥ गुरु पूज्यपाद

जी हुये मरजादके धोरी। सर्वार्थसिद्धि सूत्र की टीका जिन्हों जोरी॥ जिसके लखेसों फिर न रहे चित्तमें भरम। सव जीवको भारे है स्वपरभावका मरम॥ जैवंत०। १२। धरसेन गुरुजी हरो भविवृंदकी व्यथा। अग्रायणीयपूर्वमें कुछ ज्ञान जिन्हें था॥ तिनके हुये दो शिष्य पुष्पदंत भुतवली। धवलादिकोंका सूत्र किया जिस्से मग चली॥ जैवंत०। १३। गुरु औरने उस सूत्रका सव अर्थ लहा है। तिन धवल महाधवल जयसुधवल कहा है॥ गुरु नेमिचंद्रजी हुये धवलादिके पाठी। सिद्धांतके चक्रीशकी पदवी जिन्हों गांठी॥ जैवंत०॥ तिन तीनोंही सिद्धांतके अनुसारसों प्यारे। गोमट्टसार आदि सुसिद्धांन उचारे॥ यह पहिले सुसिद्धांतका विरतंत कहा है। अव और सुनो भावसों जो भेद महा है॥ जैवंत०।१५। गुणधर मुनीशने पढा था तीजा पराभृत। ज्ञानप्रवाद पूर्वमें जो भेद है आश्रित। गुरु हस्तिनागजीने सोई जिन-

सों लहा है। फिर तिनसों यतीनायकने मूल गहा है ॥ जैवंत०। १६। तिन चूर्णिका स्वरूप तिस्से सूत्र बनाया। परमान छै हजार यों सिद्धांतमें गाया ॥ तिसका किया उद्धरण समुद्धरण जु टीका। बारह हजारके प्रमान ज्ञानकी ठीका ॥ जैवंत०। १७। तिसहीसे रचा कुंदकुंदजीने सुशासन। जो आत्मीक पर्म धर्मका है प्रकाशन ॥ पंचास्तिकाय समयसार सारप्रवचन। इत्यादि सुसिद्धांत स्यादवादका रचन ॥ जैवंत०। १८। सम्यक्त्वज्ञान दर्श सुचारित्र अनूपा। गुरुदेवने अध्यात्मीक धर्म निरूपा ॥ गुरुदेव अमीइंदुने तिनकी करी टीका ॥ झरता है निजानंद अमीवृंद सरीका ॥ जैवंत०। १९। रचनानुवेदभेदके निवेदके करता। गुरुदेव जे भये हैं पापतापके हरता ॥ श्रीवट्टकेर देवजी वसुनंदजी चक्री। निरग्रंथ ग्रंथ पंथके निरग्रंथके शक्री ॥ जैवंत०। २०। योगींद्रदेवने रचा परमात्मप्रकाश। शुभचंद्रने किया है ज्ञान आर-

गव विकाश ॥ की पद्मनंदजीने पद्मनंदिपची·
सी । शिवकोटिने आराधना सुसार रचीसी ॥
जैवंत । २१ । दोसंध तीनसंध चारसंध पांचसंध ।
षटसंध सातसंधलों गुरु रचा है प्रबंध ॥ गुरु देव-
नंदिने किया जैनेंद्रव्याकरन । जिस्से हुवा पर-
वादियोंके मानका हरन ॥ जैवंत० । २२ । गुरु-
देवने रची है रुचिर जैनसंहिता । वरनाश्रमादि
की क्रिया कहे हैं जु संहिता ॥ वसुनंदि वीरनंदि
यशोनंदि संहिता । इत्यादि बनी हैं दशोंप्रकार
संहिता ॥ जैवंत० ।२३। परमेयकमलमारतंडके
हुये कर्ता । प्रभेन्दु माणिक्यनंदि नयप्रमाणके
भर्ता ॥ जैवंत सिद्धसेन सुगुरु देव दिवाकर ।
जै वादिसिंह देवसिंह जैति यशोधर ॥ जैवंत०
२४ ॥ श्रीदत्त काणभिक्षु और पात्रकेशरी ।
श्रीवज्रसूर महासेन श्रीप्रभाकरी । शिरीजटा·
चार गुरु वीरसेन हैं । जैसेन शिरीपाल मुझे
कामधेन हैं ॥ जैवंत । २५ । इन एक एक गुरूने
जो ग्रंथ बनाया । कहि कौन सके नाम कोइ

आला। परतीतसों उरप्रीतिसों ध्यावै जु त्रिकाला। इहलोकका सुख भोग सो सुरलोकमें जावै। नरलोकमें फिर आयके निरवानको पावै। जैवंत दयावंत सुगुरुदेव हमारे। संसार विषमखारसों जिन भक्त उधारे ॥ ३१॥इति०॥

५७। मंगलाष्टक

कवित्त (३१ मात्रा)

संघसहित श्रीकुंदकुंदगुरु, वंदनहेत गये गिरनार। वाद पर्यो तहँ संशयमतिसों, साक्षी बदी अंविका[1]कार॥ 'सत्य' पंथ निरग्रंथ, दिगंबर, कही सुरी तहँ प्रगट पुकार। सो गुरुदेव वसौ उर मेरे, विघनहरण मंगल करतार ॥१॥ स्वामी समंतभद्र मुनिवरसों शिवकोटी हठ कियो अपार। वंदन करो शंभुपिंडीको, तब गुरु रच्यो स्वयंभू भार॥ वंदन करत पिंडिका फाटी, प्रगट भये जिन चंद्र उदार। सो० ॥२॥ श्रीअकलंकदेव मुनिवरसों, वाद रच्यौ जहँ

1। अंबादेवीकी मूर्ति।

की, प्रगट भई त्रिभुवन जयकार ॥ सो० ॥७॥
श्रीमत अभयचंद्र गुरुसों जब, दिल्लीपति इमि कही पुकार । कै तुम मोहि दिखावहु अतिशय. कै पकरौ मेरो मत सार ॥ तब गुरु प्रगट अलौकिक अतिशय, तुरत हर्‍यो ताको मद भार । सो गुरुदेव वसौ उर मेरे विघन हरन मंगल करतार ॥८॥

दोहा—

विघन हरण मंगल करण वांछित फल दातार ।
'वृंदावन' अष्टक रच्यो, करौ कंठ सुखकार ॥

५८। आचार्यवर्य रविषेणस्तुति।

रविसे रविसेन अचारज हैं, भविवारिजके विकसावनहारे । जिन पद्मपुराण बखान कियौ भव सागरतैं जगजंतु उधारे ॥ सियरामकथासु जथा रथ भाखि, मिथ्यातसमूह समस्त विदारे । भवि 'वृंद' विथा अब क्यों न हरौ, गुरुदेव तुम्हीं मम प्राण अधारे ॥१॥

५९। आचार्यवर्य जिनसेनस्तुति।

भगवाज्जिनसेन कविंद नमों जिन आदि जि-

चढ़ी तिनपदतीर । वे शांति० ॥३॥ यह वचन सुनि तब स्वामिने, निज वचन उचरे सार । सुनिकी जु दीक्षा कठिन है, तू क्षुल्लकी व्रत धार ॥ तब भये क्षुल्लक ऐलकीव्रत, चरत हैं नित धीर । वे शांति०।४। इम धार क्षुल्लकपद त्रिवत्सर विहरिकर निज देश । बोधे अनेकन भव्यजन करके जु वृष-उपदेश ॥ पुनि गये पुर कुंभोज-ढिग-बाहूवली-गिरि-तीर ॥ वे शांति० ॥ ५ ॥ तहँ मुनि विराजहिं आदिसागर, तिन चरन ढिग सार । धारे जु ऐलकके सु व्रत, पुनि वंदि श्रीगिरनार । आये तहांतैं गिरि जु कुंडल, बंदि श्रीजिनवीर । सो शांति० ॥ ६ ॥ फिर ग्राम नसलापुर गये तहँ कियो चातुरमास । तहँतैं विहरि बाबानगरके वंदिकर जिनपास ॥ फिर गये ऐनापुर तहांपर मुनि विराजे धीर । सो शांति० ॥ ७ ॥ तहँतैं चले मुनि साथही, यर-नाल है इक ग्राम । तहँ पंचकल्याणक महोत्सव, ह्वां रचा सुखधाम ॥ तहँ पायसागर भी विराजे,

भर तिष्ठे गुफामें, फणि चढ्यो जु शरीर। सोशांति० ॥ १३ ॥ फणि देखि तुम तनपर भविकजन, कियो सोच विचार। किहविध जु यह उपसर्ग टरिहै, किये वहु उपचार ॥ तौ भी न फणिका मन भरा तजता, न तुमतन तीर। सोशांति० १४ ॥ जब ध्यान पूरनका समय आया, तवहिं तज दर्प। स्वयमेव मनमें धार मुनितन, तज गया वह सर्प। यह लखि महातम भविकजन, सब शांति पा चित धीर। सो शांति० ॥ १५ ॥ पुनि जाय नांदणि ग्राममें, शुभ चतुरमासा थाप। मुनि वीरसागर चंद्रसागर, आदि जुत श्रीआप॥ तहँ भव्यजन आये वहुत, व्रत धरे तुमपद तीर। सो शांति० ॥१६॥ पुनिकर विहार प्रचार जिन वृष, आठ मास-मंझार। कुंभोज ढिग गिरि बाहुवलिपर चतुरमासा धार ॥ चहुँसंघने उपदेश पाकर निकटकी भवतीर ।सोशांति०॥१७॥ तहँ सेठ घासीलाल पूनमचंद नयकर माथ। सम्मेदगिरिको संघ लेकर. चलहु श्रीमुनिनाथ ॥ यह

प्रार्थना मुनि संयम, प्राचे नरनि धीर। सौभा-
गि० ॥१८॥ महिमें नन्दे दरशनि गोपि जु करन
भूप उपदेश। तुम चरण जगो तिन पावन, भयाउ
बहुत देश ॥ सम्मेदशिखर लख भविजन, पाय
दर्शन धीर। सौभागि० ॥१९॥ फाल्गुन सुदी
पूर्णिमा दिवस, गीर्वाण सौपन जाय। तुम चरन
दर्शन पाय पावन, भयो 'पन्नालाल'। नित
मिलो तुम पद सेव मैं हौं, चाह तिनमें धीर ।
मो शान्तिसागर मन बसहु नित, हरहु पातक
पीर ॥ २० ॥ इति ॥

चौथा अध्याय।

स्तोत्रसंग्रह संस्कृत और भाषा।

भगवज्जिनसेनाचार्यकृत

§१। श्रीजिनसहस्रनामस्तोत्र।

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि। स्वात्म-
नैव तथोद्भूतवृत्तये ऽचिन्त्यवृत्तये ॥ १ ॥ नमस्ते
जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमो नमः। विदांवर नम-

स्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर् ॥ २ ॥ कामशत्रुहणं देवमामनंति मनीषिणः। त्वामानमस्सुरेन्मौलि-भामालाभ्यर्चितक्रमम् ॥३॥ ध्यानदुर्घणनिर्भिन्न-घनघातिमहातरुः। अनंतभवसंतानजयोप्या-सीरनंतजित् ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यनिर्जयाव्याप्तदुर्द-र्प्पमतिदुर्जयं। मृत्युराजं विजित्यासीज्जन्ममृत्युं-जयो भवान् ॥ ५ ॥ विधूताशेषसंसारो वंधुर्नो भव्यवांधवः। त्रिपुरारिस्त्वमीशोसि जन्ममृ-त्युजरांतकृत् ॥ ६ ॥ त्रिकालविजयाशेषतत्त्व-भेदात् त्रिविधोच्छिदं। केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रो-सि त्वमीशिता ॥७॥ त्वामंधकांतकं प्राहुर्मोहां-धासुरमर्द्दनात्। अर्द्धन्ते नारयो यस्मादर्धनारी-श्वरोस्युत ॥८॥ शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरि-तारिहरो हरः। शंकरः कृतशं लोके संभवस्त्वं भवन्मुखे ॥ ९ ॥ वृषभोसि जगज्ज्येष्ठः गुरुर्गुरु गुणोदयैः। नाभेयो नाभिसंभूतेरिक्ष्वाकुकुल-नंदनः ॥ १० ॥ त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोक-स्य लोचने। त्वं त्रिधाबुधसन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञान-

धारकः ॥ ११ ॥ चतुर्मांगल्यमूर्तिस्त्वं शरणं चतुरः सुधीः। पंचब्रह्ममयो देवः पावनस्त्वं पुनीहि मां ॥१२॥ स्वर्गावतारिणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः। जन्माभिषेकवामाय वामदेव नमोस्तु ते ॥ १३ ॥ सुनिःक्रांताय घोराय परं प्रशममीयुषे। केवलज्ञानसंसिद्धावीशानाय नमोस्तु ते ॥१४॥ पुरुस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्तपदभागिने। नमस्तत्पुरुषावस्थां भावनार्णवविभ्रते ॥ १५ ॥ ज्ञानावरणनिर्ह्रास नमस्तेनंतचक्षुषे। दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदर्शिने ॥ १६ ॥ नमो दर्शनमोहघ्नादिक्षायिकामलदृष्टये। नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे ॥ १७ ॥ नमस्तेनंतवीर्याय नमोनंतसुखाय ते। नमस्तेनंतलोकाय लोकालोकविलोकिने ॥ १८ ॥ नमस्तेनंतदानाय नमस्तेनंतलब्धये। नमस्तेनंतभोगाय नमोनंताय भोगिने ॥ १९ ॥ नमः परमयोगाय नमस्तुभ्यमयोनये। नमः परमपूताय नमस्ते परमर्षये ॥ २० ॥ नमः परमविद्याय नमः परमक-

च्छिदे । नमः परमतत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ॥
२१॥ नमः परमरूपाय नमः परमतेजसे । नमः
परममार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥ २२ ॥ परम-
र्द्धिजुषे धाम्ने परमज्योतिषे नमः । नमः पारे-
तमः प्राप्तधाम्ने ते परमात्मने ॥२३॥ नमः क्षीण
कलंकाय क्षीणबंध नमोस्तु ते । नमस्ते क्षीण-
मोहाय क्षीणदोषाय ते नमः ॥२४॥ नमः सुग-
तये तुभ्यं शोभनागतमीयुषे । नमस्तेतींद्रिय-
ज्ञानसुखायानिंद्रियात्मने ॥ २५ ॥ कायबंधन-
निर्मोक्षादकायाय नमोस्तु ते । नमस्तुभ्यमयो-
गाय योगिनामपि योगिने ॥ २६ ॥ अवेदाय
नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः । नमः परमयो-
गींद्रवंदितांघ्रिद्वयाय ते ॥ २७ ॥ नमः परम
विज्ञान नमः परमसंयम । नमः परमदृग्दृष्टपर-
मार्थाय ते नमः ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यमलेश्याय
शुक्लेश्यांशकस्पृशे । नमो भव्येतरावस्थाव्य-
तीताय विमोक्षणे ॥ २९ ॥ संज्ञासंज्ञिद्वयावस्था-
व्यतिरिक्तामलात्मने । नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः

क्षायिकदृष्टये ॥ ३० ॥ अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे । व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धे पारमीयुषे ॥ ३१ ॥ अजराय नमस्तुभ्यं नमस्तेतीत जन्मने । अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने ॥ ३२ ॥ अलमास्तां गुणस्तोत्रमनंतास्तावका गुणाः त्वन्नामस्मृतिमात्रेण परमं शं प्रशास्महे ॥ ३३ ॥ एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्यापरमया सुधीः । पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पाप शांतये ॥

इति प्रस्तावना ।

प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षणस्त्वं गिरां पतिः नाम्नामष्टसहस्रेण त्वां स्तुमोभीष्टसिद्धये ॥१॥ श्रीमान्स्वयंभूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः । स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥ २ ॥ विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनीश्वरः ॥ ३ ॥ विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥४॥ विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः । विश्वदृक्

विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥५॥ जिनो जिष्णुरमेयात्मा जगदीशो जगत्पतिः । अनंतचिदचिंत्यात्मा भव्यबंधुरबंधनः ॥६॥ युगादिपुरुषो ब्रह्मा पंचब्रह्ममयः शिवः । परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥७॥ स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥ ८ ॥ प्रशांतारिरनंतात्मा योगी योगीश्वरार्चितः । ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मेद्याविद्यतीश्वरः ॥ ९ ॥ शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः । सिद्धः सिद्धांतविद् ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥ १०॥ सहिष्णुरच्युतोनंतः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः । प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥ विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः । परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥१२॥

॥इति श्रीमदादिशतम् ॥१॥

(यहां उदकचंदनतंदुल ..आदि श्लोक पढ़कर अर्घ चढ़ाना चाहिये)

दिव्य भाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः ।

पूतात्मा परमज्योतिधर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥१॥
श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजाविरजाः शुचिः । तीर्थ-
कृत्केवली शांतः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥२॥
अनंतदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः । मुक्तः
शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥ ३ ॥
निरंजनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिर्निरामयः । अ-
चलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥४॥
अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत् ।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥
५॥ वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः ।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभांको वृषोद्भवः ॥६॥ हि-
रण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूतभावनः । प्रभवो
विभवो भास्वान् भवो भावो भवांतकः ॥ ७ ॥
हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोद्भवः । स्वयं-
प्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः सर्वादिः
सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः । सर्वात्मा सर्व-
लोकेशः सर्ववित्सर्वलोकजित् ॥ ९ ॥ सुगतिः
सुश्रुतः सुश्रुक् सुवाक् सूरिबहुश्रुतः विश्रुतः

विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥ १० ॥
सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात् । भूत-
भव्यभवद्भर्ता विश्वविद्या महेश्वरः ॥ ११ ॥

इति दिव्यादिशतम् ॥ २ ॥ अर्घं ।

स्थविष्ठः स्थविरो जेष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः ।
स्थेष्ठो गारिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठो निष्ठो गारिष्ठगीः
॥१॥ विश्वभृद्विश्वसृट् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वना-
यकः । विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजि-
तांतकः ॥२॥ विभवो विभयो वीरो विशोको
विजरो जरन् । विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो
वीतमत्सरः ॥३॥ विनयेजनतावंधुर्विलीनाशेष-
कल्मषः । वियोगो योगविद्विद्वान्विधातासुविधिः
सुधीः ॥ ४ ॥ क्षांतिभाक्पृथिवीमूर्तिः शांति-
भाक्सलिलात्मकः । वायुमुर्तिरसंगात्मा वह्नि-
मूर्तिरधर्मधृक् ॥५॥ सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा
सुत्रामपूजितः । ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञांगम-
मृतं हविः ॥ ६ ॥ व्योममूर्त्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो
निर्मलोऽचलः । सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्य-

मूर्तिर्महाप्रभः ॥ ७ ॥ मंत्रविन्मंत्रकृन्मंत्री मंत्रमू-
र्तिरनंतकः । स्वतंत्रस्तंत्रकृत्स्वांतः कृतांतांतः कृ-
तांतकृत् ॥ ८ ॥ कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृ-
त्यः कृतक्रतुः । नित्यो मृत्युंजयो मृत्युरमृता-
त्मामृतोद्भवः ॥ ९ ॥ ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा
ब्रह्मसंभवः । महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेट् महाब्रह्मपदेश्वरः
॥ १० ॥ सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः ।
प्रशमात्मा प्रशांतात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥

इति स्थविष्ठादिशतम् ॥ ३ ॥ अर्घं ।

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टापद्मविष्टरः ।
पद्मेशः पद्मसंभूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥ १ ॥ पद्म-
योनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः । स्त-
वनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥ २ ॥
गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः ।
गुणाकरो गुणांभोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥ ३ ॥
गुणाकरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः शर-
ण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥ ४ ॥
अगण्यः पुण्यधीर्गण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः ।

धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥५॥
पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः ।
निर्द्वंद्वो निर्मदः शांतो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥६॥
निर्निमेषो निराहारो निःक्रियोनिरुपप्लवः । नि-
ष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगो निराश्रयः ॥७॥
विशालो विपुलज्योतिरतुलोचिंत्यवैभवः सुसं-
वृतः सुगुप्तात्मा सुब्रत्सुनयतत्त्ववित् ॥८॥ एक-
विद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः । धीशो
विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतांतकः ॥ ९ ॥
पिता पितामहःपाता पवित्रःपावनो गतिः । त्राता
भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥ १० ॥ कविः
पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः । प्रतिष्ठः प्रस-
वो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥ ११ ॥

इति महाशोकध्वजादिशतम् ॥ ४ ॥ अर्घं ।

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्य शुभलक्षणः
निरक्षः पुंडरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥१॥
सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धिसाधनः ।
बुद्ध बोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिकः ॥२॥

वेदांगो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः । वेदवे-
द्यः स्वयंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥३॥ अनादि-
निधनो व्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः । युगादि-
कृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥ ४ ॥ अती-
द्रोऽर्तींद्रियो धींद्रो महेंद्रोऽतींद्रियार्थदृक् । अ-
निंद्रियोऽहमिंद्रार्च्यो महेंद्रमहितो महान् ॥ ५ ॥
उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः । अग्रा-
ह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्यं परमेश्वरः ॥ ६ ॥ अनंत-
र्द्धिरमेयर्द्धिरचिंत्यर्द्धिः समग्रधीः प्राग्र्यः प्राग्रह-
रोऽभ्यग्र्यः प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रजः ॥ ७ ॥ महा-
तपा महातेजा महोदर्को महोदयः । महायशो
महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥८॥ महाधैर्यो
महावीर्यो महासंपन्महाबलः । महाशक्तिर्महा-
ज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥ ९ ॥ महामतिर्महा-
नीतिर्महाक्षांतिर्महोदयः । महाप्राज्ञो महाभागो
महानंदो महाकविः ॥१०॥ महामहामहाकीर्ति-
र्महाकांतिर्महावपुः । महादानो महाज्ञानो महा-
योगो महागुणः ॥११॥ महामहपतिः प्राप्तमहा-

कल्याणपंचकः । महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीवृक्षादिशतम् ॥ ५ ॥ अथ।

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः । महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१॥ महाव्रतपतिर्मह्यो महाकांतिधरोऽधिपः । महामैत्रीमयोऽमेयो महोपायो महोदयः ॥ २ ॥ महाकारुण्यको मंता महामंत्रो महायतिः । महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥ ३ ॥ महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महेष्टवाक् । महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥ ४ ॥ महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः । महापराक्रमोऽनंतो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥ ५ ॥ महाभवाब्धिसंतारिर्महामोहाद्रिसूदनः । महागुणाकरः क्षांतो महायोगीश्वरः शमी ॥ ६ ॥ महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः । महाकर्मारिरात्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥ ७ ॥ सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः । असंख्ययोऽप्रमेयात्मा शमा-

मा प्रशमाकरः ॥ ८ ॥ सर्वयोगीश्वरोऽचिंत्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः । दांतात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥ ९ ॥ प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः । प्रक्षीणबंधः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥१०॥ प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः । प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥ ११ ॥ आनंदो नंदनो नंदो वंद्योऽनिंद्योऽभिनंदनः । कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिंजयः ॥१२॥

इति महामुन्यादिशतम् ॥ ६ ॥ अथ

असंस्कृतः सुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतांतकृत् । अंतकृत्कांतिगुः कांतश्चिंतामणिरभीष्टदः ॥१॥ अजितोजितकामारिरमितोऽमितशासनः । जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितांतकः ।२। जिनेंद्रः परमानंदो मुनींद्रो दुंदुभिस्वनः । महेंद्रवंद्यो योगींद्रो यतींद्रो नाभिनंदनः ॥ ३ ॥ नाभेयो नाभिजो जातः सुव्रतो मनुरुत्तमः अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः ॥४॥

सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः । वि-
शिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥
५ ॥ क्षमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी ।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः
॥ ६ ॥ सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः ।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥ ७ ॥
सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः ।
सत्याशीः सत्यसंधानः सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥
स्थेयान्स्थवीयलेदीयान्दवःयादूरदर्शनः । अणोर-
णीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसां ॥९॥ सदायोगः
सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः । सदागतिः सदा
सौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥ १० ॥ सुघोषः
सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत् । सुगुप्तो
गुप्तिभृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥ ११ ॥

इति असंस्कृतादिशतम् ॥ ७ ॥ अर्घं ।

बृहन्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः ।
मनीषी धिषणो धीमांञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ॥
१ ॥ नैकरूपो नयस्तुंगो नैकात्मा नैकधर्मकृत् ।

अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥
ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः। पद्म-
गर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥ लक्ष्मी-
वांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता। मनोहरो
मनोज्ञांगो धीरो गंभीरशासनः ॥ ४ ॥ धर्मयूपो
दयायागोः धर्मनेमिर्मुनीश्वरः धर्मचक्रायुधो
देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥ ५ ॥ अमोघवागमो-
घाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः। सुरूपः सुभगस्त्या-
गी समयज्ञः समाहितः ॥ ६ ॥ सुस्थितः स्वा-
स्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः । अलेपो
निष्कंलकात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥ ७ ॥ वश्यें-
द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेंद्रियः। प्रशां-
तोऽनंतधामर्षिमंगलं मलहानघः ॥ ८ ॥ अनी-
दृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः। अमूर्त्तो मूर्ति-
मानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥ ९ ॥ अध्यात्म-
गम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवंदितः। सर्वत्रगः
सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥ १० ॥ शंकरः
शंवदो दांतो दमी क्षांतिपरायणः। अधिपः पर-

मानंदः परात्मज्ञः परात्परः ॥ ११ ॥ त्रिजगद्वल्ल-
भोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदयः। त्रिजगत्पतिपूजांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥ १२ ॥

इति बृहदादिशतम् ॥ ८ ॥ अर्घं

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥१॥
पुराणपुरुषः पूर्वः कृतपूर्वांगविस्तरः। आदिदेवः
पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥ २ ॥ युगमुख्यो
युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः। कल्याणवर्णः
कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥ ३ ॥
कल्याणः प्रकृतिर्दीप्तः कल्याणात्मा विकल्मषः।
विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः
॥ ४ ॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्‌बंधुर्जगद्विभुः।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥ ५ ॥
चराचर गुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः। सद्यो-
जातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥ ६ ॥
आदित्यवर्णो भर्माभ सुप्रभः कनकप्रभः।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ७ ॥

तपनीयनिभस्तुंगो बालार्काभोऽनलप्रभः ।
संध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥ ८ ॥
निष्टप्तकनकच्छायः कनत्कांचनसन्निभः ।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुंभनिभप्रभः ॥ ९ ॥
द्युम्नभाजातरूपाभो दीप्तजांबूनदद्युतिः । सुधौ-
तकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥ १० ॥
शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरक्षमः । शत्रु-
घ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः
॥ ११ ॥ शांतिनिष्ठो मुनिज्ज्येष्ठः शिवतातिः शि-
वप्रदः । शांतिदः शांतिकृच्छांतिः कांतिमान्का-
मितप्रदः ॥ १२ ॥ श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः
प्रतिष्ठितः । सुस्थितः स्थावरः स्थाणुः प्रथीया-
न्प्रथितः पृथुः ॥ १३ ॥

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥ ६ ॥ अथ

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रंथेशो निरंबरः ।
निष्किंचनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥ १ ॥
तेजोराशिरनंतौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः ।
तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः ॥ २ ॥

जगच्चूडामणिर्दीप्तः सर्वविघ्नविनायकः । कलि-
घ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥ ३ ॥
अनिद्रालुरतंद्रालुर्जागरूकः प्रभामयः । लक्ष्मी-
पतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥ मुमु-
क्षुर्बंधमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः । प्रशांत
रसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ॥ ५ ॥ मूलकर्ता-
खिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः । आप्तो वागी-
श्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६॥ प्रवक्ता
वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित् । सुतनुस्तनु-
निर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥ ७ ॥ श्रीशः श्री-
श्रितपादाब्जो वीतभीरभयंकरः । उत्सन्नदोषो
निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥८॥ लोकोत्तरो
लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः । धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः
शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥९॥ प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो
यतिर्नियमितेंद्रियः । भदंतो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृ-
क्षो वरप्रदः ॥ १ ॥ समुन्मूलितकर्मारिः कर्म-
काष्ठा शुशुक्षणिः । कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेया-
देयविचक्षणः ॥११॥ अनंतशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरा-

रिषिलोचनः। त्रिनेत्रस्त्र्यंबकस्त्र्यक्षः केवलज्ञान-
वीक्षणः ॥ १२ ॥ समंतभद्रः शांतारिर्धर्माचार्यो
दयानिधिः। सूक्ष्मदर्शी जितानंगः कृपालुर्धर्मदे-
शकः ॥१३॥ शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशि-
रनामयः। धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्य-
नायकः ॥ १४ ॥

इति दिग्वासादिशतं ॥१०॥ इत्याचार्यकृत सहस्रनामावली। अथ

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥१॥
गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः।
स्तोता तथाप्यसंदिग्ध त्वत्तोऽभीष्टफलं लभेत्
॥२॥ त्वमतोऽसि जगद्बंधुस्त्वमतोऽसि जगद्भि-
षक्। त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धि-
तः ॥ ३ ॥ त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोप-
योगभाक्। त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगं स्वोत्थानंतचतु-
ष्टयः ॥ ४ ॥ त्वं पंचब्रह्मतत्वात्मा पंचकल्याणना-
यकः। षड्भेदभावतत्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः
॥५॥ दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः।

दशावतारनिधार्यो मां पाहि परमेश्वरः ॥ ६ ॥
सुप्रसन्नासावलीहव्धाविलसत्स्तोत्रमालया । अर्व-
त्वं वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥ ७ ॥ इदं
स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः । यः स-
पाठ पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनं ॥८॥ ततः
सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः । पौरुहूतीं
श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥ ९ ॥ स्तुत्वेति
मघवा देवं चराचरजगद्गुरुं । ततस्तीर्थविहारस्य
व्यधात्प्रस्तावनामिमां ॥१०॥ स्तुतिः पुण्यगु-
णोत्कीर्तिः स्तोतः भव्यः प्रसन्नधीः । निष्ठिता-
र्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखं ॥११॥

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं
कस्यचित् । ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता
स्वयं कस्यचित् ॥ यो नेतॄन् नयते नमस्कृतिमल
नंतव्यपक्षेक्षणः स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च
गुरुर्देवः पुरुः पावनः ॥१२॥ तं देवं त्रिदशाधिपा
र्चितपदं घातिक्षयानंतरं । प्रोत्थानंतचतुष्टयं
जिनामिमं भव्याब्जनीनामिनं । मानस्तंभविलो-

कृतानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं। प्राप्तार्चित्यव-र्हिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवंदामहे ॥१३॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

इति श्रीमज्जिनसेनाचार्यविरचितं जिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तं।

१२। श्रीमानतुंगाचार्यविरचित आदिनाथ भक्तामर स्तोत्र।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणामुद्योतकं दलितपापतमोवितानं। सम्यक् प्रणम्य जिन-पदयुगंयुगादा-वालंबनं भवजले पततां जनानां ॥१॥ यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधादुद्भूत बुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः। स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्तहरैरुदारैः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेंद्रं ॥ २ ॥ बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपाद-पीठस्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहं । बालं विहाय जलसंस्थित मिंदुबिंबमन्यः क इच्छाति जन· सहसा गृहीतुं ॥३॥ वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र शशांककांतान्. कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या। कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं, को वा

तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्यां ॥ ४ ॥ सोहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश, कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः। प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेंद्रं, नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थं ॥५॥ अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्मां। यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ॥६॥ त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजां। आक्रांतलोकमलिनीलमशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारं ॥७॥ मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेदमारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्। चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिंदुः ॥८॥ आस्तां तवस्तवनमस्तसमस्तदोषं, त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हंति। दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव पद्माकरेषु जलजानि विकासभांजि ॥९॥ नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ! भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवंतः। तुल्या

तैलपूरः, कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रगटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां दीपोऽप-
रस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥ १६ ॥ नास्तं
कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि
सहसा युगपज्जगंति। नांभोधरोदरनिरुद्धमहा-
प्रभावः सूर्यातिशायिमहिमासि मुनींद्र लोके
॥१७॥ नित्योदयं दलितमोहमहांधकारं, गम्यं
न राहुवदनस्य न वारिदानां। विभ्राजते तव
मुखाब्जमनल्पकांति, विद्योतयज्जगदपूर्वशशांक-
बिंबं ॥१८॥ किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता
वा, युष्मन्मुखेंदुदलितेषु तमस्सु नाथ। निष्पन्न
शालिवनशालिनि जीवलोके, कार्यं कियज्जल-
धरैर्जलभारनम्रैः ॥ १९ ॥ ज्ञानं यथा त्वयि वि-
भाति कृतावकाशं, नैवं तथा हरिहरादिषु नाय-
केषु। तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं, नैवं
तु काचशकले किरणाकुलेपि ॥ २० ॥ मन्ये वरं
हरिहरादय एव दृष्टा दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि
तोषमेति। किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः

शतया मुनीश। दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नांतरेपि न कदाचिदपीक्षितोसि ॥ २७ ॥
उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूखमाभाति रूपममलं
भवतो नितांतं । स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमो-
वितानं, विंवं रवेरिवपयोधरपार्श्ववर्ति ॥ २८ ॥
सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे विभ्राजते
तव वपुः कनकावदातं । विंवं वियद्विलसदंशु-
लतावितानं तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः
॥२९॥ कुंदावदातचलचामरचारुशोभं,विभ्राजते
तव वपुः कलधौतकांतं । उद्यच्छशांकशुचिनि-
र्झरवारिधारमुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौंभं
॥३०॥ छत्रत्रयं तव विभाति शशांककांतमुच्चै-
स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापं । मुक्ताफलप्रकर-
जालविवृद्धशोभं, प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वर-
त्वं ॥ ३१ ॥ गंभीरताररवपूरितदिग्विभागस्त्रै-
लोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः । सद्धर्मराज-
जयघोषणघोषकः सन्, खे दुंदुभिर्ध्वनति ते
यशसः प्रवादी ॥ ३२ ॥ मंदारसुंदरनमेरुसुपा०

रिजातसंतानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा । गंधो-
दबिंदुशुभमंदमरुत्प्रयाता, दिव्यादिवः पतति ते
वयसां ततिर्वा ॥ ३३ ॥ शुंभत्प्रभावलयभूरि-
विभा विभोस्ते, लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षि-
पंती । प्रोद्यद्दिवाकरनिरंतरभूरिसंख्या, दीप्त्या
जयत्यपि निशामपि सोमसौम्यां ॥ ३४ ॥ स्व-
र्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः, सद्धर्मतत्त्वकथनैक-
पटुस्त्रिलोक्याः । दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थ
सर्व भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥
उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांती, पर्युल्लसन्नखमयू-
खशिखाभिरामौ । पादौ पदानि तव यत्र जिनें-
द्र! धत्तः पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयंति
॥३६॥ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेंद्र, धर्मो-
पदेशनाविधौ न तथा परस्य । यादृक्प्रभा दिन-
कृतः प्रहतांधकारा तादृक् कुतो ग्रहगणस्य वि-
काशिनोपि ॥ ३७ ॥ श्च्योतन्मदाविलविलो-
लकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपं ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतंतं, दृष्ट्वा भयं भवति

नो भवदाश्रितानां ॥ ३८ ॥ भिन्नेभकुंभगलदु-
ज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभा-
ग । बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोपि, नाक्रा-
मति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥ ३९ ॥ कल्पांत-
कालपवनोद्धतवह्निकल्पं, दावानलंज्वलितमु-
ज्ज्वलमुत्स्फुलिंगं । विश्वं जिघित्सुमिव संमुख-
मापतंतं, त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषं ॥४०॥
रक्तेक्षणं समदकोकिलकंठनीलं, क्रोधोद्धतं फ-
णिनमुत्फणमापतंतं । आक्रामति क्रमयुगेण नि
रस्तशंकस्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः
॥४१॥ वल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनादमाजौ वलं
बलवतामपि भूपतीनां । उद्यद्दिवाकरमयूखशि-
खापविद्धं, त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति
॥ ४२ ॥ कुंताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगा-
वतारतरणातुरयोधभीमे । युद्धे जयं विजितदु-
र्जयजेयपक्षास्, त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभंते
॥ ४३ ॥ अंभोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्रपा-
ठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ । रंगत्तरंगशिख-

थतयानपात्रास् त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्
ति ॥४४॥ उद्भूत भीषणजलोदरभारभुग्नाः
च्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः । त्वत्पा-
कजरजोमृतदिग्धदेहा, मर्त्या भवंति मकर-
जतुल्यरूपाः ॥ ४५ ॥ आपादकंठमुरुशृंखल-
ष्टितांगा, गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः ।
न्नाममंत्रमनिशं मनुजाः स्मरंतः, सद्यः स्वयं
गतबंधभया भवंति ॥४६॥ मत्तद्विपेंद्रमृगराज-

[illegible] । त-
याशु नाशमुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्त-
मतिमानधीते ॥ ४७ ॥ स्तोत्रस्रजं तव
गुणैर्निबद्धां, भक्त्या मया विविधवर्णवि-
चित्रपुष्पां । धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं, तं
मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमानतुंगाचार्य विरचितमादिनाथस्तोत्रं समाप्तम् ॥

६३ । अथ भक्तामर भाषा ।

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधिकरतार ।
धरमधुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥ १ ॥

चौपाई—

सुरनतमुकुट रतन छवि करैं। अंतर पापतिमिर सब हरें॥ जिनपद बंदों मनवचकाय। भवजलपतित-उधरनसहाय ॥ १ ॥ श्रुतपारग इंद्रादिक देव। जाकी थुति कीनी कर सेव॥ शब्द मनोहर अरथ विशाल। तिस प्रभुकी वरनों गुनमाल ॥२॥ विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन। हो निलज्ज थुति-मनसा कीन। जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै। शशिमंडल बालक ही चहै॥३॥ गुनसमुद्र तुमगुन अविकार। कहत न सुरगुरु पावै पार ॥ प्रलयपवनउद्धत जलजंतु। जलधि तिरै को भुजबलवंतु ॥ ४ ॥ सो मैं शक्तिहीन थुति करूं। भक्तिभाववश कछु नहिं डरूं॥ ज्यों मृगि निजसुतपालन हेत। मृगपतिसन्मुख जाय अचेत ॥५॥ मैं शठ सुधीहँसनको धाम। मुझ तव भक्ति बुलावै राम ॥ ज्यों पिक अंबकलीपरभाव। मधुऋतु मधुर करै आराव ॥६॥ तुमजस जंपत जन छिनमाहिं। जनम जनमके पाप नशाहिं॥

ज्यों रवि उगै फटै ततकाल। अलिवत नील निशातमजाल॥ तव प्रभावतैं कहूं विचार। होसी यह थुति जनमनहार॥ ज्यों जलकमल-पत्रपै परै। मुक्ताफलकी द्युति विस्तरै॥८॥ तुम गुनमहिमा हतदुखदोष। सो तो दूर रहो सुख-पोष। पापविनाशक है तुम नाम। कमलविकाशी ज्यों रविधाम॥ ९॥ नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत। तुमसे तुमगुण वरणत संत॥ जो अध-नीको आपसमान। करै न सो निंदित धनवान॥१०॥ इकटक जन तुमको अविलोय। अवर-विषै रति करै न सोय॥ कोकरि छीरजलधिजल पान। क्षारनीर पीवै मतिमान॥११॥ प्रभु तुम वीतराग गुनलीन। जिन परमानु देह तुम कीन॥ हैं तितने ही ते परमानु। यातैं तुम सम रूप न आनु॥१२॥ कहँ तुम मुख अनुपम अविकार। सुरनरनागनयनमनहार। कहां चंद्रमंडल सक-लंक। दिनमें ढाकपत्र सम रंक॥ १३॥ पूरन-चंद जोति छविवंत। तुमगुन तीनजगत लंघंत॥

एक नाथ त्रिभुवन आधार। तिन विचरत को करै निवार ॥१४॥ जो सुरतिय विभ्रम आरंभ। मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ॥ अचल चलावै प्रलय समीर। मेरुशिखर डगमगैं न धीर ॥१५॥ धूमरहित वाती गतनेह। परकाशै त्रिभुवन घर एह॥ वातगम्य नाहीं परचंड। अपर दीप तुम बलो अखंड॥१६॥ छिपहु न लुपहु राहुकी छांहिं। जगपरकाशक हो छिनमांहिं॥ धन अनवर्त्त दाह विनिवार। रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥१५॥ सदा उदित विदलित मनमोह। विघटित मेघराहु अविरोह॥ तुम मुखकमल अपूरव चंद। जगतविकाशी जोति अमंद॥१८॥ निशदिन शशि रविको नहिं काम। तुम मुख चंद हरै तमधाम॥ जो स्वभावतैं उपजै नाज। सजल मेघ तो कौनहु काज॥१९॥ जो सुबोध सोहै तुममाहिं। हरि हर आदिकमैं सो नाहिं॥ जो द्युति महारतनमैं होय। काचखंड पावै नहिं सोय॥२०॥

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया।
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया॥
कछू न तोहिं देखके जहां तुही विशेखिया।
मनोग चित्तचोर और भूलहू न पेखिया॥२१॥
अनेक पुत्रवंतिनी नितंविनी सपूत हैं। न तो-
समान पुत्र और माततें प्रसूत हैं॥ दिशा ध-
रंत तारिका अनेक कोटि को गिनै। दिनेश
तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै॥२२॥ पुरान
हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो। कहें मुनीश
अंधकारनाशको सुभान हो॥ महंत तोहि जा-
नके न होय वश्य कालके। न और मोहि मो-
खपंथ देय तोहि टालके॥२३॥ अनंत नित्य
चित्तकी अगम्य रम्य आदि हो। असंख्य सर्व-
व्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो॥ महेश का-
मकेतु योग ईश योग ज्ञान हो। अनेक एक
ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो।२४। तुही जिनेश
बुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं तुही जिनेश शंकरो

जगत्त्रये विधानतैं ॥ तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतें। नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥ २५ ॥ नमों करूं जिनेश तोहि आपदा निवार हो। नमों करूं सुभूरि भूमिलोकके सिंगार हो ॥ नमों करूं भवाब्धिनीरराशिशोषहेतु हो। नमों करूं महेश तोहि मोखपंथ दतु हो ॥ २६ ॥

चौपाई १५ मात्रा

तुम जिन पूरनगुनगन भरे। दोष गर्वकरि तुम परिहरे ॥ और देवगण आश्रय पाय। स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥ २७ ॥ तरुअशोकतर किरन उदार। तुमतन शोभित है अविकार ॥ मेघनिकट ज्यों तेज फुरंत। दिनकर दिपै तिमिर निहनंत ॥२८॥ सिंहासन मनिकिरनविचित्र। तापर कंचनवरन पवित्र ॥ तुमतनशोभित किरनविथार। ज्यों उदयाचल रवितमहार ॥२९॥ कुंदपुहुपसितचमर ढुरंत। कनकवरन तुमतन शोभंत ॥ ज्यों सुमेरुतट

निर्मल कांति। झरना झरै नीर उमगांति ॥३०
ऊंचे रहैं सूर दुति लोप। तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ॥ तीन लोककी प्रभुता कहैं मोती झालरसौं छवि लहैं ॥ ३१ ॥
दुंदुभि शब्द गहर गंभीर। चहुँदिशि होय तुम्हारे धीर ॥ त्रिभुवनजन शिवसंगम करै। मानूं जय जय रव उच्चरै ॥३२॥ मंद पवन गंधोदक इष्ट। विविध कल्पतरु पुहपसुवृष्ट ॥ देव करैं विकसित दल सार। मानों द्विजपंकति अवतार ॥ ३३ ॥ तुमतन-भामंडल जिनचंद। सब दुतिवंत करत है मंद ॥ कोटिशंख रवितेज छिपाय। शशिनिर्मलनिशि करै अछाय ॥३४॥ स्वर्गमोखमारगसंकेत। परमधरम उपदेशनहेत दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध। सबभाषागर्भित हितसाध ॥३५॥

दोहा—विकसितसुवरनकमलदुति, नखदुति-मिलि चमकाहिं। तुमपद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥ ऐसी महिमा तुमविषै,

और धरै नहिं कोय। सूरजमें जो जोत है, नहिं तारागण होय ॥ ३७ ॥

षट्पद—मदअवलिप्तकपोल-मूल अलिकुल झंकारैं। तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत-अति धारैं ॥ कालवरन विकराल, कालवत सनमुख आवै। ऐरावत सो प्रबल, सकल जन भय उपजावै ॥ देखि गयंद न भय करै तुम पदमहिमा छीन। विपतिरहित संपतिसहित, वरतैं भक्त अदीन ॥ ३८ ॥ अति मदमत्तगयंद कुंभथल नखन विदारै। मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै ॥ बांकी दाढ विशाल, वदनमें रसना लोलै। भीमभयानकरूप देखि जन थरहर डोलै ॥ ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय। शरण गये तुम चरणकी, बाधा करै न सोय ॥३९॥ प्रलयपवनकर उठी आग जो तास पटंतर। बमैं फुलिंग शिखा उतंग परजलैं निरंतर ॥ जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों तडतडाट दवअनल, जोर चहुंदिशा उठानों ॥

सो इक छिनमें उपशमैं, नामनीर तुम लेत।
होय सरोवर परिनमै विकसित कमल समेत॥
॥४०॥ कोकिलकंठसमान, श्याम तन क्रोध ज-
लंता। रक्तनयन फुंकार, मारविषकण उगलंता॥
फणको ऊंचो करै, वेग ही सन्मुख धाया। तब
जन होय निशंक, देख फणिपतिको आया॥ जो
चांपै निज पगतलैं, व्यापै विष न लगार। नाग-
दमनि तुम नामकी है जिनके आधार॥४१॥
जिस रनमाहिं भयानक रवकर रहे तुरंगम।
घनसे गज गरजाहिं मत्त मानों गिरि जंगम॥
अति कोलाहलमाहिं बात जहँ नाहिं सुनीजे।
राजनको परचंड, देख बल धीरज छीजै॥ नाथ
तिहारे नामतैं सो छिनमांहि पलाय। ज्यों दिन-
कर परकाशतैं अंधकार विनशाय॥४२॥ मारै
जहां गयंद कुंभ हथियार विदारै। उमगै रुधिर
प्रवाह बेग जलसम विस्तारै॥ होय तिरन अस
मर्थ महाजोधा बलपूरे। तिस रनमें जिन तोर
भक्त जे हैं नर सूरे॥ दुर्जय अरिकुल जीतके,

जय पावैं निकलंक। तुम पद पंकज मन बसै ते नर सदा निशंक ॥४३॥ नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावैं। जामैं बडवा अग्नि दाहतैं नीर जलावैं॥ पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी। गरजै अतिगंभीर, लहरकी गिनति न ताकी॥ सुखसों तिरै समुद्रको, जे तुमगुनसुमराहिं। लोलकलोलनके शिखर, पार यान ले जाहिं ॥४४॥ महा जलोदर रोग, भार पीडित नर जे हैं। वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै हैं॥ सोचत रहैं उदास नाहिं जीवनकी आशा। अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गंधि निवासा॥ तुम पदपंकजधूलको, जो लावैं निज अंग। ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होय अनंग॥ ४५॥ पांव कंठतैं जकर बांध सांकल अति भारी। गाढी बेडी पैरमांहि, जिन जांघ विदारी॥ भूख प्यास चिंता शरीर दुख जे विललाने। सरन नाहिं जिन कोय भूपके बंदीखाने॥ तुम सुमरत स्वयमेव ही

बंधन सब खुल जाहिं। छिनमें ते संपति लहैं, चिंता भय बिनसाहिं ॥४६॥ महामत्त गजराज और मृगराज दवानल। फणपति रणपरचंड नीरनिधि रोग महाबल॥ बंधन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै। तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै॥ इस अपार संसारमें शरन नाहिं प्रभु कोय। यातें तुम पदभक्तको भक्ति सहाई होय ॥४७॥ यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन सँवारी। विविधवर्णमय पुहुप गूंथ मैं भक्ति विथारी॥ जे नर पहिरें कंठ भावना मनमें भावें। मानतुंग ते निजाधीन शिवलछमी पावें॥ भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हित हेत। जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावें शिवखेत ॥ ४८ ॥ इति।

---

६४ । मोक्षशास्त्रं ।

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृतां ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वाना वंदे तद्गुणलब्धये ॥

त्रैकाल्य द्रव्यषट्क नवपदसहित जीवषट्कायलेश्याः ।
पंचान्ये चास्तिकाया व्रतसमितिगतिज्ञानचारित्रभेदाः ॥
इत्येतन्मोक्षमूल त्रिभुवनमहितै प्रोक्तमर्हद्भिरीशै ।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् य स वै शुद्धदृष्टिः ॥१॥

सिद्धे जयप्पसिद्धे, चउविहाराहणाफल पत्ते ।
वंदित्ता अरहते वोच्छ आराहणा कमसो ॥ २ ॥
उज्जोवणमुज्जवणणिव्वाहण साहण च णिच्छरण ।
दंसणणाणचरित्त तवाणमाराहणा भणिया ॥ ३ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ॥ २ ॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥ जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं ॥४॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥ प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥७॥ सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानं ॥ ९ ॥ तत्प्रमाणे ॥ १० ॥ आद्ये परोक्षं ॥११॥

भिरूढैवंभूता नयाः ॥ ३३ ॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य
स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥ द्विन-
वाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमं ॥ २ ॥ स-
म्यक्त्वचारित्रे ॥३॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोप-
भोगवीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्च-
तुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंय-
माश्च ॥५॥ गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञाना-
संयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः
॥ ६ ॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥ उप-
योगो लक्षणं ॥८॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥
संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥ समनस्कामनस्काः
॥११॥ संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥ पृथि-
व्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥ द्वीं-
द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥ पंचेंद्रियाणि ॥ १५ ॥
द्विविधानि ॥ १६ ॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येंद्रियं
॥ १७ ॥ लब्ध्युपयोगो भावेंद्रियं ॥ १८ ॥ स्प-

र्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १९ ॥ स्पर्शरस-
गंधवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥ श्रुतमनिंद्रियस्य
॥ २१ ॥ वनस्पत्यंतानामेकं ॥ २२ ॥ कृमिपि-
पीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥
संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः
॥ २५ ॥ अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥ अविग्रहा
जीवस्य ॥ २७ ॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्
चतुर्भ्यः ॥२८॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥२९॥ एकं
द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३०॥ संमूर्छनगर्भोपपादा
जन्म ॥ ३१ ॥ सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मि-
श्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥ जरायुजांडजपो-
तानां गर्भः ॥३३॥ देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥
शेषाणां सम्मूर्च्छनं ॥३५॥ औदारिकवैक्रियि-
काहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं
परं सूक्ष्मं ॥ ३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्
तैजसात् ॥ ३८ ॥ अनंतगुणे परे ॥ ३९ ॥ अ-
प्रतीघाते ॥ ४० ॥ अनादिसंबंधे च ॥ ४१ ॥
सर्वस्य ॥ ४२ ॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदे-

कस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोगमंत्यं ॥४४॥ गर्भसंमूर्च्छनजमाद्यं ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकं ॥ ४६ ॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥ तैजसमपि ॥४८॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥ नारकसंमूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥ न देवाः ॥ ५१॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रो द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनांबुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमं ॥ २ ॥ नारका नित्याऽशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्वानां परा स्थितिः

॥ ६ ॥ जंबूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वी-
पसमुद्राः ॥ ७ ॥ द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षे-
पिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥ तन्मध्येमेरुनाभिर्वृ-
त्तो योजनशतसहस्रविष्कंभो जंबूद्वीपः ॥ ९ ॥
भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः
क्षेत्राणि ॥ १० ॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता
हिमवन्महाहिमवन्निषिधनीलरुक्मिशिखरिणो व-
र्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्य-
रजतहेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि-
मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥ पद्ममहापद्मति-
गिंछकेशरिमहापुंडरीकपुंडरीका ह्रदास्तेषामुपरि
॥ १४ ॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कं-
भो ह्रदः ॥ १५ ॥ दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥
तन्मध्ये योजनं पुष्करं ॥ १७ ॥ तद्द्विगुणद्वि-
गुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥ तन्निवासि-
न्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्यो-
पमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥ १९ ॥ गं-
गासिंध्ररोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासी-

सीतोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिंध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥ तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांताः ॥ २५ ॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ॥ २७ ॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥ भरतस्य विष्कंभो जंबूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥ द्विर्धातकीखंडे ॥ ३३ ॥ पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥ आर्याम्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥ ३७ ॥ नृस्थिती

परावरे त्रिपल्योपमांतर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितास्त्रिषु पीतांतलेश्याः ॥ २ ॥ दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यंताः ॥ ३ ॥ इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंशल्लोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ॥ ५ ॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥ भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यंतराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्याचंद्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १३ ॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥ वैमा-

निकाः ॥ १६ ॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्मैशानसानत्कुमार-माहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रश तारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयंतजयंतापराजितेषु सर्वार्थ-सिद्धौ च ॥ १९ ॥ स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्या विशुद्धींद्रियावधिविषयतोधिकाः ॥२०॥ गति-शरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥ पीत-पद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥ प्राग्ग्रैवेयके-भ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्मलोकालया लौकांतिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिता-व्याबाधारिष्टाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरो-पम-त्रिपल्योपमार्धहीनमिताः॥२८॥सौधर्मैशान-योसागरोपमऽधिके।२९। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदश-भिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकै-

केन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥ अपरा पल्योपममधिकं ॥ ३३ ॥ परतः परतः पूर्वापूर्वानंतराः ॥ ३४ ॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ॥ ३६ ॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥ व्यंतराणां च ॥ ३८ ॥ परापल्योपममधिकं ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥ लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषां ॥४२॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥ २ । जीवाश्च ।३। नित्यावस्थितान्यरूपाणि ।४। रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ।६। निष्क्रियाणि च ॥७॥ असंख्येयाः प्रदेशाधर्माधर्मैकजीवानां ॥८॥ आकाशस्यानंताः ॥९॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानां ॥१०॥ नाणोः ॥ ११ ॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदेशादिभाज्य· पुद्गलानां । १४ । असंख्येयभागादिषु

जीवानां ॥१५॥ प्रदेश संहारविसर्पाभ्यां प्रदीप-
वत् ।१६। गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपका-
रः ।१७। आकाशस्यावगाहः ।१८। शरीरवा-
ङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानां ।१९। सुखदुःखजी-
वितमरणोपग्रहाश्च ।२०। परस्परोपग्रहो जीवा-
नां ॥ २१ ॥ वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे
च कालस्य ॥२२॥ स्पर्शरसगंधवर्णवंतः पुद्गलाः
॥ २३ ॥ शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतम-
श्छायातपोद्योतवंतश्च ॥ २४ ॥ अणवस्कंधाश्च
। २५ । भेदसंघातेभ्य उत्पद्यंते । २६ । भेदादणुः
।२७। भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः । २८ । सद्द्रव्य-
लक्षणं ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत । ३० ।
तद्भावाव्ययं नित्यं ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः
।३२। स्निग्धरूक्षत्वाद्बंधः । ३३ । न जघन्यगु-
णानां ।३४। गुणसाम्ये सदृशानां ।३५। द्व्यधि-
कादिगुणानां तु ।३६। बंधेऽधिकौपारिणामिकौ
च ।३७। गुणपर्ययवद्द्रव्यं ।३८। कालश्च ।३९।
सोऽनंतसमयः ।४०। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः

। ४१ । तद्भावः परिणामः । ४२ ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कायवाङ्मनःकर्मयोगः ॥१॥ स आस्रवः ॥२॥
शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥ सकषायाकषाययोः सांपरायिकेर्यापथयोः ॥४॥ इंद्रियकषायाव्रतक्रियाः पंच चतुः पंच पंचविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥ तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ।६॥ अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ ७ ॥ आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ।८। निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परं ।९। तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥ दुःखशोकतापाक्रंदनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ भूतव्रत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारि-

प्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारंभपरिग्रहत्वं नारकस्या-
युषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पा-
रंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभावमार्दवं च
॥१८॥ निःशीलव्रतित्वं च सर्वेषां ॥१९॥ सरा-
गसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दे-
वस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रता-
विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं
शुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शी-
लव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ श-
क्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणम-
र्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणि-
र्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्व-
स्य ॥२४॥ परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छा-
दनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो
नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्नकरण-
मंतरायस्य ॥ २७ ॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं ॥१॥

देशसर्वतोऽणुमहती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच
पंच ॥३॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्या-
लोकितपानभोजनानि पंच ॥४॥ क्रोधलोभभी-
रुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच
॥५॥ शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरण-
भैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच ॥ ६ ॥ स्त्रीरा-
गकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्म-
रणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥७॥
मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच
॥ ८ ॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनं ॥९॥
दुःखमेव वा ॥ १० ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्य-
स्थ्यानि च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु
॥ ११ ॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थं
॥१२॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।१३।
असदभिधानमनृतं ॥ १४ ॥ अदत्तादानं स्तेयं
॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ।१६। मूर्छा परिग्रहः ।१७।
निःशल्यो व्रती ॥१८॥ अगार्यनगारश्च ॥१९॥
अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशानर्थदंडविरति-

सामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणा
तिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च ॥ २१ ॥ मारणांति
कीं सल्लेखनां जोषिता ॥ २२ ॥ शंकाकांक्षावि-
चिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरती-
चाराः ॥ २३ ॥ व्रतशीलेषु पंच पंच यथा-
क्रमं ॥२४॥ वंधवधच्छेदातिभारारोपणान्नपान-
निरोधाः ॥२५॥ मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूट-
लेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ॥ २६ ॥
स्तेन प्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमही-
नाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥
परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागं-
मनानंगक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥ क्षे-
त्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमा-
णातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्र-
वृद्धिस्मृत्यंतराधानानि ॥ ३० ॥ आनयनप्रेष्य-
प्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥३१॥ कंदर्प
कौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभो-
गानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥ योगदुःप्रणिधाना-

नादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥ अप्रत्यवेक्षि-
ताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृ-
त्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥ सचित्तसंबंधसंमि-
श्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥ सचित्तनिक्षेपापि-
धानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमः ॥ ३६ ॥
जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदा-
नानि ॥ ३७ ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं
॥ ३८ ॥ विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंध-
हेतवः ॥ १ ॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्या-
न्पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥ २ ॥ प्रकृतिस्थित्यनु-
भागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥ आद्यो ज्ञानद-
र्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः
॥ ४ ॥ पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्वि-
द्विपंचभेदा यथाक्रमं ॥ ५ ॥ मतिश्रुतावधिमनः-
पर्ययकेवलानां ॥ ६ ॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां
निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धय-

श्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥ दर्शनचारित्रमोह-
नीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडश-
भेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ
हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदा
अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनवि-
कल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥९॥ नार-
कतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥१०॥ गतिजातिश-
रीरांगोपांगनिर्माणबंधनसंघातसंस्थानसंहनन-
स्पर्शरसगंधवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातात-
पोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रस-
सुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्ति
सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचैश्च
॥ १२ ॥ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणां ॥१३॥
आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम-
कोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥ सप्ततिर्मोह-
नीयस्य ॥ १५ ॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६॥
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥ अपरा
द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥ नामगोत्र-

योरष्टौ ॥ १९ ॥ शेषाणामंतर्मुहूर्ता ॥ २० ॥ विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥ स यथानाम ॥ २२ ॥ ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥ नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाढस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनंतानंतप्रदेशाः ॥ २४ ॥ सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं ।२५। अतोऽन्यत्पापं ।२६।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे ऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आश्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥ २ ॥ तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥ उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्माः ॥ ६ ॥ अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्याश्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥ मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥ ८ ॥ क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्या-

क्रोशवधयाच्ञालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुर-
स्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥ सूक्ष्मसांपरा-
यच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश
जिने ॥ ११ ॥ बादरसांपराये सर्वे ॥ १२ ॥
ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥ दर्शनमोहांतराय-
योरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥ चारित्रमोहे नाग्न्या-
रतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाच्ञासत्कार पुरस्काराः
॥ १५ ॥ वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥ एकादयो
भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतिः ॥ १७ ॥
सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्म-
सांपराययथाख्यातमिति चारित्रं ॥ १८ ॥ अन-
शनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविवि-
क्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९ ॥ प्राय-
श्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्यु-
त्तरं ॥ २० ॥ नवचतुर्दशपंचद्विभेदायथाक्रमं
प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आलोचनाप्रतिक्रमणतदुभय,
विवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ।२२।
ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥ आचार्योपा-

ध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानां ॥ २४ ॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥ २५ ॥ बाह्याभ्यंतरोपध्योः ॥ २६ ॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥ आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥ आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३० ॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥ वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥ निदानं च ॥ ३३ ॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ॥ ३४ ॥ हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥ ३५ ॥ आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं ॥३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥ ३९ ॥ त्र्येकयोगकाययोगायोगानां ॥ ४० ॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयं ॥४२॥ वितर्कः श्रुतं ॥४३॥ वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः

॥ ४४ ॥ सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानंतवियोजक दर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीण- मोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥४५॥ पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथाः ॥ ४६ ॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योप- पादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥४७॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलं ॥ १ ॥ बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्र- मोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥३॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्ध- त्वेभ्यः ॥४॥ तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकांतात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागति परिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपग- तलेपालाबुवदेरंडबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥ क्षेत्रकालगतिलिंग- तीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनांतर संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

कोटिशतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव ।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यामेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि ॥ १ ॥
अरहंत भासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवयं सिरसा ॥ २ ॥
अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफम् ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ ३ ॥
दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ ४ ॥
तत्त्वार्थसूत्रकर्तारं गृध्रपिच्छोपलक्षितम् ।
वंदे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ॥ ५ ॥
जं सक्कइ तं कीरइ, जं ण सक्कइ तहेव सद्दहणं ।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं ॥ ६ ॥
तव यरणं वय धरणं, संजमसरणं च जीवदयाकरणम् ।
अंते समाहिमरणं, चउगइ दुक्खं णिवारेइ ॥ ७ ॥
इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम तत्त्वार्थाधिगममोक्षशास्त्रं समाप्तम् ।

५४ । कल्याणमंदिर स्तोत्र

कल्याणमंदिरमुदारमवद्यभेदि भीताभयप्रदमनिंदितमंघ्रिपद्मं । संसारसागरनिमज्जदशेषजंतु-

पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥ १ ॥ यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमांबुराशेः स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुं । तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोस्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥ सामान्यतोपि तव वर्णयितुं स्वरूपमस्मादृशाः कथमधीश भवंत्यधीशाः । धृष्टोपि कोशिकशिशुर्यदि वा दिवांधो रूपं प्ररूपयति किं किल धर्मरश्मेः ॥ ३ ॥ मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत् । कल्पांतवांतपयसः प्रगटोऽपि यस्मान्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥४॥ अभ्युद्यतोस्मि तव नाथ जडाशयोपि कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य । बालोपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य विस्तीर्णतां कथयति स्वधियांबुराशेः ॥५॥ ये योगिनामपि न यांति गुणास्तवेश वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः । जातातदेवमसमीक्षितकारितेयं जल्पंति वा निजगिरा ननु पक्षिणोपि ॥ ६ ॥ आस्तामचिंत्यमहिमा जिन संस्तवस्ते नामापि

पाति भवतो भवतो जगंति। तीव्रा तपोपहत-
पांथजनान्निदाघे प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनि-
लोपि ॥ ७ ॥ हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिली-
भवंति जंतोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबंधाः।
सद्यो भुजंगमया इव मध्यभागमभ्यागते वन-
शिखंडिनि चंदनस्य ॥८॥ मुच्यंत एव मनुजाः
सहसा जिनेंद्र रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षि-
तेऽपि। गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशुपशवः प्रपलायमानैः ॥९॥ त्वं तार-
को जिन कथं भविनां त एव त्वामुद्वहंति हृदयेन
यदुत्तरंतः। यद्वा दृतिस्तरंतियज्जलमेष नूनमंत-
र्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥ १० ॥ यस्मि-
न्हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः सोपि त्वया रतिप-
तिः क्षपितः क्षणेन। विध्यापिता हुतभुजः पय-
साथ येन पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन॥११॥
स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपिप्रपन्नास्त्वां जंतवः
कथमहो हृदये दधानाः। जन्मोदधिं लघु तरंत्य-
तिलाघवेन चिंत्यो न हंत महतां यदि वा प्रभावः

॥ १२ ॥ क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः प्लोषत्य-
मुत्र यदि वा शिशिरापि लोके नीलद्रुमाणि वि-
पिनानि न किं हिमानी ॥ १३ ॥ त्वां योगिनो
जिन सदा परमात्मरूपमन्वेषयंति हृदयांबुजको-
षदेशे। पूतस्य निर्मल रुचेर्यदि वा किमन्यदक्ष-
स्य संभवपदं ननु कर्णिकायाः ॥ १४ ॥ ध्याना-
ज्जिनेश भवतो भविनं क्षणेन देहं विहाय परमा-
त्मदशां व्रजंति। तीव्रानलादुपलभावमपास्य
लोके चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥१५॥
अंतः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं भव्यैः कथ
तदपि नाशयसे शरीरं। एतत्स्वरूपमथ मध्य-
विवर्तिनो हि यद्विग्रहं प्रशमयंति महानुभावाः
॥ १६ ॥ आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या
ध्यातो जिनेंद्र भवतीह भवत्प्रभावः। पानीय-
मप्यमृतमित्यनुचिंत्यमान किं नाम नो विषविका-
रमपाकरोति ॥ १७ ॥ त्वामेव वीततमसं परवा
दिनोऽपि नूनं विभो हरिहरादिधिया प्रपन्नाः।

किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शंखो नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥१८॥ धर्मोपदेश-समये सविधानुभावादास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः । अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि किंवा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ।१९। चित्रं विभो कथमवाङ्मुखवृंतमेव विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः। त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश । गच्छंति नूनमध एव हि बंधनानि ॥ २० ॥ स्थाने गभीरहृदयोदधिसंभवायाः पीयूषतां तव गिरः समुदीरयंति । पीत्वा यतः परमसंमदसंगभाजो भव्या व्रजंति तरसाप्यजरामरत्वं ॥२१॥ स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतंतो मन्ये वदंति शुचयः सुरचामरौघाः । येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुंगवाय ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥२२॥ श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्नसिंहा-सनस्थमिह भव्यशिखंडिनस्त्वां । आलोकयंति रभसेन नदंतमुच्चैश्चामीकराद्रिशिरसीव नवांबुवाहं ॥२३॥ उद्गच्छता तव शितिद्युतिमंडलेन

लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्वभूव । सांनिध्यतोपि यदि वा तव वीतराग ! नीरागतां व्रजति को न सचेतनोपि ॥ २४ ॥ भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेनमागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् । एतन्निवेदयाति देव जगत्त्रयाय मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुंदुभिस्ते ॥२५॥ उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ तारान्वितो विधुरयं विहतांधकारः । मुक्ताकलापकलितोरुसितातपत्रव्याजात्त्रिधा धृतधनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥ २६ ॥ स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिंडितेन कांतिप्रतापयशसामिव संचयेन । माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २७ ॥ दिव्यस्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपानामुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबंधान् । पादौ श्रयंति भवतो यदि वापरत्र त्वत्संगमे सुमनसो न रमंत एव ॥२८॥ त्वं नाथ जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोपि यत्तारयस्य सुमतो निजपृष्ठलग्नान् । युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव चित्रं विभो यदसि कर्मविपाकशून्यः

॥ २९ ॥ तुम महाराज निरधन निराश। तज
विभव विभव सबजगप्रकाश॥ अक्षरस्वभाव
सुलिखै न कोय। महिमा भगवंत अनंत सोय
॥ ३० ॥ कर कोप कमठ निज वैर देख। तिन
करी धूलिवरषा विशेष॥ प्रभु तुम छाया नहिं
भई हीन। सो भयो पापि लंपट मलीन॥३१॥
गरजंत घोर घन अंधकार। चमकंत विज्जु जल
मुसलधार॥ बरषंत कमठ धर ध्यान रुद्र।
दुस्तर करंत निज भव समुद्र॥ ३२ ॥

घत्ता छंद।

मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि। भेजे तुरत
पिशाचगण, नाथ पास उपसर्ग कारण। अग्नि
जाल झलकंत मुख, धुनिकरत जिमि मत्तवारण।
कालरूप विकराल तन, मुंडमाल हित कंठ।
है निशंक वह रंकनिज, करै कर्म दृढगंठ।३४।

चौपाई—जे तुम चरणकमल तिहुँकाल। सेवहिं
तज माया जंजाल॥ भाव भगतिमन हरष
अपार। धन्य धन्य जग तिन अवतार॥३५॥

गोत्रपवित्रमंत्रे किं वा विपाद्विषधरी साविधं समेति ॥३५॥ जन्मांतरेऽपि तव पादुयुगं न देव मन्ये मया महितमीहितदानदक्षं । तेनेह जन्मनि मुनीश पराभवानां जातो निकेतनमहं मथिताशयानां ॥ ३६ ॥ नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोसि । मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्थाः प्रोद्यत्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ॥ ३७ ॥ आकर्णितोपि महितोपि निरीक्षितोपि नूनं न चेतसि मया विधृतोसि भक्त्या । जातोस्मि तेन जनबांधव दुःखपात्रं यस्मात्क्रियाः प्रतिफलंति न भावशून्याः ॥३८॥ त्वं नाथ दुःखिजनवत्सल हे शरण्य कारुण्यपुण्यवसते वशिनां वरेण्य । भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय दुःखांकुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥३९॥ निःसंख्यसारशरणं शरणं शरण्यमासाद्य सादितरिपुप्रथितावदानं । त्वत्पादपंकजमपि प्रणिधानवंध्यो वंध्योस्मि चेद्भुवनपावन हा हतोस्मि ॥ ४० ॥ देवेंद्रवंद्य विदिताखिलव

स्तुसार संसारतारक विभो भुवनाधिनाथ। त्राय-
स्व देव करुणाह्रद मां पुनीहि सीदंतमद्य भयद-
व्यसनांबुराशेः ॥४१॥ यद्यास्ति नाथ भवदंघ्रिस-
रोरुहाणां भक्तेः फलं किमपि संततसंचितायाः।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य भूयाः स्वामी त्वमेव
भुवनेत्र भवांतरेपि।४२। इत्थं समाहिताधियो वि-
धिवज्जिनेन्द्र सांद्रोल्लसत्पुलककंचुकितांगभागाः
त्वद्बिंबनिर्मलमुखांबुजबद्धलक्ष्याः ये संस्तवं तव
विभो रचयंति भव्याः ॥ ४३ ॥ जननयनकुमु-
दचंद्रप्रभास्वराः स्वर्गसंपदो भुक्त्वा ते विगलि-
तमलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यंते ॥ ४४ ॥

६६। कल्याणमंदिरस्तोत्र भाषा।

दोहा—परमज्योति परमात्मा, परमज्ञान परवीन।
बंदूं परमानंदमय घटघटअंतरलीन ॥ १॥
निर्भय करन परम परधान। भवसमुद्रजलतारन-
यान ॥ शिवमंदिर अघहरन अनिंद। बंदहु पा-
सचरन अरविंद ॥१॥ कमठमानभंजन वर वीर।
गरिमासागर गुनगंभीर ॥ सुरगुरु पार लहैं नहिं

जास । मैं अजान जंपू जस तास ॥२॥ प्रभुस्वरूप अति अगम अथाह । क्यों हमसेती होय निवाह ॥ ज्यों दिन अंध उलूको पोत । कहि न सकै रवि-किरन-उदोत ॥३॥ मोहहीन जानै मनमाहिं । तोहु न तुम गुन वरने जाहिं ॥ प्रलय-पयोधि करै जल बौन । प्रगटहिं रतन गिनै तिहिं कौन ॥४॥ तुम असंख्य निर्मल गुणखान । मैं मतिहीन कहूं निज बान ॥ ज्यों बालक निज बांह पसार । सागर परमित कहै विचार ॥५॥ जे जोगींद्र करहिं तपखेद । तऊ न जानहिं तुम गुनभेद । भक्तिभाव मुझ मन अभिलाख । ज्यों पंछी बोलैं निज भाख ॥६॥ तुमजसमहिमा, अगम अपार । नाम एक त्रिभुवन-आधार ॥ आवै पवन पदमसर होय । ग्रीषमतपत निवारै सोय ॥७॥ तुम आवत भविजन घटमाहिं कर्मनिबंध शिथिल ह्वै जाहिं ॥ ज्यों चंदनतरु बोलहिं मोर । डरहिं भुजंग लगे चहुं ओर ॥८॥ तुम निरखत जन दीनदयाल । संकटतें छूटैं तत्काल ॥

ज्यों पशु घेर लेंहिं निशि चोर। ते तज भागहिं देखत भोर ॥ ९ ॥ तू भविजनतारक किमि होहि। ते चितधार तिरहिं ले तोहि। यह ऐसें कर जान स्वभाव तिरहिं मसक ज्यों गर्भित बाव ॥ १० ॥ जिहँ सब देव किये वश वाम। तैं छिनमें जीत्यो सो काम ॥ ज्यों जल करै अगनिकुल हान। बडवानल पीवै सो पान ॥ ११ ॥ तुम अनंत गरवा गुन लिये। क्योंकर भक्ति धरों निज हिये। ह्वै लघुरूप तिरहिं संसार। यह प्रभु महिमा अगम अपार ॥ १२ ॥ क्रोध निवार कियो मन शांत। कर्मसुभट जीते किहिं भांत। यह पटतर देखहु संसार। नील विरछ ज्यों दहै तुसार ॥ १३ ॥ मुनिजनहिये कमल निज टोहि। सिद्धरूपसम ध्यावहिं तोहि॥ कमलकरणिका विन नहिं और। कमलबीज उपजनकी ठौर ॥ १४ ॥ जब तुव ध्यान धरै मुनि कोय। तब विदेह परमातम होय ॥ जैसे धातु शिलातनु त्याग। कनकस्वरूप धवै जब

आग ॥ १५ ॥ जाके मन तुम करहु निवास विनशि जाय क्यों विग्रह तास ॥ ज्यों महंत विच आवै कोय । विग्रहमूल निवारै सोय ।१६। करहिं विबुध जे आतमध्यान । तुम प्रभावतैं होय निदान ॥ जैसे नीर सुधा अनुमान । पीवत विषविकारकी हान ॥१७॥ तुम भगवंत विमल गुणलीन । समलरूप मानहिं मतिहीन ॥ ज्यों नीलिया रोग दृग गहै । वर्ण विवर्ण शंखसों कहै ॥ १८ ॥

दोहा—निकट रहत उपदेश सुन तरुवर भयो अशोक । ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥ १९ ॥ सुमनवृष्टि ज्यों सुर करहिं, हेठ बीठमुख सोहि । त्यों तुम सेवत सुमनजन बंध अधोमुख होहिं ॥२०॥ उपजी तुम हिय उदधितैं, वानी सुधा समान ॥ जिहँ पीवत भविजन लहहिं, अजर अमरपदथान ॥ २१ ॥ कहहिं सार तिहुँ लोककी, ये सुरचामर दोय । भावसहित जो जिन नमैं, तिहँगति ऊरध होय

॥२२॥ सिंघासन गिरिमेरुसम, प्रभु धुनि गर-
जत घोर। श्याम सुतनु घनरूप लखि, नाचत
भविजन मोर॥ २३॥ छविहत होत अशोक
दल, तुम भामंडल देख। वीतरागके निकटरह
रहत न राग विसेष॥ २४॥ सीख कहै तिहुँ
लोककों ये सुरदुंदुभिनाद। शिवपथसारथिवा-
हजिन, भजहु तजहु परमाद॥२५॥ तीन छत्र
त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छविदेत। त्रिविध-
रूप धर मनहु शशि, सेवत नखत समेत॥२६॥

पद्धरिछंद–प्रभु तुम शरीर दुति रतन जेम।
परतापपुंज जिम शुद्ध हेम॥ अतिधवल सुजस
रूपा समान। तिनके गढ तीन विराजमान
॥ २७॥ सेवहिं सुरेंद्र कर नमत भाल। तिन
सीस मुकुट तज देहिं माल॥ तुमचरणलगत
लहलहै प्रीति। नहिं रमहिं और जन सुमन
रीति॥ २८॥ प्रभु भोगविमुख तन गरमदाह।
जन पार करत भवजल निवाह॥ ज्यों माटीकल-
श सुपक्क होय। ले भार अधोमुख तिरहिं तोय

॥ २९ ॥ विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्व
किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश । अज्ञानव-
त्यपि सदैव कथंचिदेव ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-
विकासहेतु ॥ ३० ॥ प्राग्भारसंभृतनभांसि र-
जांसि रोषादुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो ग्रस्तस्त्व-
मीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥ यद्गर्जदूर्जितघ-
नौघमदभ्रभीमभ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारं ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे तेनैव तस्य जिन
दुस्तरवारिकृत्यम् ॥ ३२ ॥ ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृ-
ताकृतिमर्त्यमुंडप्रालंबभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रति भवंतमपीरितो यः सोऽस्यभवत्प्र-
तिभवं भवदुःखहेतुः ॥ ३३ ॥ धन्यास्त एव
भवनाधिप ये त्रिसंध्यमाराधयंति विधिवद्विधु-
तान्यकृत्याः । भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः
पादद्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥ ३४ ॥
अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश मन्ये न मे
श्रवणगोचरतां गतोऽसि । आकर्णिते तु तव

भवसागरमें फिरत अजान ॥ मैं तुअ सुजस सुन्यो नहिं कान ॥ जो प्रभुनाममंत्र मन धरै। तासों विपति भुजंगम डरै ॥ ३६ ॥ मनवांछित फल जिनपदमांहिं। मैं पूरव भव पूजे नाहिं ॥ मायागमन फिर्यो अज्ञान। करहिं रंकजन मुझ अपमान ॥३७॥ मोहतिमिर छायो दृग मोहि। जन्मांतर देख्यो नहि तोहि ॥ तो दुर्जन मुझ संगति गहैं। मरमछेदके कुवचन कहैं ॥ ३८ ॥ सुन्यो कान जस पूजे पाय। नैनन देख्यो रूप अघाय ॥ भक्तिहेतु न भयो चित चाव। दुख दायक किरियाबिन भाव ॥३९॥ महाराज शरणागत पाल। पतितउधारण दीनदयाल। सुमिरण करहुं नाय निज शीश। मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥ ४० ॥ कर्मनिकंदनमहिमा सार। अशरणशरण सुजस विसतार ॥ नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय। तो मुझ जन्म अकारथ जाय। ४१। सुरगनवंदित दयानिधान। जगतारण जगपति अनजान ॥ दुखसागरतैं मोहि

निकासि। निर्भयथान देहु सुखरासि ॥ ४२ ॥
मैं तुम चरणकमल गुनगाय। बहुविधि भक्ति करी मनलाय ॥ जनमजनम प्रभु पाऊं तोहि। यह सेवाफल दीजे मोहि ॥ ४३ ॥

दोधकांत बेसरी छंद—षट्पद।

इहविधि श्रीभगवंत, सुजस जे भविजन भाषहिं। ते जिन पुण्यभँडार, संचि चिरपाप प्रणासहिं ॥ रोमरोम हुलसंति, अंग प्रभु गुणमन ध्यावहिं। स्वर्ग संपदा भुंज वेग पंचमगति पावहिं ॥ यह कल्याणमंदिर कियो, कुमुदचंद्रकी बुद्धि। भाषा कहत 'बनारसी' कारण समकित शुद्ध ॥ ४४ ॥

६७ एकीभाव स्तोत्रं।

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबंधो घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति। तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे! भक्तिरुन्मुक्तये चेज्जेतुं शक्यो भवति न तया कोपरस्तापहेतुः ॥१॥
ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वांतविध्वंसहेतुं त्वामे-

प्राहुर्जिनवर चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः । चेतोवा॰
से भवसि च मम स्फारमुद्रासमानस्तस्मिन्नंहः
कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥ २ ॥ आनं-
दाश्रुस्नापितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्यश्चायेत
त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमंत्रैर्भवंतं । तस्याभ्यस्ता-
दपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यान्निष्कास्यंते वि-
विधविषमव्याधयः काद्रवेयाः ॥ ३ ॥ प्रागेवेह
त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्पृथिवीचक्रं
कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदं । ध्यानद्वारं मम
रुचिकरं स्वांतगेहं प्रविष्टस्तत्किं चित्रं जिन वपु-
रिदं यत्सुवर्णीकरोषि ॥४॥ लोकस्यैकस्त्वमसि
भगवन्निर्निमित्तेन बंधुस्त्वय्येवासौ सकलविषया
शक्तिरप्रत्यनीका । भक्तिस्फीतां चिरमधिवस-
न्मामिकां चित्तशय्यां मय्युत्पन्नं कथमिव ततः
क्लेशयूथं सहेथाः ॥ ५ ॥ जन्माटव्यां कथमपि
मया देव दीर्घं भ्रमित्वा प्राप्तैवेयं तव नयकथा
स्फारपीयूषवापी । तस्या मध्ये हिमकरहिमव्यूह-
शीते नितांतं निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःखदा

चोपतापाः ॥६॥ पादन्यासादपि च पुनतो यात्र-
या ते त्रिलोकीं हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनि-
वासश्च पद्म. । सर्वांगेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं
मनो मे श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति
॥७॥ पश्यंतं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबंतं
कर्मारण्यात्पुरुषमसमानंदधाम प्रविष्टं । त्वां दुर्नि-
रस्मरमदहरं त्वत्प्रसादैकभूमिं क्रूराकाराः कथ-
मिव रुजाकंटका निर्लुठंति ॥ ८ ॥ पाषाणात्मा
तदितरशमः केवलं रत्नमूर्तिमानस्तंभो भवति
च परस्तादृशो रत्नवर्गः । दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं
मानरोगं नराणां प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य
तच्छक्तिहेतुः ॥९॥ हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मू-
र्तिशैलोपवाही सद्यः पुंसां निरवधिरुजाधूलि-
बंधं धुनोति । ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु
त्वं प्रविष्टस्तस्याशक्यः क इह भुवने देव लोको-
पकारः ॥ १० ॥ जानासि त्वं मम भवभवे यच्च
यादृक्च दुःखं जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रव-
न्निष्पिनष्टि । त्वं सर्वेशः, सकृप इति च त्वामु-

पेतोऽसि भक्त्या यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणं ॥ ११ ॥ प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनो-पदिष्टैः पापाचारी मरणसमये सारमेयोपि सौख्यं । कः संदेहो यदुपलभते वासव श्रीप्रभुत्वं जल्पंजाप्यै-र्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रं ॥१२॥ शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा भक्तिर्नो चेद-नवधिसुखावंचिका कुंचिकेयं। शक्योद्धाटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो मुक्तिद्वारं परिदृढमहा-मोहमुद्राकवाटं ॥१३॥ प्रच्छन्नः खल्वयमघमयै-रंधकारैः समंतात्पंथा मुक्तेः स्थपुटितपदः क्लेश-गर्तैरगाधैः । तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव त-त्त्वावभासी यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारतीरत्नदी-पः ॥ १४ ॥ आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरा-नंदहेतुः कर्मक्षोणीपटलपिहितो योनवाप्यः प-रेषां । हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः स्तोत्रैर्बंधप्रकृतिपुरुषोद्दामधात्रीखनित्रैः ॥१५॥ प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरेरायता चामृताब्धेर्या देव त्वत्पादकमलयोः संगता भक्तिगंगा । चेतस्त-

स्यां मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः कल्माषं यद्भवति किमियं देव संदेहभूमिः ॥१६॥ प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख त्वामनुध्यायतो मे त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा । मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्तिमभ्रेपरूपां दोषात्मानोप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवंति ॥ १७ ॥ मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभंगीतरंगैर्वागंभोधिर्भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते । तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन । व्यातन्वंतः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवंति ॥ १८ ॥ आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः । सर्वांगेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां तत्किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥ १९ ॥ इंद्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते तस्यैवेयं भवलयकरी श्लाघ्यतामातनोति । त्वं निस्तारी जननजलधेः सिद्धिकांतापतिस्त्वं त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थं ॥ २० ॥ वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वम-

न्येन तुल्यः स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी-
नः क्रमंते। मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्तिपीयूष-
पुष्टास्ते भव्यानामभिमतफलाः पारिजाता भवंति
॥ २१ ॥ कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव
प्रसादो व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षं।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधिर्वैरहारी क्वैवं-
भूतं भुवनतिलक! प्राभवं त्वत्परेषु ॥२२॥ देव
स्तोतुं त्रिदिवगणिकामंडलीगीतकीर्तिं तोतूर्ति
त्वां सकलविषयज्ञानमूर्तिं जनो यः। तस्य क्षेमं न
पदमतटो ज्ञातु जाहूर्ति पंथास्तत्त्वग्रंथस्मरण-
विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः ॥२३॥ चित्ते कुर्वन्नि-
रवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं देव त्वां यः समयनि-
यमादादरेण स्तवीति। श्रेयोमार्गं स खलु सुकृ-
ती तावता पूरयित्वा कल्याणानां भवति विषयः
पंचधा पंचितानां ॥२४॥ भक्तिप्रह्वमहेंद्रपूजित-
पद त्वत्कीर्तने न क्षमाः सूक्ष्मज्ञानदृशोपि संयम-
भृतः के हंत मंदा वयं। अस्माभिः स्तवनच्छलेन
तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते स्वात्माधीनसुखैषिणां

स खलु नः कल्याणकल्पद्रुमः ॥२५॥ वादिराज
मनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्य-
सहायः ॥ २६ ॥

६ एकीभावस्तोत्र भाषा ।

दोहा ।

वादिराज मुनिराजके, चरणकमल चित लाय ।
भाषा एकीभावकी, करूं स्वपरसुखदाय ॥ १ ॥

रोलाछन्द अथवा "अहो जगत गुरुदेव सुनिये अर्ज हमारी"
विनतीकी चालमें ।

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी ।
सो मुझ कर्मप्रबंध करत भव भव दुख भारी ॥
ताहि तिहारी भक्ति जगतरवि जो निरवारै ।
तो अब और कलेश कौन सो नाहिं विदारै ॥१॥
तुम जिन जोतिस्वरूप दुरितअँधियारिनिवारी ।
सो गणेश गुरु कहैं तत्वविद्याधनधारी ॥ मेरे
चितघरमाहिं बसौ तेजोमय यावत । पापतिमिर
अवकाश तहां सो क्योंकरि पावत ॥ २ ॥ आ-

नँद्‌आँसूवदन धोय तुमसों चित साने। गदगद सुरसों सुयशमंत्र पढि पूजा ठानें ॥ ताके बहु-विधि व्याधि व्याल चिरकालनिवासी। भाजे थानक छोड देहबांबइके वासी ॥ ३ ॥ दिवितें आवनहार भये भविभागउदयबल। पहलेही सुर आय कनकमय कीय महीतल ॥ मनगृहध्यान-दुवार आय निवसो जगनामी। जो सुवरन तन करो कौन यह अचरज स्वामी ॥ ४ ॥ प्रभु सब जगके विनाहेतुबांधव उपकारी। निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी ॥ भक्तिरचित ममचित सेज नित वास करोगे। मेरे दुखसंताप देख किम धीर धरोगे ॥ ५ ॥ भववनमें चिरकाल भ्रम्यो कछु कहिय न जाई। तुम थुतिकथा-पियूषवापिका भागन पाई ॥ शशि तुषार घन सार हार शीतल नहिं जा सम। करत न्हौन तामाहिं क्यों न भवताप बुझै मम ॥ ६ ॥ श्री विहार परिवाह होत शुचिरूप सकल जग। कमलकनक आभाव सुरभि श्रीवास धरत पग ॥

मेरो मन सर्वंग परस प्रभुको सुख पावै। अब सो कौन कल्यान जो न दिन दिन ढिग आवै ॥ ७ ॥ भवतज सुखपद बसे काममदसुभट संहारे। जो तुमको निरखंत सदा प्रियदास तिहारे॥ तुमवचनामृतपान भक्तिअंजुलिसों पीवै। तिन्हें भयानक क्रूररोगरिपु कैसे छीवै॥ ८॥ मानथंभ पाषान आन पाषान पटंतर। ऐसे और अनेक रतन दीखैं जगअंतर॥ देखत दृष्टिप्रमान मानमद तुरत मिटावै। जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्योंकर पावै॥ ९॥ प्रभुतन पर्वतपरस पवन उरमें निवहै है। तासों ततछिन सकल रोगरज बाहिर ह्वै है। जाके ध्यानाहूत बसो उरअंबुजमाहीं। कौन जगत उपकारकरन समरथ सो नाहीं॥ १०॥ जनमजनमके दुःख सहे सब ते तुम जानो। याद किये मुझ हिये लगैं आयुधसे मानों। तुम दयाल जगपाल स्वामि मैं शरन गही है। जो कछु करनो होय करो परमान वही है॥ ११॥ मरनसमय तुम नाम

मंत्र जीवकतैं पायो। पापाचारी श्वान भान तज अमर कहायो॥ जो मणिमाला लेय जपै तुम नाम निरंतर। इंद्रसंपदा लहै कौन संशय इस अंतर॥ १२॥ जो नर निर्मल ज्ञान भान शुचि चारित साधै। अनवधि सुखकी सार भक्ति कूँची नहिं लाधै॥ सो शिववांछक पुरुष मोक्षपट केम उघारै। मोह मुहर दिढ करी मोक्ष मंदिरके द्वारै॥१३॥ शिवपुर केरो पंथ पापतमसों अतिछायो। दुखसरूप बहु कूपखाड सों विकट बतायो॥ स्वामी सुखसों तहां कौन जन मारग लागैं। प्रभुप्रवचनमणिदीप जोनके आगैं आगैं॥१४॥ कर्मपटलभूमाहिं दबी आतमनिधि भारी। देखत अतिसुख होय विमुखजन नाहिं उघारी॥ तुम सेवक ततकाल ताहि निहचै कर धारै। श्रुति-कुदालसों खोद बंद भू कठिन विदारै॥ १५॥ स्याद्वादगिरि उपजै मोक्ष सागर लों धाई। तुम चरणांबुज परस भक्तिगंगा सुखदाई। मो चित निर्मल थयो न्होन रुचिपूरव तामैं। अब वह हो

न मलीन कौन जिन संशय यामें ॥ १६ ॥ तुम
शिवसुखमय प्रगट करत प्रभु चिंतन तेरों । मैं
भगवान समान भाव यों वरते मेरो ॥ यदपि
झूठ है तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै । तुव प्रसाद
सकलंक जीव वांछित फल पावै ॥ १७ ॥ वचन
जलधि तुम देव सकल त्रिभुवनमें व्यापै । भंग-
तरंगिनि विकथवादमल मलिन उथापै ॥ मन-
सुमेरुसों मथै ताहि जे सम्यग्ज्ञानी । परमामृत
सों तृपत होहिं ते चिरलों प्रानी ॥ १८ ॥ जो
कुदेव छविहीन वसन भूषण अभिलाखै ॥ वैरी
सों भयभीत होय सो आयुध राखै ॥ तुम सुंदर
सर्वंग शत्रु समरथ नहिं कोई । भूषन वसन ग-
दादि ग्रहन काहेको होई ॥१९॥ सुरपति सेवा
करै कहा प्रभु प्रभुता तेरी । सो सलाघना लहै
मिटै जगसों जगफेरी । तुम भवजलधि जिहाज
तोहि शिवकंत उचारिये । तुही जगत-जनपाल
नाथथुतिकी थुति करिये ॥ २० ॥ वचन जाल
जडरूप आप चिन्मूरति झांई । तातें थुति आ-

लाप नाहिं पहुंचै तुम तांईं ॥ तो भी निष्फल
नाहिं भक्तिरसभीने वायक । संतनको सुरतरु
समान वांछित वरदायक ॥२१॥ कोप कभी नहिं
करो प्रीति कबहू नहिं धारो । अति उदास बे-
चाह चित्त जिनराज तिहारो ॥ तदपि आन जग
बहै बैर तुम निकट न लहिये। यह प्रभुता जग-
तिलक कहां तुम विन सरदहिये ॥ २२ ॥ सुर-
तिय गावें सुजस सर्वगति ज्ञानस्वरूपी । जो
तुमको थिर होहिं नमैं भविआनँदरूपी ॥ ताहि
छेमपुर चलनवाट बाकी नहिं हो है। श्रुतके
सुमरनमाहिं सो न कबहूं नर मोहै ॥ २३ ॥
अतुल चतुष्टयरूप तुमैं जो चितमैं धारै। आद-
रसों तिहुंकालमाहिं जगथुति विस्तारै ॥ सो
सुक्रत शिवपंथ भक्तिरचना कर पूरै ! पंचक-
ल्यानक ऋद्धिपाय निहचै दुख चूरै ॥२४॥ अहो
जगतपति पूज्य अवधिज्ञानी मुनि हारे । तुम
गुनकीर्तनमाहिं कौन हम मंद विचारे ॥ थुति
छलसों तुमविषै देव आदर विस्तारे ! शिवसुख

पूरनहार कल्पतरु यही हमारे ॥ २५ ॥ वादि-
राज मुनितैं अनु, वैयाकरणी सारे। वादिराज
मुनितैं अनु तार्किक विद्यावारे ॥ वादिराज
मुनितैं अनु हैं काव्यनके ज्ञाता। वादिराज
मुनितैं अनु हैं भविजनके त्राता ॥ २६ ॥

मूल अर्थ बहुविधिकुसुम, भाषा सूत्र मँझार।
भक्तिमाल 'भूधर' करी, करो कंठ सुखकार ॥१॥

श्रीधनंजयकविप्रणीतं।

६६ विषापहार स्तोत्रं।

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्त व्यापारवेदी विनिवृत्तसंगः। प्रवृद्धकालोप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥ १ ॥ परैरचिंत्यं युगभारमेकः स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः। स्तुत्योद्य मेसौ वृषभो न भानोः किमप्रवेशे विशति प्रदीपः ॥ २ ॥ तत्याज शक्रः शकनाभिमानं नाहं त्यजामि स्तवनानुबंधं। स्वल्पेन बोधेन ततोधिकार्थं वातायनेनेव निरूपयामि ॥ ३ ॥ त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो विद्वानशेषं निखि-

वैद्यः । वक्तुं किमान्कीदृशमित्यशक्यः स्तु-
तिस्ततो शक्तिकथा तवास्तु ॥ ४ ॥ व्यापीडितं
बाल मिवात्मदोषैरुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वं ।
हिताहितान्वेषणमांद्यभाजः सर्वस्य जंतोरसि
बालवैद्यः ॥ ५ ॥ दाता न हर्ता दिवसं विवस्वा
नद्यश्च इत्यच्युतदर्शिताशः । सव्याजमेवं गमय-
त्य शक्तः क्षणेन दत्सेभिमतं नताय ॥६॥ उपैति
भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च
दुःखं । सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श
इवावभासि ॥७ ॥ अगाधताब्धेः स यतः पयो
धिर्मेरोश्च तुंगाप्रकृतिः स यत्रः । द्यावा पृथिव्यो
पृथुता तथैव व्याप त्वदीया भुवनांतराणि ॥८॥
तवानवस्था परमार्थतत्त्वं त्वया न गीतः पुनरा-
गमश्च । दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैपीर्विरुद्धवृत्तोऽपि
समंजसस्त्वं ।९॥ स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्नु-
द्धूलितात्मा यदि नाम शंभुः।अशेत वृंदोपहतोपि
विष्णुः किं गृह्यते येन भवानजागः ॥१०॥ स नीर-
जाः स्यादपरोघवान्वा तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वं ।

स्वतोंबुराशेर्महिमा न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥ ११ ॥ कर्मस्थितिं जंतुरनेकभूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य । त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ जिनेंद्र नौनाविकयोरिवाख्यः ॥ १२ ॥ सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्धर्माय पापानि समाचरंति । तैलाय बालाः सिकतासमूहं निपीडयंति स्फुटमत्वदीयाः ॥१३॥ विषापहारं मणिमौषधानि मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च । भ्राम्यंत्यहो न त्वमतिस्मरंति पर्यायनामानि तवैव तानि ॥१४॥ चित्ते न किंचित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वं । हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥१५॥ त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकीस्वामीति संख्यानियतेरमीषां । बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यंस्तेन्येपि चेद्व्याप्स्यदमूनपीदं ॥१६॥ नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरूपस्य तवोपकारि । तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्बिभ्रतच्छत्रमिवादरेण ।१७। क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः स चेत्किमिच्छाप्रतिकूल-

न्नादः। क्वासौ क वा सर्वजगत्प्रियत्वं तन्नो यथात
थ्यमवेविजं ते ॥१८॥ तुंगात्फलं यत्तदकिंचनाच्च
प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः। निरंभसोप्युच्चतमा-
दिवाद्रेर्नैकापि निर्याति धुनीपयोधेः ॥ १९ ॥
त्रैलोक्यसेवानियमाय दंडं दध्रे यदिंद्रो विनयेन
तस्य। तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं तत्कर्मयोगा-
द्यदि वा तवास्तु ॥ २० ॥ श्रिया परं पश्यति
साधु निःस्वः श्रीमान्नकश्चित्कृपणं त्वदन्यः।
यथा प्रकाशस्थितमंधकारस्थायीक्षतेऽसौ न तथा
तमःस्थं ॥ २१ ॥ स्व वृद्धिनिःश्वासनिमेषभाजि
प्रत्यक्षमात्मानुभवेपि मूढः। किं चाखिलज्ञेयविव
र्तिबोधस्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः॥२२॥ तस्या-
त्मजस्तस्य पितेति देव त्वां येवगायंति कुलं प्रका-
श्य। तेद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं पाणौ कृतं हेम
पुनस्त्यजंति ॥ २३ ॥ दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोभि-
भूताः सुरासुरास्तस्य महान्स लाभः। मोहस्य
मोहस्त्वयि को विरोद्धुर्मूलस्य नाशो बलवद्वि-
रोधः ॥ २४ ॥ मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेश्चतु

गतीनां गहनं परेण । सर्वं मया दृष्टिमिति स्मयेन
त्वं मा कदाचिद्भुजमालु लोके ॥ २५ ॥ स्वर्भा-
नुरर्कस्य हविर्भुजोंभः कल्पांतवातोंबुनिधेर्विघात
संसारभोगस्य वियोगभावो विपक्षपूर्वाभ्युदया-
स्त्वदन्ये ॥२६॥ अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्त-
ज्जानतोन्यं न तु देवतेति । हरिन्मणिं काचधिया
दधानस्तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥२७॥
प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायैर्दग्धस्य देवव्यवहार-
माहुः । गतस्य दीपस्य हि नंदितत्वं दृष्टं कपा-
लस्य च मंगलत्वं ॥२८॥ नानर्थमेकार्थमदस्त्व-
दुक्तं हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः । निर्दोषतां
के न विभावयंति ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण
॥ २९ ॥ न क्वापि वांछा ववृते च वाक्ते काले
क्वचित्कोपि तथा नियोगः । न पूरयाम्यंबुधिमि-
त्युदंशुः स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥ ३० ॥
गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना बहुप्रकारा बहवस्त-
वेति । दृष्टोयमंतः स्तवने न तेषां गुणो गुणानां
किमतः परोस्ति ॥ ३१ ॥ स्तुत्या परं नाभिमतं

हि भक्त्या स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि। स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं केनाप्युपायेन फलं हि साध्यं ॥ ३२॥ ततस्त्रिलोकीनगराधिदेवं नित्यं परं ज्योतिरनंतशक्तिं। अपुण्यपापं परपुण्यहेतुं नमाम्यहं वंद्यमवंदितारं ॥ ३३ ॥ अशब्दमस्पर्शमरूपगंधं त्वां नीरसं तद्विषयावबोधं। सर्वस्यमातारममेयमन्यैर्जिनेंद्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥ ३४ ॥ अगाधमन्यैर्मनसाप्यलंघ्यं निष्किंचनं प्रार्थितमर्थवद्भिः। विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥ ३५॥ त्रैलोक्यदीक्षा गुरवे नमस्ते यो वर्द्धमानोपि निजोन्नतोभूत्। प्राग्गंडशैलः पुनरद्रिकल्पः पश्चान्न मेरुः कुलपर्वतोभूत् ॥३६॥ स्वयंप्रकाशस्य दिवा निशा वा न बाध्यता यस्य न बाधकत्वं। न लाघवं गौरवमेकरूपं वंदे विभुं कालकलामतीतं ॥३७॥ इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोसि। छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥ ३८ ॥ अथास्ति दित्सा

यदि वोपरांधमन्वयेव सक्तां दिश भक्तिवुद्धि करिष्यते देव तथा कृपां मे को वात्म पोष्ये सुमुखो न सूरि ॥३९॥ वितरति विहिता यथाकथंचिज्जिन विनताय मनीषितानि भक्ति । त्वयि नुति विषया पुनर्विशेषादिशति सुखानि यशो 'धनंजयं' च ॥४०॥ इति ॥

७० । विषापहार भाषा ।

दोहा—नमो नाभिनंदन वली, तत्वप्रकाशनहार ।
तुर्यकालकी आदिमें, भये प्रथम अवतार ॥१॥

काव्य वा रोलाछंद ।

निज आतममें लीन ज्ञानकरि व्यापत सारे ।
जानत सव व्यापार संग नहि कछू तिहारे ॥
बहुत कालके हो पुनि जरा न देह तिहारी ।
ऐसे पुरुष पुरान करहु रछ्या जु हमारी ॥ १ ॥
परकरिकें जु अचिंत्य भार जुगको अतिभारो ।
सो एकाकी भयो वृषभ कीनों निसतारो ॥
करि न सके जोगिंद्र तवन[1] मैं करिहौं ताको ।

[1] स्तवन ।

भानु प्रकाश न करै दीप तमहरै गुफाको ॥२॥
स्तवनकरनको गर्भ तज्यो सक्री बहु ज्ञानी ।
मैं नहिं तजों कदापि स्वल्पज्ञानी शुभध्यानी ॥
अधिक अर्थकों कहूं यथाविधि बैठि झरोकै ।
जालांतरधरि अक्ष[1] भूमिधरकों[2] जु विलोकै ॥३॥
सकल जगतकों देखत अर सबके तुम ज्ञायक ।
तुमकों देखत नाहिं नाहिं जानत सुखदायक ॥
हो किसाक तुम नाथ और कितनाक बखानै ।
तातैं थुति नहिं बनै असक्ती भये सयानैं ॥४॥
बालकवत निजदोषथकी इहलोक दुखी अति ।
रोगरहित तुम कियो कृपाकरि देव भुवनपति ॥
हित अनहितकी समझिमांहि हैं मंदमती हम ।
सब प्राणिनके हेत नाथ तुम बालवैद सम ॥५॥
दाता हरता नाहिं भानु सबको बहकावत ।
आजकालके छलकरि नितमति दिवस गुमा-
वत ॥ हे अच्युत जो भक्त नमैं तुम चरनकमल
कों । छिनक एकमैं आप देत मनवांछित फल-

१ आंख । २ पहाड़को ।

कों ॥६॥ तुमसों सन्मुख रहै भक्तिसौं सो सुख पावै। जो सुभावतैं विमुख आपतैं दुखहि बढावै। सदा नाथ अवदात एकद्युतिरूप गुसांई। इन दोन्योंके हेत स्वच्छ दरपणवत झांई ॥७॥ है अगाध जलनिधी समुदजल है जितनौ ही। मेरू तुंगसुभाव सिखरलौं उच्च भन्यो ही॥ वसुधा अर सुरलोक एहु इसभांति सई है। तेरी प्रभुता देव भुवनिकूं लंघि गई है ॥ ८ ॥ है अनवस्थाधर्म परम सो तत्त्व तुमारे। कह्यो न आवागमन प्रभू मतमांहिं तिहारे॥ दृष्ट पदारथ छांडि आप इच्छति अदृष्टकों। विरुधवृत्ति तव नाथ समंजस होय सृष्टकों ॥९॥ कामदेव-को किया भस्म जगत्राता थे ही। लीनी भस्म लपेटि नाम संभू निजदेही॥ सूतो होय अचेत विष्णु वनिताकरि हारयो। तुमकों काम न गहै आप घट सदा उजारयो॥ १०॥ पापवान वा पुन्यवान सो देव बतावै। तिनके औगुन कहै नाहिं तू गुणी कहावै॥ निज सुभावतैं अंबुराशि

निज महिमा पावै। स्तोक सरोवर कहे कहा
उपमा बढि जावै ॥ ११ ॥ कर्मनकी थिति जंतु
अनेक करै दुखकारी। सो थिति बहु परकार
करै जीवनकी ख्वारी ॥ भवसमुद्रके मांहि देव
दोन्योंके साखी। नाविक नाव समान आप वा-
णीमें भाखी ॥१२॥ सुखकों तो दुख कहै गुण-
नकूं दोष विचारै। धर्मकरनके हेत पाप हिरदै-
विच धारै ॥ तेल निकासन काज धूलिकों पेलै
घानी। तेरे मतसों बाह्य इसे जे जीव अज्ञानी
॥१३॥ विष मोचै ततकाल रोगकों हरै ततच्छन।
मणि औषधी रसांण मंत्र जो होय सुलच्छन ॥
ए सब तेरे नाम सुबुद्धी यों मन धरिहैं। भ्रमत
अपरजन वृथा नहीं तुम सुमिरन करिहैं॥१४॥
किंचित भी चितमाहिं आप कछु करो न स्वामी।
जे राखें चितमाहिं आपकों शुभपरिणामी ॥
हस्तामलवत्त लखें जगतकी परिणति जेती।
तेरे चितके बाह्य तोउ जीवें सुखसेती ॥ १५ ॥
तीनलोक तिरकालमांहि तुम जानत सारी।

स्वामी इनकी संख्या थी तित्तनीहिं निहारी॥ जो लोकादिक हुते अनंते साहिब मेरा। तेऽपि झलकते आनि ज्ञानका ओर न तेरा॥ १६॥ है अगम्य तवरूप करें सुरपति प्रभु सेवा। ना कछु तुम उपकार हेत देवनके देवा॥ भक्ति तिहारी नाथ इंद्रके तोषित मनको। ज्यों रवि सन्मुख छत्र करे छाया निज तनको॥१७॥ वीतरागता कहां कहां उपदेश सुखाकर। सो इच्छाप्रतिकूल वचन किम होय जिनेसर। प्रतिकूली भी वचन जगतकूं प्यारे अतिही। हम कछु जानी नाहिं तिहारी सत्यासतिही॥ १८॥ उच्चप्रकृति तुम नाथ संग किंचित न धरनतें। जो प्रापति तुमथकी नाहिं सो धनेसुरनतें॥ उच्चप्रकृति जलविना भूमिधर धुनी प्रकासै। जलधि नीरतैं भऱ्यो नदी ना एक निकासै॥१९॥ तीनलोकके जीव करो जिनवरकी सेवा। नियमथकी करदंड धऱ्यो देवनके देवा॥ प्रातिहार्य तौ बनै इंद्रके बनै न तेरे। अथवा तेरे बनैं तिहारे निमित्त

धरेरे ॥२०॥ तेरे सेवक नाहिं इसे जे पुरुषहीन ध-
न। धनवानोंकी ओर लखत वे नाहिं लखत पन ॥
जैसैं तमथिति किये लखत परकासथितीकूं। तैसैं
सूझत नाहिं तमथिती मंदमतीकूं ॥२१॥ निज
वृध स्वासोसास प्रगट लोचन टमकारा। तिनकौं
वेदत नाहिं लोकजन मूढ विचारा॥ सकल ज्ञेय
ज्ञायक जु अमूरति ज्ञान सुलच्छन। सो किमि
जान्यो जाय देव तव रूप विचच्छन ॥२२॥ ना-
भिरायके पुत्र पिता प्रभु भरततने हैं। कुलप्रका-
शिकैं नाथ तिहारो तवन भनै हैं॥ ते लघुधी
असमान गुननकौं नाहिं भजे हैं। सुवरन आयो
हाथि जानि पाषान तजै हैं ॥२३॥ सुरासुरनको
जीति मोहने ढोल बजाया। तीनलोकमें किये
सकल वशि यों गरभाया॥ तुम अनंत बलवंत
नाहिं ढिग आवन पाया। करि विरोध तुमथकी
मूलतैं नाश कराया ॥२३॥ एक मुक्तिका मार्ग
देव तुमने परकास्या। गहन चतुरगतिमार्ग अन्य
देवनकूं भास्या॥ 'हंम सब देखनहार' इसीविधि

भाव सुमिरिकैं। भुज न विलोको नाथ कदाचित गर्भ जु धरिकैं ॥ २५ ॥ केतुविपक्षी अर्कतनो फुनि अग्नितनो जल। अंबुनिधीअरि प्रलय-कालको पवन महाबल ॥ जगतमाहिं जे भोग वियोग विपक्षी हैं निति। तेरो उदयो है विपक्षतें रहित जगतपति ॥ २६ ॥ जाने विन हू नवत आपकों जो फल पावै। नमत अन्यको देव जानि सो हाथ न आवै ॥ हरी मणीकूं काच, काचकूं मणी रटत है ॥ ताकी बुधिमें भूल, मूल्य मणिको न घटत है ॥ २७ ॥ जे विवहारी जीव वचनमें कुशल सयाने। ते कषायकरि दग्ध नरनकों देव वखानें ॥ ज्यों दीपक बुझि जाय ताहि कह 'नंदि' भयो है। भग्न घडेको कहैं कलश ए मँगलि गयो है ॥ २८ ॥ स्यादवाद संजुक्त अर्थको प्रगट वखानत। हि-तकारी तुम वचन श्रवनकरि को नहिं जानत ॥ दोषरहित ए देव शिरोमणि वक्ता जगगुरु। जो ज्वरसेती मुक्त भयो सो कहत सरल सुर ॥

॥२९॥ विन वांछा ए वचन आपके खिरैं कदा-
चित। है नियोग ए कोपि जगतको करत सह-
जहित॥ करै न वांछा इसी चंद्रमा पूरौं जल-
निधि। सीतरश्मिकूं पाय उदधि जल बढ़ै स्व-
यंसिधि॥ ३०॥ तेरे गुण गंभीर परम पावन
जगमाइं। बहुप्रकार प्रभु हैं अनंत कछु पार न
पाई॥ तिन गुणानको अंत एक याही विधि दीसै।
ते गुण तुझ ही मांहि औरमें नाहिं जगीसे॥
॥३१॥ केवल थुति ही नाहिं भक्तिपूर्वक हम
ध्यावत। सुमरन प्रणमन तथा भजनकर तुम
गुण गावत॥ चितवन पूजन ध्यान नमनकरि
नित आराधैं। को उपावकरि देवसिद्धिफलको
हम साधैं॥ ३२॥ त्रैलोकी नगराधि देव नित
ज्ञानप्रकाशी। परमज्योति परमातमशक्ति अ-
नंती भासी॥ पुन्य पापतैं रहित पुन्यके कारण
स्वामी। नमों नमों जगवंद्य अवंद्यक नाथ अ-
कामी॥ ३३॥ रस सुपरस अर गंध रूप नहिं
शब्द तिहारे। इनिके विषय विचित्र भेद सब

भानननहारे। भव जीवनप्रतिपाल अन्यकारि हैं
भगम्यगन। सुमरनगोचर नाहि करौं जिन तेरो
सुमिरन ॥ ३४ ॥ तुम अगाध जिनदेव चित्तके
गोचर नाहीं। निःकिंचन भी प्रभू धनेश्वर जा-
चत साँई ॥ भये विश्वके पार दृष्टिसों पार न
पावै। जिनपति एम निहारि संतजन सरनै
आवै ॥ ३५ ॥ नमों नमों जिनदेव जगतगुरु
शिक्षादायक। निजगुणसेती भई उन्नती महिमा
लायक ॥ पाहनखंड पहार पछैं ज्यों होत और
गिर। त्यों कुलपर्वत नाहिं सनातन दीर्घ भूमि-
धर ॥ ३६ ॥ स्वयं प्रकाशी देव रैन दिनकूं
नहिं बाधित। दिवस रात्रि भी छतैं आपकी
प्रभा प्रकाशित ॥ लाघव गौरव नाहिं एकसो
रूप तिहारो। कालकलातैं रहित प्रभूसूं नमन
हमारो ॥ ३७ ॥ इहविधि बहु परकार देव तव
भक्ति करी हम। जाचूं वर न कदापि दीन है
रहित तुव ॥ छाया बैठत सहज वृक्षके नीचे
। फिर छायाकों जाचत यामें प्रापति के है-

॥ ३८ ॥ जो कुछ इच्छा होय देनकी तौ उप-
गारी। द्यो बुधि ऐसी करूं प्रीतिसों भक्ति तिं-
हारी। करो कृपा जिनदेव हमारे परि ह्वै तोषित।
सनमुख अपनो जानि कौन पंडित नहिं पोषित
॥३९॥ यथाकथंचित भक्ति रचै विनयीजन केई
तिनकूं श्रीजिनदेव मनोवांछित फल देही ॥
फुनि विशेष जो नमत संतजन तुमको ध्यावै।
सो सुख जस 'धन-जय' प्रापति ह्वै शिवपद पावै
।४०। श्रावक माणिकचंद सुबुद्धी अर्थ बताया।
सो कवि 'शांतीदास' सुगमकरि छंद बनाया॥
फिरि फिरिकै ऋषिरूपचंदने करी प्रेरणा।
भाषास्तोतर विषापहारकी पढो भविजना।४१।

७१। जिनचतुर्विंशतिका।

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं
वाग्देवीरतिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत्।
स स्यात्सर्वमहोत्सवैकभवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं
प्रातः पश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिनांघ्रिद्वयं
॥१॥ शांतं वपुः श्रवणहारि वचश्चरित्रं सर्वोपकारि

रि तव देव ततः श्रुतज्ञाः। संसारमारवमहास्थ-
लरुद्रसांद्रच्छायामहीरुहभवंतमुपाश्रयंते ॥२॥
स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननीगर्भांधकूपोद-
राद्योद्घाटितदृष्टिरस्मि फलवज्जन्मास्मि चाद्य-
स्फुटं। त्वामद्राक्षमहं यदक्षयपदानंदाय लोकत्र-
यीनेत्रेंदीवरकाननेंदुममृतस्यंदिप्रभाचंद्रिकं ॥३॥
निःशेषत्रिदशेंद्रशेखरशिखारत्नप्रदीपावली सां-
द्रीभूतमृगेंद्रविष्टरतटीमाणिक्यदीपावलिः। क्वे-
यं श्रीः क्व च निःस्पृहत्वमिदमित्यूहातिगस्त्वा-
दृशः सर्वज्ञानदृशश्चारित्रमहिमा लोकेश! लो-
कोत्तरः ॥ ४ ॥ राज्यःशासनकारिनाकपति य-
स्त्यक्तं तृणावज्ञया हेलानिर्दलितत्रिलोकमहिमा
यन्मोहमल्लो जितः। लोकालोकमपि स्वबोधमु-
कुरस्यांतः कृतं यत्त्वया सैषाश्चर्यपरंपरा जिनव-
र क्वान्यत्र संभाव्यते ॥ ५ ॥ दानं ज्ञानधनाय
दत्तमसकृत्पात्राय सद्वृत्तये चीर्णान्युग्रतपांसि
तेन सुचिरं पूजाश्च बह्व्यः कृताः। शीलानां
निचयः सहामलगुणैः सर्वः समासादितो दृष्टस्त्वं

जिन येन दृष्टिसुभगः श्रद्धापरेण क्षणं ॥ ६ ॥
प्रज्ञापारमितः स एव भगवान्पारं स एव श्रुत-
स्कंधाब्धेर्गुणरत्नभूषण इति श्लाघ्यः स एव
ध्रुवं । नीयंते जिन येन कर्णहृदयालंकारतां त्वद्
गुणाः संसाराहिविषापहारमणयस्त्रैलोक्यचूडाम-
णेः ॥ ७ ॥ जयति दिविजवृंदान्दोलितैरिं-
दुरोचि र्निचयरुचिभिरुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः ।
जिनपतिरनुरज्यन्मुक्ति साम्राज्यलक्ष्मी युवतिन-
वकटाक्षक्षेपलीलां दधानैः ॥८॥ देवः श्वेतातपत्र
त्रयचमरिरुहाशोकभाश्चक्रभाषापुष्पौघासारसिं-
हासनसुरपटहैरष्टभिः प्रातिहार्यैः । साश्चर्यैर्भ्रा-
जमानः सुरमनुजसभांभोजिनीभानुमाली पा-
यान्नः पादपीठीकृतसकलजगत्पालमौलिर्जिनेंद्रः
॥ ९ ॥ नृत्यत्स्वर्दंतिदंतांबुरुहवननटन्नाकनारी
निकायः सद्यस्त्रैलोक्ययात्रोत्सवकरनिनदातोद्य-
माद्यन्निलिंपः । हस्तांभोजातलीलाविनिहित-
सुमनोदामरम्यामरस्त्रीकाम्यः कल्याण पूजा-
विधिषु विजयते देवदेवागमस्ते ॥ १० ॥ चक्षु-

ष्मानहंसैव देव भुवने नेत्रामृतस्यदिनं त्वद्वक्त्रे
न्दुमतिप्रसादसुभगैस्तेजोभिरुद्भासितं । येनालो-
क्यता मयानतिचिराच्चक्षुः कृतार्थीकृतं द्रष्टव्या-
वधिवीक्षणव्यतिकरव्याजृंभमाणोत्सवं ॥ ११ ॥
कंतोः सकांतमपि मल्लमचेतिकश्चिन्मुग्धो मुकुंद-
गरविंदजमिंदुमौलिं । मोघीकृतत्रिदशयोषिद-
पांगपातस्तस्य त्वमेव विजयी जिनराजमल्लः
॥ १२ ॥ किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिला-
षात्कुसुमितमतिसांद्रं त्वत्समीपप्रयाणात् । मम
फलितममंदं त्वन्मुखेंदोरिदानीं नयनपथमवाप्ता-
द्देव पुण्यद्रुमेण ॥ १३ ॥ त्रिभुवनवनपुष्प्यत्पुष्प-
कोदंडदर्पप्रसरदवनवांभोमुक्तिसूक्तिप्रसूतिः । स
जयति जिनराजव्रातजीमूतसंघः शतम-
खशिखिनृत्यारंभनिर्वंधबंधुः ॥ १४ ॥ भू-
पालस्वर्गपालप्रमुखनरसुरश्रेणिनेत्रालिमालाली-
लाचैत्यस्य चैत्यालयमखिलजगत्कौमदींदोर्जिन-
स्य । उत्तंसीभूतसेवांजलिपुटनलिनीकुड्मला-
स्त्रिः परीत्य श्रीपादच्छायया पास्थितभवदवथुः

संश्रितोस्मीव मुक्तिं ॥१५॥ देव त्वदंघ्रिनख-
मंडलदर्पणेऽस्मिन्नर्घ्ये निसर्गरुचिरे चिरदृष्टव-
क्त्रः। श्रीकीर्तिकांतिधृतसंगमकारणानि भव्यो
न कानि लभते शुभमंगलानि ॥ १६ ॥ जयति
सुरनरेंद्र श्रीसुधानिर्झरण्याः कुलधरणिधरोयं
जैनचैत्याभिराम । प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्र-
प्रवालप्रसरशिखरशुंभत्केतनः श्रीनिकेतः ।१७।
विनमदमरकांताकुंतलाक्रांतकांतिस्फुरितनख-
मयूखद्योतिताशांतरालः। दिविजमनुजराजव्रा-
तपूज्यक्रमाब्जो जयति विजतिकर्मारातिजालो
जिनेंद्रः ॥ १८ ॥ सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमंग-
लाय द्रष्टव्यमस्ति यदि मंगलमेव वस्तु। अन्येन
किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं त्रैलोक्यमंगलनिके-
तनमीक्षणीयं ॥ १९ ॥ त्वं धर्मोदयतापसाश्रम-
शुकस्त्वं काव्यबंधक्रमक्रीडानंदनकोकिलस्त्व-
मुचितः श्रीमल्लिकाषट्पदः। त्वं पुन्नामकथार-
विंदसरसी हंसस्त्वमुत्तंसकैः कैर्भूपाल न धार्यसे
गुणमणिस्रङ्मालिभिर्मौलिभिः ॥ २० ॥ शिव-

सुखमजरश्रीसंगमं चाभिलष्य स्त्रमपि नियमं
यंति क्लेशपाशेन केचित् । वयमिह तु वचस्ते भू-
क्तेर्भावयंतस्तदुभयमपि शश्वल्लीलया निर्विशा-
मः ॥ २१ ॥ देवेंद्रास्तव मज्जनानि विदधुर्देवांग-
ना मंगलान्यापेठुः शरदिंदुनिर्मलयशो गंधर्वदेवा
जगुः । शेषाश्चापि यथानियोगमखिलाः सेवां
सुराश्चक्रिरे तत्किं देव वयं विदध्म इति नश्चित्तं
तु दोलायते ॥ २२ ॥ देव त्वज्जन्माभिषेकसमये
रोमांचसत्कंचुकैर्देवेंद्रैर्यदनर्ति नर्त्तनविधौ लब्ध-
प्रभावैः स्फुटं । किंचान्यत्सुरसुंदरी कुचतटप्रांता-
वनद्धोत्तमप्रेंखद्वल्लकिनादझंकृतमहो तत्केन
संवर्ण्यते ॥ २३ ॥ देव त्वत्प्रतिबिंबमंबुजदलस्मे-
रेक्षणं पश्यतां यत्रास्माकमहो महोत्सवरसो दृष्टे-
रियान्वर्तते । साक्षात्तत्र भवंतमीक्षितवतां क-
ल्याणकाले तदा देवानामनिमेषलोचनतया वृत्तः
स किं वर्ण्यते ॥ २४ ॥ दृष्टं धाम रसायनस्य
महतां दृष्टं निधीनां पदं दृष्टं सिद्धरसस्य सद्म
सदनं दृष्टं च चिंतामणेः । किं दृष्टेरथवानुषंगि-

कफलैरेभिर्मयाद्य ध्रुवं दृष्टं मुक्तिविवाहमंगल-गृहं दृष्टे जिनश्रीगृहे ॥ २५ ॥ दृष्टस्त्वं जिनराजचंद्रविकसद्भूपेंद्रनेत्रोत्पलैः स्नातं त्वन्नुतिचंद्रिकांभसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे। नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शांतिं मया गम्यते, देव! त्वद्गतचेतसैव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनं ॥२६॥ इति।

७२ । भूपालचतुर्विंशति भाषा ।

सकल सुरासुर पूज्य नित, सकल सिद्धिदातार।
जिनपद वंदूं जोर कर, अशरन जन आधार।१।

चौपाई छन्द १५ मात्रा।

श्रीसुखवासमहीकुलधाम। कीरतिहर्षणथल-अभिराम॥ सुरसुतिके रतिमहल महान। जय जुवतीको खेलन थान॥ अरुण वरण वांछित वरदाय। जगतपूज्य ऐसे जिन पाय॥ दर्शन प्राप्त करै जो कोय। सब शिवथानक सो जन होय॥ १॥ निर्विकार तुम सोमशरीर। श्रवण सुखद वाणी गंभीर॥ तुम आचरण जगतमें सार। सब जीवनको है हितकार॥ महानिंद

भवमारू देश। तहां तुंग तरु तुम परमेश॥
सघनछांहिमंडितछविदेत। तुम पंडित सेवैं सुख-
हेत ॥ २ ॥ गर्भकूपतैं निकस्यो आज। अव
लोचन उधरं जिनराज॥ मेरो जन्म सफल भयो
अबे। शिवकारण तुम देखे जवे॥ जगजननै-
नकमलवनखंड। विकसावनशशिशोकाविहंड॥
आनँदकरनप्रभा तुमतणी। सोई अमी झरन
चांदणी॥३॥ सब सुरेन्द्र शेखर शुभ रैन। तुम
आसन तट माणक ऐन॥ दोऊं दुति मिल झ-
लकैं जोर। मानों दीपमाल दुहुं ओर॥ यह
संपति अरु यह अनचाह। कहांसर्वज्ञानी शिव-
नाह॥ तातैं प्रभुता है जगमांहि। सही असम है
संशय नांहिं॥४॥ सुरपति आन अखंडित वहै
तृण ज्यों राजतज्यो तुम वहै॥ जिन छिनमें जग-
महिमादली। जीत्यो मोहशत्रु महावली॥ लोका-
लोक अनंत अशेख। कीनो अंत ज्ञानसों देख॥
प्रभु प्रभाव यह अद्भुत सबै अवर देवमैं भूल
न फबै॥५॥ पात्रदान तिन दिन दिन दियो।

तिन चिरकाल महातप कियो ॥ बहुविधि पू-
जाकारक वही। सर्व शील पाले उन सही ॥
और अनेक अमलगुणरास। प्रापति आय भये
सब तास ॥ जिन तुमशरधासों कर टेक। दृग-
वल्लभ देखे छिन एक ॥ ६ ॥ त्रिजगतिलक
तुम गुणगण जेह। भवभुजंगविषहरमणि तेह॥
जो उरकाननमाहिं सदीव। भूषण कर पहरै
भवि जीव ॥ सोई महामती संसार। सो श्रुत-
सागर पहुंचे पार ॥ सकल लोकमैं शोभा लहै।
महिमा जाग जगतमैं बहै ॥ ७ ॥

दोहा—सुरसमूह ढोलै चमर, चंदकिरणद्युति
जेम। नवतनवधूकटाक्षतैं, चपल चलैं अति एम।
छिन छिन ढलकें स्वामिपर, सोहत ऐसो भाव।
किधौं कहत सिधि लच्छिसों, जिनपतिके ढिग
आव ॥ ८ ॥

चौपाई छंद १५ मात्रा।

शीशछत्र सिंहासन तलैं। दिपैं देहदुति चामर
ढलैं ॥ बाजे दुंदुभि बरसैं फूल। ढिगअशोक

वाणी सुखमूल ॥ इहविधि अनुपम शोभा मान सुरनरसभा पदमनी भान॥ लोकनाथ बंदें शिरनाय । सो हम शरण होहु जिनराय॥९॥ सुरगजदंतकमलवनमांहि । सुरनारीगण नाचत जांहि॥ वहुविध बाजे बाजैं थोक । सुन उछाह उपजे तिहुंलोक ॥ हर्षत हरि जै जै उच्चरै । सुमनमाल अपछर कर धरै ॥ यों जन्मादि समय तुम होय। जयो देव देवागम सोय॥१०॥ तोषबढावन तुम मुखचंद । जननयनामृतकरन अमंद ॥ सुंदर दुतिकर अधिक उजास । तीनभवन नहिं उपमा तास॥ ताहि निरखि सनयन हम भये । लोचन आज सुफल करलये ॥ देखनयोग जगतमैं देख। उमग्यो उर आनंद विशेख ॥ ॥११॥ कैयक यों मानैं मतिमंद । विजितकाम विधि ईश मुकंद ॥ ये तो हैं वनितावश दीन । कामकटकजीतनबलहीन ॥ प्रभु आगैं सुरकामिनि करैं । ते कटाक्ष सब खाली परैं ॥ यातैं मदनाविध्वंसन वीर । तुम भगवंत और

नहिं धीर ॥ १२ ॥ दर्शनप्रीति हिये जब जगी तबै आम्रकोंपल बहु लगी ॥ तुम समीप उट आवन ठयो । तबसों सघन प्रफुल्लित भयो ॥ अबहूं निज नैनन ढिग आय । मुखमयंक देख्यो जगराय ॥ मेरो पुन्न विरख इहबार । सुफलफल्यो सबसुखदातार ॥ १३ ॥

दोहा—त्रिभुवनवनमैं विस्तरी कामदवानल जोर । वाणीवरषाभरणसों, शांति करहु चहुं ओर ॥ इंद्र मोर नाचै निकट, भक्तिभाव धर मोह । मेघ सघन चौवीस जिन, जैवंते जग होय ॥ १४ ॥

चौपाई छंद १५ मात्रा ।

भविजनकुमुदचंद सुखदैन । सुरनरनाथप्रमुखजगजैन ॥ ते तुम देख रमैं इह भांति । पहुप गेह लह ज्यों अलि पाँत ॥ शिरधर अंजुलि भक्तिसमेत । श्रीगृहप्रति परिदक्षण देत ॥ शिवसुखकीसी प्रापति भई । चरणछांहसों भवतप गई ॥ १५ ॥ वह तुमपदनखदर्पण देव । परम-

पूज्य सुंदर स्वयमेव ॥ तामैं जो भविभागविशा-
ल। आनन अविलोकै चिरकाल ॥ कमलाकी-
रति कांति अनूप। धीरजप्रमुख सकल सुख-
रूप ॥ वे जगमंगल कौन महान जो न लहै
वह पुरुष प्रधान ॥१६॥ इंद्रादिक श्रीगंगा जेह
उत्पतिथान हिमाचल येह ॥ जिनमुद्रामंडित
अतिलसै। हर्ष होय देखे दुःख नशे ॥ शिखर
ध्वजागण सोहैं एम। धर्मसुतरुवर पल्लव जेम॥
यों अनेक उपमाआधार। जयो जिनेश जिना-
लय सार ॥ १७॥ शीश नवाय नमत सुरनार।
केशकांतिमिश्रित मनहार ॥ नखउद्योत वरतैं
जिनराज। दशदिशपूरित किरण समाज ॥
स्वर्गनागनरनायक संग। पूजत पायपद्म अतु-
लंग॥ दुष्टकर्मदलदलनसुजान। जैवंतो वरतो
भगवान ॥१८॥ सोकर जागै जो धीमान। पं-
डित सुधी सुमुख गुणवान ॥ आपन मंगलहेतु
प्रशस्त। अवलोकन चाहै कछु वस्त ॥ और
वस्तु देखै किसकाज। जो तुम मुख राजै जिन-

पुलकित अंग पिताघर आय। नाचतविधिमैं महिमा पाय॥ अमरी बीन बजावै सार। धरी कुचाग्र करत झंकार॥ इहिविधि कौतुक देख्यो जबै औसर कौन कहि सकै अबै॥ २३॥ श्रीप्रतिबिंब मनोहर एम। विकसत वदन कमलदल जेम॥ ताहि हेर हरखे हग दोय। कह न सकूं इतनो सुख होय॥ तब सुरसंग कल्यानक काल। प्रगटरूप जोवै जगपाल॥ इकटक दृष्टि एक चितलाय। वह आनंद कहा क्यों जाय॥२४॥ देख्यो देव रसायन धाम। देख्यो नवनिधिको विसराम॥ चिंतारयन सिद्धिरस अबै। जिनगृह देखत देखे सबै॥ अथवा इन देखे कछु नाहिं। यह अनुगामी फल जगमांहि॥ स्वामी सज्यो अपूरव काज। मुक्तिसमीप भई मुझ आज॥ २५॥ अब विनवै भूपाल नरेश। देखे जिनवर हरन कलेश॥ नेत्रकमल विकसे जगचंद्र। चतुर चकोर करण आनंद॥ श्रुति जलसों यों पावन भयो। पापताप मेरो मिट गयो॥

मो जिन है अब [illegible] । फिर दर्शन [illegible] त्यों अब आहि ॥

[illegible]

इति [illegible] भूपाल [illegible] । [illegible] ॥ [illegible] आगो । [illegible] ॥ [illegible] ॥८७॥ समाप्त ।

७३ । महावीराष्टकस्तोत्र ।

शिखरिणी ।

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः समं भान्ति ध्रौव्यव्ययजनिलसन्तोऽन्तरहिताः । जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥ अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्दरहितं जनान्कोपापायं प्रकटयति बाह्यान्तरमपि । स्फुटं मूर्तिर्यस्य

प्रशमितमयी वातिविमला, महावीर० ॥ २ ॥
नमन्नाकेंद्राली मुकुटमणिभाजालजटिलं लस-
त्पादांभोजद्वयमिह यदीयं तनुभृतां । भवज्ज्वा-
लाशांत्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि, महावीर० ३
यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह क्षणादासी-
त्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः । लभंते सद्भ-
क्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा, महावीर० ॥४॥
कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो विचि-
त्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः । अजन्मापि
श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगतिर्, महावीर०
॥ ५ ॥ यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविम-
ला, बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता, महा-
वीर० ॥ ६ ॥ अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी काम
सुभटः कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन
विजितः । स्फुरन्नित्यानंदप्रशमपदराज्याय स
जिनः महावीर० ॥७॥ महामोहातंकप्रशमनप-
राकस्मिकभिषङ् निरापेक्षो बंधुर्विदितमहिमा

मंगलकरः। शरण्यः साधूनां भवभयभृतामुत्तम-
गुणो, महावीर० ॥ ८ ॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेंदुना कृतं।
यः पठेच्छ्रुणुयाच्चापि स याति परमां गतिं।९।

७४। मंगलाष्टकं।

श्रीमन्नम्रसुरासुरेंद्रमुकुटप्रद्योतरत्नप्रभाभास्व-त्पादनखेंदवः प्रवचनांभोधींदवः स्थायिनः। ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः स्तुत्या योगिजनैश्च पंचगुरवः कुर्वंतु ते मंगलम् ॥१॥ सम्यग्दर्शनबोधवृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं मुक्तिश्रीनगराधिनाथजिनपत्युक्तोपवर्गप्रदः। धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्र्यालयं, प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वंतु ते मंगलं।२। नाभेयादिजिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतुर्विंशति श्रीमंतो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश। ये विष्णुप्रतिविष्णुलांगलधराः सप्तोत्तराः विंशतिः त्रैकाल्ये प्रथितांस्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वंतु ते मंग-लं ॥ ३ ॥ देव्योष्टौ च जयादिका द्विगुणिता वि-

द्यादिका देवताः श्रीतीर्थंकरमातृकाश्च जनका
यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा। द्वात्रिंशत्त्रिदशाधिपास्ति-
थिसुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा दिक्पाला दश चैत्य-
क्षी सुरगणाः कुर्वंतुते मंगलं ॥ ४ ॥ ये सर्वौष-
धऋद्धयःसुतपसो वृद्धिं गताः पंच ये ये चाष्टांगम-
हानिमित्तिकुशला येष्टाविधाश्चारणाः। पंचज्ञा-
नधरास्त्रयोपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः।
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वंतु ते मंगलं
॥ ५ ॥ कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य
पावापुरे चंपायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः संमेदशैले-
र्हतां। शेषाणामपि चोर्जयंत शिखरे नेमीश्वर-
स्यार्हतो। निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वंतु
ते मंगलं ॥६॥ ज्योतिर्व्यंतरभावनामरगृहे मेरौ
कुलाद्रौ तथा जंबूशाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा
वक्षाररूप्याद्रिषु। इष्वाकारगिरौ च कुंडलनगे
द्वीपे च नंदीश्वरे शैले य मनुजोत्तरे जिनगृहाः
कुर्वंतु ते मंगलं ॥७॥ यो गर्भावतरोत्सवो भग-
वतां जन्माभिषेकोत्सवो यो जातः परिनिष्क-

मेण विभवो यः केवलज्ञानभाक् । यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभाविनः स्वर्गिभिः कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वंतु ते मंगलं ॥ ८ ॥

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसंपत्प्रदं कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः । ये शृण्वंति पठंति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाण लक्ष्मीरपि ॥११॥ इति मंगलाष्टकं ॥

७५ । अकलंकस्तुति ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः ।

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितं साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलि । रागद्वेषभयामयांतकजरालोलत्वलोभादयो नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वंद्यते ॥१॥ दग्धं येन पुरत्रयं शरभवा तीव्रार्चिषा वह्निना, यो वा नृत्यति मत्तवत्पितृवने यस्यात्मजो वा गुहः । सोयं किं मम शंकरो भयतृषारोषार्तिमोहक्षयं कृत्वा यः स तु सर्ववित्तनु-

भृतां क्षेमंकरः शंकरः ॥ २ ॥ यत्नाद्येन विदारितं कररुहैर्दैत्येंद्रवक्षःस्थलं सारथ्येन धनंजयस्य समरे योऽमारयत्कौरवान्। नासौ विष्णुरनेककालविषयं यज्ज्ञानमव्याहतं विश्वं व्याप्य विजृंभते स तु महाविष्णुः सदेष्टो मम ॥ ३ ॥ उर्वश्यामुदपादि रागवहुलं चेतो यदीयं पुनः पात्रीदंडकमंडलुप्रभृतयो यस्याकृतार्थस्थितिं। आविर्भावयितुं भवंति स कथं ब्रह्माभवेन्मादृशां क्षुत्तृष्णाश्रमरागरोषरहितो ब्रह्माकृतार्थोस्तु नः ॥ ४ ॥ यो जग्ध्वा पिशितं समत्स्यकवलं जीवं च शून्यं वदन्. कर्ता कर्मफलं न भुंक्त इति यो वक्ता स बुद्धः कथं। यज्ज्ञानं क्षणवर्तिवस्तुसकलं ज्ञातुं न शक्तं सदा यो जानन्युगपज्जगत्त्रयमिदं साक्षात्सबुद्धो मम ॥ ५ ॥

स्रग्धरा छंदः।

ईशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यान् नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं सांगनः सात्मजश्च। आर्द्राजः

कित्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मां-
तरायं संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपपशुः
कोऽत्र धीमानुपास्ते ॥ ६ ॥ ब्रह्मा चर्माक्षसूत्री-
सुरयुवतिरसावेशविभ्रांतचेताः शंभुः खट्वां-
गधारी गिरिपतितनयापांगलीलानुविद्धः । वि-
ष्णुश्चक्राधिपः सन्दुहितरमगमद्गोपनाथस्य मो-
हादर्हन्विध्वस्तरागो जितसकलभयः कोयमेष्वा-
प्तनाथः ॥ ७ ॥ एको नृत्यति विप्रसार्य कुकुभां
चक्रे सहस्रान्भुजानेकः शेषभुजंगभोगशयनेव्या-
दाय निद्रायते । दृष्टुं चारुतिलोत्तमामुखमगादे-
कश्चतुर्वक्त्रतामेते मुक्तिपथं वदंति विदुषामि-
त्येतदत्यद्भुतं ॥ ८ ॥ यो विश्वं वेद वेद्यं जनन-
जलनिधेर्भंगिनः पारदृश्वा पौर्वापर्याविरुद्धं वच-
नमनुपमं निष्कलंकं यदीयं । तं वंदे साधुवंद्यं
सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषंतं बुद्धं वा वर्द्धमानं
शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥ ९ ॥ माया
नास्ति जटाकपालमुकुटं चंद्रो न मूर्द्धावली,
खट्वांगं न च वासुकिर्न च धनुः शूलं न चोग्रं

मुखं । कामो यस्य न कामिनी न च वृषो गीतं न नृत्यं पुनः सोऽस्मान्पातु निरंजनो जिनपतिः सर्वत्र सूक्ष्मः शिवः ॥१०॥ नो ब्रह्मांकितभूतलं न च हरेः शंभोर्न मुद्रांकितं नो चंद्रार्ककरांकितं सुरपतेर्वज्रांकितं नैव च । षड्वक्त्रांकितबौद्धदेवहुतभुग्यक्षोरगैर्नांकितं नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेंद्रमुद्रांकितं ॥ ११ ॥ मौंजीदंडकमंडलुप्रभृतयो नो लांछनं ब्रह्मणो । रुद्रस्यापि जटाकपालमुकुटं कौपीनखट्वांगना । विष्णोश्चक्रगदादिशंखमतुलं बुद्धस्य रक्तांबरं नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेंद्रमुद्रांकितं ॥१२॥ खट्वांगं नैव हस्ते न च हृदि रचिता लंवते मुंडमाला भस्मांगं नैव शूलं न च गिरिदुहिता नैव हस्ते कपालं । चंद्रार्द्धं नैव मूर्द्धन्यपि वृषगमनं नैव कंठे फणींद्रः तं वंदे त्यक्तदोषं भवभयमथनं चेश्वरं देवदेवं ॥१३॥ नाहंकारवशी कृतेनमनसा न द्वेषिणा केवलं नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यंति जने कारुण्यबुद्ध्या मया । राज्ञः श्रीहिम-

शीतलस्य सदसि प्रायोविदग्धात्मनो बौद्धौघा न्सकलान् विजित्य स घटः पादेन विस्फालितः ॥ १४ ॥ किं वाच्यो भगवानमेयमहिमा देवोकलंकः कलौ काले यो जनतासुधर्मनिहितो देवोऽकलंको जिनः। यस्य स्फारविवेकमुद्रलहरीजालेप्रमेयाकुला निर्मग्ना तनुतेतरां भगवतीतारा शिरःकंपनं ॥ १५ ॥ सा तारा खलु देवता भगवती मन्यापि मन्यामहे षण्मासावधिजाड्यसांख्यभगवद्भट्टाकलंकप्रभोः । वाक्कल्लोलपरंपराभिरमते नूनं मनोमज्जनव्यापारं सहतेस्म विस्मितमतिः संताडितेतस्ततः ॥ इति ॥

७६ । पार्श्वनाथस्तोत्र ।

भुजगप्रयात छंद ।

नरेंद्रं फणींद्रं सुरेंद्रं अधीसं । शतेंद्रं सु पूजें भजें नाय शीशं ॥ मुनींद्रं गणेंद्रं नमों जोडि हाथं नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं ॥१॥ गजेंद्रं मृगेंद्रं गह्यो तू छुडावै । महा आगतें नागतें तू बचावै ॥ महावीरतें युद्धमें तू जितावै । महा

रोगतें बंधतें त छुडावै ॥ २ ॥ दुखीदुःखहर्ता सुखीसुक्खकर्ता । सदा सेवकोंको महानंदभर्ता ॥ हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं । विषं डांकिनी विघ्नके भय अवाचं ॥ ३ ॥ दरिद्रीनको द्रव्यके दान दीने । अपुत्रीनकों तू भले पुत्र कीने ॥ महासंकटोंसे निकारे विधाता । सबै संपदा सर्व को देहि दाता ॥४॥ महाचोरको वज्रको भय निवारे । महापौनके पुंजतें तू उवारे ॥ महाक्रोधकी अग्निको मेघ—धारा । महालोभ—शैलेशको वज्र भारा ॥ ५॥ महामोह अंधेरको ज्ञान भानं । महाकर्मकांतारको दौं प्रधानं ॥ किये नाग नागिन अधोलोकस्वामी । हरयो मान तू दैत्यको हो अकामी ॥ ६ ॥ तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनं । तुही दिव्य चिंतामणी नाग एनं । पशू नर्कके दुःखतें त छुडावै । महास्वर्गतें मुक्तिमें तू बसावै ॥ ७ ॥ करे लोहको हेमपाषाण नामी । रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी ॥ करै सेव ताकी करें देव सेवा । सुनै वैन सोही लहै ज्ञान

मेवा ॥ ८ ॥ जपै जाप ताको नहीं पाप लागै । धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै ॥ विना तोहि जाने धरे भव घनेरे । तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे ॥९॥

दोहा—

गणधर इंद्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान ।
'द्यानत' प्रीति निहारकैं, कीजे आप समान ॥१॥

७७ । भूधरकृत पार्श्वनाथ स्तोत्र ।

दोहा—कर जिनपूजा अष्टविधि, भावभक्ति जिन भाय । अब सुरेश परमेश थुति, करौं शीश निज नाय ॥१॥

चौपाई ।

प्रभु इस जग समरथ ना कोय । जासौं तुम यश वर्णन होय ॥ चार ज्ञानधारी मुनि थकैं । हमसे मंद कहा कर सकैं ॥ २ ॥ यह उर जानत निश्चय हीन । जिनमहिमावर्णन हम कीन ॥ पर तुम भक्ति थकी वाचाल । तिसवस होय कहूं गुणमाल ॥३॥ जय तीर्थंकर त्रिभुवन धनी । जय चंद्रोपम चूडामनी ॥ जय जय परम धाम

दातार । कर्मकुलाचल चूरनहार ॥४॥ जय शि-
वकामिनिकंत महंत । अतुल अनंत चतुष्टयवंत ॥
जय जय आशभरण वडभाग । तपलक्ष्मीके
सुभग सुहाग ॥५॥ जय जय धर्मध्वजाधर धीर।
स्वर्गमोक्ष दाता वरवीर ॥ जय रत्नत्रयरत्नक-
रंड । जय जिन तारण तरण तरंड ॥ ६ ॥ जय
जय समवशरणशृंगार । जय संशयवनदहन
तुपार ॥ जय जय निर्विकार निर्दोष। जय अ-
नंत गुणमाणिक कोष ॥ ७ ॥ जय जय ब्रह्म-
चर्यदल साज । काम सुभट विजयी भटराज ॥
जय जय मोहमहातरु-करी । जय जय मदकुं-
जर-केहरी ॥ ८ ॥ क्रोधमहानल-मेघप्रचंड ।
मानमोहधर दामिनिदंड ॥ माया-बेल-धनंजय-
दाह । लोभ सलिलशोपण-दिननाह ॥ ९ ॥ तुम
गुणसागर अगम अपार । ज्ञानजहाज न पहुचै
पार ॥ तट ही तटपर डोलै सोय । कारन सिद्धि
तहां हीं होय ॥१०॥ तुमरी कीर्तिवेल बहु व-
ढी । यत्न विना जगमंडप चढी ॥ अवरं कुदेव

सुयस निज चहैं। प्रभु अपने थल ही यश लहैं ॥ ११ ॥ जगति जीव घूमै विन ज्ञान। कीना मोहमहाविष पान॥ तुम सेवा विषनाशक जरी। तिह मुनिजन मिल निश्चय करी ॥१२॥ जन्म-जरा मिथ्या-मत-मूल। जन्म मरण-लागे तहँ फूल। सो कबहूँ विन भक्ति कुठार। कटै नहीं दुखफलदातार ॥ १३ ॥ कल्पसरोवर चित्रा बेल। कामपोरवा नवनिधि मेल॥ चिंतामणि पारस पाषान। पुण्यपदारथ और महान ॥१४॥ ये सब एकजन्म-संयोग। किंचित सुखदातार नियोग ॥ त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव, जन्म जन्म सुखदायक देव ॥ १५ ॥ तुम जगबांधव तुम जगतात। अशरणशरण विरद विख्यात ॥ तुम सब जीवनके रखवाल। तुम दाता तुम परम दयाल ॥ १६ ॥ तुम पुनीत तुम पुरुष प्रमान। तुम समदर्शी तुम सब जान ॥ जय मुनि-यज्ञ-पुरुष परमेश। तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥ १७ ॥ तुम जगभर्त्ता तुम जग जान

स्वामि स्वयंभू तुम अमलान ॥ तुम विन तीन काल तिहुं लोय। नाहि शरण जीवका होय ॥ १८ ॥ यातें अब करुणानिधि नाथ। तुम सन्मुख हम जोडे हाथ ॥ जबलों निकट होय निर्वान। जगनिवास छूटै दुखदान ॥१९॥ तबलों तुम चरणांवुज वास। हम उर होय यही अरदास ॥ और न कछु वांछा भगवान। है दयालु दीजे वरदान ॥ २० ॥

दोहा—इहिविध इंद्रादिक अमर, कर बहु भक्ति विधान। निज कोठे बैठे सकल, प्रभु सन्मुख सुख मान ॥ २१ ॥ जीति कर्मरिपु जे भये, केवल लब्धि निवास। सो श्रीपार्श्वप्रभू सदा, करो विघ्नघन नाश ॥

७८ अथ अहिच्छितपार्श्वनाथस्तोत्र

जोगीरासेकी चालमें।

वंदों श्रीपारशपदपंकज, पंच परम गुरु ध्याऊं। शारदमाय नमो मनवचतन, गुरु गौतम शिर नाऊं ॥ एक समय श्रीपारस जिनवर बन तिष्ठे

बैरागी। बाह्याभ्यंतर परिगह त्यागे आतमसों लव लागी ॥ १ ॥ कल्पद्रुमसम प्रभुतन सोहै, करपल्लव तनसाखा। अविचल आतमध्यान पगे, प्रभु इकचित मन थिर राखा ॥ माता--तात कमठचर पापी, तपसी तप करि मूवो। अज्ञानी अज्ञान तपस्या-बल, करि सो सुर हूवो ॥ २ ॥ मारग जात विमान रह्यो थिर, कोप अधिक मन ठान्यो। देखत ध्यानारूढ़ जिनेश्वर, शत्रु आपनो मान्यो ॥ भीषणरूप भयानक दृग कर, अरुणवरण तन कांपै। मूसलधारासम जल छोडै, अधर डसततल चांपै ॥३॥ अति अँधियार भयानक निशि आति, गर्जे घटा घनघोरै। चपला चपल चमकती चहुंदिशि धीरन धीरज छोरै ॥ शब्द भयंकर करत असुर गण, अग्नि जाल-मुख-छोडैं। पवन प्रचंड चलाय प्रलयवत द्रुमगण तृणसम तोडैं ॥ ४ ॥ पवन प्रचंड मूसलजलधारा, निशि अति ही अँधियारी। दामिनिदमक चिक्कार पिशाचन, वन कीनो भयकारी।

अविचल धीर गँभीर जिनेश्वर. थिर आसन बन ठाँढे। पवनपरीषहसों नहिं कांपे सुरगिरि सम मन गाढे ॥ ५ ॥ प्रभुके पुण्यप्रतापपवन-वश, फणपति आसन कंप्यो। अति भयभीत विलोकि चहूंदिशि, चकित है मन जंप्यो॥ जान्यो प्रभु उपसर्ग अवधिबल पद्मावतिजुत धायो फणको छत्र कियो प्रभुके शिर, सर्वारिष्ट नशायो ॥ ६ ॥ फणपतिकृत उपसर्गनिवारण, देखि असुर दुठ भाग्यो। लोकालोक विलोकन प्रभुकै, तुरतहिं केवल जाग्यो। समवशरनकी रचना कारण, सुरपति आज्ञा दीनी। मणिमुक्ता हीराकंचनमय, धनपति रचना कीनी ॥ ७ ॥ तीनों कोट रचे मणिमंडित, धूलीसाल बनाई। गोपुर तुंग अनूप विराजै, मणिमय गहरी खाई॥ सरवर सजल मनोहर सोहैं, वन उपवनकी शोभा। वापी विविध विचित्र विलोकत, सुरनर खगमन लोभा ॥८॥ खेवैं देव गलिनमें घटभरि धूपसुगंध सुहाई। मंद सुगंध प्रतापपवनवश,

दशहूं दिशिमें छाई ॥ गरुडादिकके चिन्ह-अलंकृत धुज चहुंओर विराजैं । तोरन वंदनवारी सोहैं, नवनिधिकी छवि छाजैं ॥ ९ ॥ देवीदेव खडे दरवानी, देखि वहुत सुख पावे । सम्यकवंत महाश्रद्धानी, भविसों प्रीति बढावे ॥ तीन कोटके मध्य जिनेश्वर, गंधकुटी सुखदाई । अंतरीक्षसिंहासनऊपर, राजें त्रिभुवनराई ॥ १० ॥ मणिमय तीन सिंहासन सोभा, वरणत पार न पाऊं । प्रभुके चरणकमलतल सोभैं, मनमोदित शिर नाऊं ॥ चंद्रकांतिसमदीप्ति मनोहर, तीन छत्रछवि आखी । तीनभुवन-ईश्वरताके हैं, मानों वे सब साखी ॥११॥ दुंदुभि शब्द गहिर अति बाजैं, उपमा वरणी न जाई । तीनभुवनजीवन प्रति भाखैं, जयघोषण सुखदाई ॥ कलपतरूवर पुष्प सुगंधित, गंधोदककी वर्षा । देवीदेव करैं निशवासर, भविजीवनमन हर्षा ॥१२॥ तरु अशोककी उपमा वरणत, भविजन पार न पावैं । रोग वियोगदुखीजन दर्शत, तुरतहि शोक नशावैं ।

कुंदपुहुमसम श्वेत मनोहर. चौसठि चमर ढुराहीं। मानों निरमल सुरगिरिके तट, झरना झमकि झराहीं ॥ १३ ॥ प्रभुनन-श्रीभामंडलकी दुति, अद्भुत तेज विराजैं। जाकी दीप्ति मनोहर आगैं, कोटि दिवाकर लाजैं ॥ दिव्य वचन सब भाषा गर्भित, खिरहिं त्रिकाल सुवानी। 'आसा' आस करै सो पूरण, श्रीपारस सुखदानी ॥ १४ ॥ सुर नर जिय तिरजंच घनेरे, जिनवंदन चित आनैं। वैरभावपरिहार निरंतर, प्रीति परस्पर ठानैं ॥ दशहूं दिशि निरमल अति दीखैं, भयो है शोभ घनेरा। स्वच्छसरोवरजलकर पूरे, वृक्ष फरे चहुं फेरा ॥ साली आदिक खेती चहुंदिश, भई स्वमेव घनेरी। जीवनबध नहिं होय कदाचित, यह अतिशय प्रभुकेरी। नख अरु केश वढै नहिं प्रभुके, नहिं नैनन टमकारे। दर्पणवत प्रभुको तन दीपै, आनन चार निहारे ॥ १६ ॥ इंद्र नरेंद्र धनेंद्र सवै मिलि, धर्मामृत अभिलाषी। गणधरपदशिरनाय सुरासुर, प्रभुकी थुति अति

भाषी ॥ दीनदयाल कृपाल दयानिधि, तृषावंत भवि चीन्हें । धर्मामृत वर्षाय जिनेश्वर, तोषित बहुविध कीन्हें ॥ ७ ॥ आरज खंडविहार जिनेश्वर, कीनो भविहितकारी । धर्मचक्र आगोनि चलै प्रभु, केवल महिमा भारी ॥ पंद्रह पांति कमल पंद्रह जुग सुंदर हेम सम्हारे । अंतरीक्ष डग सहित चलें प्रभु. चरणांबुजतल धारे ॥ ॥ १८ ॥ मिटि उपसर्ग भये प्रभु केवलि, भूमि पवित्र सुहाई । सो अहिक्षेत्र थप्यो सुर नर मिल, पूजककों सुखदाई ॥ नाम लेत सब विघन विनाशै, संकट क्षणमें चूरै । वंदन करत बढै सुख संपति,सुमिरत आशा पूरै ॥१९॥ जो अहिक्षेत्र विधान पढै नित, अथवा गाय सुनावै । श्रीजिनभक्ति धरै मनमें दिढ, मनवांछित फल पावै ॥ जुगल वेद वसु एक अंक गणि, बुधजन वत्सर जान्यो । मारग शुक्ल दशैं रविवासर, 'आसाराम' बखान्यो ॥ २० ॥ समाप्त ।

पंचम अध्याय।

भाषा पर्वपूजासंग्रह।

७६। देवपूजा भाषा।

प्रभु तुम राजा जगतके, हमें देय दुख मोह।
तुम-पद-पूजा करत हूं, हमपै करुना होहि ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्र भगवन्! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

बहु तृषा सतायो अति दुख पायो, तुमपै आयो जल लायो। उत्तम गंगाजल, शुचि अतिशीतल प्राशुक निर्मल, गुन गायो॥ प्रभु अंतरजामी, त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो। यह अरज सुनीजे, ढील न कीजे, न्याय करीजे दया धरो॥ १॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्योजन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा ॥ १॥

अघ तपत निरंतर, अगनिपटंतर, मो उर अं

वर खेद करयो। लै बावन चंदन, दाहनिकंदन
तुमपदवंदन हरष धरयों॥ प्रभु०॥२॥
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो चंदनं
औगुन दुखदाता, कह्यो न जाता, मोहि असाता
बहुत करें। तंदुल गुनमंडित, अमल अखंडित,
पूजत पंडित, प्रीति धरें॥ प्रभु०॥३॥
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो अक्ष०
सुरनरपशुको दल, काम महाबल, बात कहत
छल मोह लिया। ताके शर लाऊं फूल चढाऊं,
भक्ति बढाऊं खोल हिया॥ प्रभु०॥ ४॥
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो पुष्पं
सब दोषनमाहीं, जासम नाहीं भूख सदा ही, मो
लागे। सद घेवर बावर, लाडू बहुधर, थार क-
नक भर, तुम आगे॥ प्रभु०॥ ५॥
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो नैवे०
अज्ञान महातम, छाय रह्यो मम, ज्ञान ढक्यो
हम, दुख पावें। तम मेटनहारा, तेज अपारा,
दीप सँवारा, जस गावें॥ प्रभु०॥ ६॥
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो दीपं०

इह कर्म महावन भूल रह्यो जन. शिवमारग नहिं पावत हैं। कृष्णागरुधूपं. अमलअनूपं. सिद्धस्वरूपं ध्यावत हैं॥ प्रभु०॥ ७॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितजिनेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥

सबतें जोरावर. अंतराय अरि. सुफल विघ्नकरि डारत हैं। फलपुंज विविध भर. नयन मनोहर श्रीजिनवरपद धारत हैं॥ प्रभु०॥ ८॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों दुखदानी. आठ निशानी. तुम ढिंग आनि निवारन हो। दीननिस्तारन. अधम उधारन. 'द्यानत' तारन. कारन हो॥ प्रभु०॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ९॥

जयमाला। दोहा।

गुण अनंत को कहि सकै. छियालीस जिनराय।
प्रगट सुगुन गिनती कहूं तुम ही होहु सहाय॥१॥

चौपाई (१६ मात्रा)

एक ज्ञान केवल जिनस्वामी। दो आगम अ-

ध्यातम नामी ॥ तीन काल विधि परगट जा-
नी । चार अनंतचतुष्टय ज्ञानी ॥२॥ पंच पराव-
र्तन परकासी । छहों दरबगुनपरजयभासी ॥
सातभंगवानी-परकाशक। आठों कर्म महारिपु-
नाशक ॥ ३ ॥ नवतत्त्वनके भाखनहारे । दश
लक्षनसों भविजनतारे ॥ ग्यारह प्रतिमाके उ-
पदेशी । बारह सभा सुखी अकलेशी ॥ ४ ॥
तेरहविध चारितके दाता । चौदह मारगनाके
ज्ञाता ॥ पंद्रह भेद प्रमाद निवारी । सोलह
भावन फल अविकारी ॥ ५ ॥ तारे सत्रह अंक
भरत भुव । ठारै थान दान दाता तुव ॥ भाव
उनीस जु कहे प्रथम गुन । बीस अंक गणधर-
जीकी धुन ॥६॥ इकइस सर्वघातविधि जानै ।
बाइस बंध नवम गुणथानै ॥ तेइस निधि अरु
रतन नरेश्वर । सो पूजै चौवीस जिनेश्वर ॥७॥
नाश पचीस कषाय करी हैं। देशघाति छब्बीस
हरी हैं। तत्त्व दरव सत्ताइस देखे । मति विज्ञान
अठाइस पेखे ॥ ८ ॥ उनतिस अंक मनुष सब

जाने । तीस कुलाचल सर्व बखाने । इकतिस
पटल सुधर्म निहारे । बत्तिस दोष समायिक
टारे ॥९॥ तेतिस सागर सुखकर आये । चौंति-
स भेद अलब्धि बताये ॥ पैंतिस अच्छर जप
सुखदाई । छत्तिस कारन रीति मिटाई ॥१०॥
सैंतिस मग कहि ग्यारह गुनमें । अठतिस पद
लहि नरक अपुन में ॥ उनतालीस उदीरन तेरम।
चालिस भवन इंद्र पूजें नम ॥ ११॥ इकतालीस
भेद आराधन । उदै वियालिस तीर्थंकर भन ॥
तेतालीस बंध ज्ञाता नहिं । द्वार चवालिस नर
चौथेमाहि ॥ १२ ॥ पैंतालीस पल्यके अच्छर ।
छियालीस विन दोष मुनीश्वर ॥ नरक उदै न
छियालिस मुनिधुन । प्रकृत छियालिस नाश द-
शमगुन ॥१३॥ छियालीस घन राजु सात भुव
अंक छियालिस सरसों कहि कुव । भेद छिया-
लिस अंतर तपवर । छियालीस पूरन गुन जिन-
वर ॥ १४ ॥
अडिल्ल—मिथ्यातपन निवारन चंद समान हो ।

मोहतिमिर वारनको कारन भानु हो ॥
कामकषाय मिटावन मेघ मुनीश हो।
'द्यानत' सम्यकरतनत्रय गुनईश हो ।१५।

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्रेभ्यः पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

८० । सरस्वतीपूजा ।

जनम जरा मृतु छय करै, हरै कुनय जडरीति।
भवसागरसों ले तिरै, पूजै जिनवचप्रीति ॥१॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि । अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

छीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुखसंगा। भरि कंचन झारी, धार निकारी तृषा निवारी, हितचंगा॥ तीर्थंकरकी धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई ॥ सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी, पूज्य भई ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

करपूर मँगाया, चंदन आया, केशर लाया, रंग भरी। शारदपद वंदों मन अभिनंदों, पाप निकंदों. दाह हरी ॥ तीर्थंकरकी० ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥

सुखदास कमोदं. धारकमोदं. अति अनुमोदं चंदसमं। वहुभक्ति वढाई. कीरति गाई. होहु सहाई मात ममं ॥ तीर्थंकरकी० ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

वहुफूलसुवासं. विमलप्रकाशं. आनँदरासं लाय धरे। मम काम मिटायो. शील वढायो. सुखउप जायौ दोष हरे ॥ तीर्थंकरकी० ॥

ओं ह्रींश्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

पकवान वनाया. वहुघृतलाया. सव विध माया. मिष्टमहा। पूजूं थुति गाऊं. प्रीति वढाऊं. क्षुधा नशाऊं. हर्ष लहा ॥ तीर्थंकरकी० ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा

करि दीपक-जोतं. तमछय होत ज्योति उदोतं. तुमहि चढै। तुम हो परकाशक भरमविनाशक

स्म घट भासक. ज्ञान बढ़ै ॥ तीर्थंकरकी० ॥६॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभगंध दशोंकर, पावकमें धर. धूप मनोहर खेवत हैं। सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं सेवत हैं ॥ तीर्थंकरकी० ॥७॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

बादाम छुहारी- लोंग सुपारी. श्रीफल भारी. ल्यावत हैं। मनवांछित दाता. मेट असाता. तुम गुन माता. ध्यावत हैं ॥ तीर्थंकरकी० ॥८॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

नयननसुखकारी. मृदुगुनधारी. उज्ज्वलभारी. मोलधरैं। शुभगंधसम्हारा. वसन निहारा. तुम तन धारा ज्ञान करै ॥ तीर्थंकरकी० ॥९॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

जलचंदन अच्छत. फूल चरू चत दीप धूप अति फल लावैं। पूजाको ठानत. जो तुम जानत. सो नर द्यानत. सुख पावैं ॥ तीर्थंकरकी० ॥१०॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१०॥

ॐकार धुनिसार. द्वादशांगवाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार. ज्ञान करै जडता हरै॥

पहले आचारांग बखानो। पद अष्टादश सहस प्रमानो। दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं। पद छत्तीस सहस गुरु भाषं॥१॥ तीजो ठाना अंग सुजानं। सहस वियालिस पदसरधानं॥ चौथो समवायांग निहारं। चौंसठ सहस लाख इकधारं॥२॥ पंचम व्याख्याप्रज्ञपति दरसं। दोय लाख अट्ठाइस सहसं॥ छट्ठो ज्ञातृकथा विसतारं। पांचलाख छप्पन हजारं॥३॥ सप्तम उपासकाध्ययनंगं। सत्तर सहस ग्यारलख भंगं। अष्टम अंतकृतं दस ईसं। सहस अठाइस लाख तेईसं॥४॥ नवम अनुत्तरदश सुविशालं। लाख बानवै सहस चवालं॥ दशम प्रश्नव्याकरण विचारं। लाख तिरानव सोल हजारं॥५॥ ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं। एक कोड चौरासी लाखं॥ चार कोडि अरु पंद्रह लाखं। दो हजार

तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

शुचि नीर निर्मल छीरदधिसम, सुगुरु चरन चढाइया । तिहुँधार तिहुँ गदटार स्वामी, अति उछाह बढ़ाइया ॥ भवभोगतनवैराग्य धार, निहार शिवतप तपत हैं । तिहुं जगतनाथ अधार साधु सु, पूज नित गुन जपत हैं ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो जन्म० जलं निर्वपामी०

करपूर चंदन सलिलसौं घसि, सुगुरुपद पूजा करौं । सब पापताप मिटाय स्वामी, धरम शीतल विस्तरौं ॥ भवभोग० ॥२॥

ओंह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो भवातपविनाशनायचंदनं०

तंदुल कमोद सुवास उज्जल, सुगुरुपगतर धरत हैं । गुनकार औगुनहार स्वामी, वंदना हम करत हैं ॥ भवभोग० ॥३॥

ओंह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि०

शुभफूलरासप्रकाश परिमल, सुगुरु पायनि परत हों । निरवार मारउपाधि स्वामी, शील दृढ उर धरत हों ॥ भवभोग० ॥ ४ ॥

पकवान मिष्ट सलौन सुंदर. सुगुरु पायनि प्रीति सौं। हर क्षुधारोग विनाश स्वामी. सुथिर कीजे रीति ॥ भ० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं आचार्यो... क्षुधारोगविनाशनाय नैवे०

दीपकउद्यो... जगमग. सुगुरुपद पूजों सदा। तमनाश ज्ञानउजास स्वामी. मोहि मोह न हो कदा ॥ भवभोग० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं

बहु अगर आदि सुगंध खेऊं. सुगुण पद पद्महिं खरे। दुखपुंजकाठ जलाय स्वामी. गुण अछय चितमें धरे ॥ भवभोग० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽष्टकर्म दहनाय धूपं नि०

भर थार पूग बदाम बहुविध. सुगुरुक्रम आगें धरों। मंगल महाफल करो स्वामी. जोर कर विनती करों ॥ भवभोग० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०

जल गंध अक्षत फूल नेवज. दीप धूप फलावली।

द्यानत सुखसम्पद देहु स्वामी, हमारे तार उतावली ॥ गुरु आरती० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि

अथ जयमाला ।

दोहा—कनककामिनी विषयवश दीसै सब संसार
त्यागी वैरागी महा, साधु सुगुन भंडार ॥१॥
तीन घाटि नवकोड सब, वंदौं शीस नवाय ।
गुन तिन अट्ठाईस लौं, कहूं आरती गाय ॥२॥

केसरी छंद—एक दया पालैं मुनिराजा, रागदोष द्वै हरन परं । तीनोंलोक प्रगट सब देखें, चारों आराधन निकरं ॥ पंच महाव्रत दुद्धर धारैं, छहों दरब जानैं सुहितं । सात भंगवानी मन लावैं, पावैं आठ रिद्ध उचितं ॥ ३ ॥ नवों पदारथ विधिसौं भाखैं, बंध दशों चूरन करनं । ग्यारह शंकर जानैं मानैं, उत्तम बारह व्रत धरनं ॥ तेरह भेद काठिया चूरैं, चौदह गुनथानक लखियं । महाप्रमाद पंचदश नाशैं, सोलकषाय सबै नशियं ॥ ४ ॥ बंधादिक सत्रह सब चूरैं, ठारह जन्म

भरन मुनं। एक समय उनइस परीसह, बीस प्ररू पनिमैं निपुणं। भाव उदीक इकीसों जानें, बाइस अभखन त्याग करं। अहिमिंदर तेईसों वंदें, इंद्र सुरग चौवीस वरं ॥५॥ पच्चीसों भावन नित भावें, छब्बिस अंग उपंग पढैं। सत्ताईसों विषय विनाशैं, अट्ठाईसों गुण सु पढैं। शीत समय सर चौहटवासी, ग्रीषमगिरिशिर जोग धरं। वर्षा वृक्ष तरें थिर ठाढे, आठ करम हनि सिद्ध वरं ॥६॥

दोहा—कहों कहालों भेद मैं, बुध थोरी गुन भूर। 'हेमराज' सेवक हृदय, भक्ति करो भरपूर ॥ ७ ॥

ओंह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

८२। बीसविरहमानतीर्थंकरपूजा।

दायक यश जय सुमति सुग, सुख दुतिरूप अपार। घायक विधि घायकनिके, लायक जग उद्धार ॥ १ ॥ सीमंधर आदिक सकल, वियद बाहु मित ऐन। आह्वानन त्रिविधा करूं इत तिष्ठहु सुखदैन ॥ २ ॥

ओंह्रीं श्रीसीमंधरादिविद्युत्प्रभपर्यंतविदेहक्षेत्रस्थितवर्तमानविंशति

जिनेन्द्राः अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीसीमंधरा-दिमजितवीर्यपर्यंतविदेहक्षेत्रस्थितवर्तमानविंशतिजिनेन्द्राः अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिमजितवीर्यपर्यंतविदेह-क्षेत्रस्थितवर्तमानविंशतिजिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत। वषट्।

अथाष्टक। रुचिरा छंद मात्रा ३०।

शीतल सलिल अमल तृट्हारक, लेयसुधासम मृंगभरं। जिनपति-चरन अग्र त्रय धारा, धरूं तापत्रय नाशकरं॥ जय कमलासन सुंदर शासन, भासन नभद्वय बोधवरं। श्रीधर श्री-सीमंधर आदिक यजूं बीस जिन श्रेयकरं॥१॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो जलं।

मलयपटीर घसित वर कुंकुम, शीतल गंध सुरंग भर्‍यो। सारसवरन चरन तव धारत, आकुल दाह अपार हर्‍यो॥ जय०॥२॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिविदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतिजिनेन्द्रेभ्यः चन्द०

जीरक श्याम सुगंधित तंदुल, श्वेतवरन वर अ-नियारे। लहिअक्षत अक्षयपद पावन, धरूं पुंज दृग मनहारे॥ जय०॥३॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतिजिनेन्द्रेभ्योऽक्ष०

केतकि कंज गुलाब जुही वर, सुमन सुवासित मनहारी। भारत चरन लहैं समतासर, नसैं मदनशर दुखकारी ॥ जय० ॥४॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतिजिनेंद्रेभ्य पुष्पं

विंजन विविध छहोंरस पूरित, रत्न सु सुंदर थलकारी। श्रीपतिचरन चढाऊं चरुवर, निजबलदायक क्षुतहारी ॥ जय० ॥५॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविंशतिविद्यमानजिनेन्द्रेभ्यो नै०

प्रजलित ज्योति कपूर मनोहर, अथवा पूरित स्नेहवरं। करत आरती हरि भव-आरति, निज गुणज्योतिप्रकाशकरं ॥ जय० ॥६॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविद्यमानविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो दी०

चूरित अगर पटीरादिकवर, गंध हुताशनसंग धरूं। खेऊं धूप जिनेशचरनढिग, चाहत हूं विधि नाश करूं ॥ जय० ॥७॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यो धूपं

फल दाडिम एला पिकवल्लभ, खारिक आदिक मिष्ट भले। लेकर चरन चढावत जिनके, पावत

ईं फलमोक्षरले ।। जय० ।।८।।

ओं ह्रीं श्रीसीमधरादिकविदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतिजिनेंद्रेभ्यो फलं

जलचंदन अक्षत मनसिजशर, चरु दीपक वर धूप फलं । भवगदनाशन श्रीपदके पद, वारतहूं करि अर्घ भलं ।। जय० ।।९।।

ओं ह्रीं श्रीसीमधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविंशतिविद्यमानजिनेंद्रेभ्यो अर्घं

अथ जयमाला ।

दोहा—द्वीप अर्द्ध द्वय मेरु पन, मेरु मेरु प्रति च्यार । विहरत विभव अनंत युत, अवनि विदेहमँझार ।। १ ।।

चंडी छंद (१६ मात्रा)

सीमंधर सुखसीम सुहाये, युगमंधर युगवृष प्रगटाये । वाहुबाहुवलमोहविदारचो, जिन सुबाहु मनमथ मदमारचो ।।२।। संजातक निज जाति पिछानी, स्वयंप्रभू प्रभुता निज ठानी । ऋषभानन ऋषिधर्मप्रकाशन, वीर्यअनंत कर्मरिपुनासन ।। ३ ।। सूरप्रभू निजभापरिपूरन, प्रभु विशाल त्रिकशल्य विचूरन । देववज्रधर-भ्रमगिरिभंजन, चंद्रानन जगजनमनरंजन

॥ ४ ॥ चंद्रबाहु भवतापनिवारी. ईशभुजंगम धुनि–मनि धारी । ईश्वरशिवगवरीदुखभंजन. नेमिप्रभूवृषनेमि निरंजन ॥५॥ वीरसेन विधि अरि जयवीरं. महाभद्र नाशक भवपीरं । देव देवयशको यश गावें. अजितवीर शिवरमानि सुहावें ॥ ६ ॥ ये अनादि विधिबंधनमांही. लब्धियोगनिजनिधि लखपाई । सम्यक बलकर अरि चकचूरन. क्रमतें भये परमदुति-पूरन ॥ ७ ॥ अंतरीक्ष आसनपर सोहैं. परम विभूतिप्रकाशक जो हैं । चौसठचमर छत्रत्रय राजें. कोटिदिवाकर दुति लखि लाजें ॥ ८ ॥ जय दुंदुभि धुनि होत सुहानी. दिव्यध्वनि जगजन-दुखहानी । तरु अशोक जनशोक नशावै. भामंडल भव सात दिखावै ॥ ९ ॥ हर्षित सुमन सुमन बरसावैं. सुमनअंगना सुगुन सु गावैं । नवरसपूरन चतुरँग भीनी. लेत भक्तिवश तान नवीनी ॥१०॥ बजत तार तननन नन नन नन. घुंगरू धगक झुनन नन झुननन । धी धी धृक-

ट घूकटद्रम द्रम द्रम. धुनतमुरुजपुरुतारतरल सम ॥११॥ ताथेई थेइ थेइ चरन चलावें, कटि कर मोरि भाव दरशावैं। मानथंभ मानीपद खंडन, जिन-प्रतिभायुत पाप-विहंडन ॥ १२ ॥ शालचतुक गोपुरकर सोहै, सजलखातिका जनमन मोहै। द्विजगन कोक मयूर मरालं, शुक-कलरव-रव होत रसालं ॥ १३ ॥ पूरित सुमन सुमनकी वारी, वन बँगला गिरिवर छवि-धारी। तूप ध्वजा गन पंक्ति विराजैं, तोरन नव निधि द्वार सु छाजैं ॥ १४ ॥ इत्यादिक रचना वहुतेरी, द्वादश सभा लसत चहुं फेरी। गनधर कहत पार नहिं पावैं. 'थान' निहारत ही वनि आवें ॥ १५ ॥ श्रीप्रभुके इच्छा न लगारं. भवि जन भाग्य उदय सु विहारं। यह रचना में प्रगट लखाऊं. याहित हरषि हरषि गुन गाऊं ॥ १६ ॥

छन्द घत्ता।

यह जिनगुनसारं करत उचारं. हरत विकारं अघभारं। जय यशदातारं बुधिविस्तारं. करत

अपारं सुखसारं ॥ १७ ॥

ओं ह्रीं विदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽर्घंनिर्वपामीतिस्वाहा।

अडिल्लछंद।

जो भविजन जिनवीस यजैं शुभ भावसूं।
कहैं सुगुनगनगान भक्तिधर चावसूं॥
लहैं सकल संपति अर वरमति विस्तरै।
सुर-नर-पद वर पाय मुक्ति रमनी वरै॥ १॥

इत्याशीर्वादः। समाप्तः।

८३। अकृत्रिम चैत्यालयपूजा।

चौपाई।

आठ किरोड रु छप्पन लाख। सहस सत्यावण
चतुशत भाख॥ जोड इक्यासी जिनवर थान।
तीनलोक आह्वान करान॥ १॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसवध्यष्टकोटिपट्पञ्चासल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुः शतैकाशीति अकृतिमजिनचैत्यालयानि अत्र अवतरत अवतरत। सं-वौषट्। ओं ह्रीं त्रैलोक्यसर्वध्यष्टकोटिपट्पंचासल्लक्षसप्तनवति-सहस्र चतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। ओं ह्रीं त्रैलोक्यसर्वध्यष्टकोटिपट्पञ्चाशल्लक्षसप्त-नवतिसहस्रचतुः शतैकाशीति अकृतिमजिनचैत्यालयानि अत्र मम सन्निहितो भवत भवत। वषट्।

क्षीरोदधिनीरं उज्ज्वल सीरं. छान सुचीरं. भरि झारी। अति मधुर लखावन. परम सु पावन. तृषा बुझावन गुण भारी॥ वसुकोटि सु छप्पन लाख सत्ताणव. सहस चारसत इक्यासी। जिनगेह अकीर्तिम तिहुँजगभीतर. पूजत पद ले अविनाशी॥ १॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसबध्यष्टकोटिषट्पचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतै-काशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १।

मलयागिर पावन. चंदन बावन. तापबुझावन घसि लीनो। धरि कनक कटोरी द्वै करजोरी. तुमपद ओरी चित दीनो॥ वसु०॥ २॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसबध्यष्टकोटिषट्पचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःश-तैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो चदन निर्वपामीति स्वाहा॥

बहुभांति अनोखे. तंदुल चोखे. लखि निरदोखे हम लीने। धरि कंचनथाली. तुमगुणमाली. पुंजविशाली करदीने॥ वसु०॥ ३॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसवध्यष्टकोटिषट्पचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःश-तैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

शुभ पुष्प सुजाती है बहुभांती. अलि लिप-

थली लेय वरं। धरि कनकरकेवी. करगह लेवी.
तुमपद जुगकी भेट धरं ॥ वसु० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥

खुरमा जु गिंदौडा, बरफी पेडा, घेवर मोदक भरि थारी। विधिपूर्वक कीने, घृतपयभीने. खँड में लीने, सुखकारी ॥ वसु० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिम जिनचैत्यालयेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीतिस्वाहा ॥

मिथ्यात महातम, छाय रह्यो हम, निजभव परणति. नहिं सूझै। इहकारण पाकें दीप सजाकें, थाल धराकें. हम पूजें ॥ वसु० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिम जिनचैत्यालयेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा

दशगंध कुटाकें, धूप बनाकें, निजकर लेकें धरि ज्वाला। तसु धूम उडाई, दशदिश छाई, बहु महकाई, अति आला ॥ वसु० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥

बादाम छुहारे, श्रीफल धारे, पिस्ताप्यारे, द्रा
वरं । इन आदि अनोखे लखि निरदोखे, थ
पलजोखे, भेट धरं ॥ वसु० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबन्ध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र
चतुरशीत्यकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वा

जल चंदन तंदुल कुसुम रु नेवज, दीप धू
फल, थाल रचों ॥ जयघोष कराऊं, बीन बजा
ऊं, अर्घ चढाऊं खूब नचों ॥ वसु० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबन्ध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतु
रशीत्यकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

अथ प्रत्येक अर्घ । चौपाई ।

अधोलोक जिन आगमसाख । सात कोडि
अरु बहत्तर लाख ॥ श्रीजिनभवनमहा छवि
देइ । ते सब पूजों वसुविध लेइ ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अधोलोकसंबंधिसप्तकोटिद्विसप्ततिलक्षाकृत्रिम श्रीजिनचै-
त्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

मध्यलोकजिनमंदिरठाठ । साढे चारशतक
अरु आठ ॥ ते सब पूजों अर्घ चढाय । मनवच
तन त्रयजोग मिलाय ॥ २ ॥

ओं ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशतअष्टपंचाशत् श्रीजिनचैत्यालयेभ्योऽर्घं

अडिल्ल—ऊर्ध्वलोकके मांहि भवनजिनजानियें।
लाखचुरासी सहस सत्याणव मानिये॥
तापै धरि तेईस जजों शिर नायकें।
कंचन थाल मझार जलादिक लायकें॥

ओं ह्रीं ऊर्ध्वलोकसंबंधिचतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रत्रयोविंशति श्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं ॥ ३ ॥

वसुकोटि छप्पनलाख ऊपर, सहस सत्याणव मानिये। सतच्यारपै गिनले इक्यासी, भवन जिनवर जानिये॥ तिहुँलोकभीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करैं। तिन भवनकों हम अर्घ लेकें, पूजि हैं जगदुख हरैं॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो पूर्णार्घ्यंनिर्वपामीतिस्वाहा

दोहा—अब वरणों जयमालिका सुनो भव्य चितलाय। जिनमंदिर तिहुंलोकके, देहु सकल दरसाय॥ १॥

पद्धरि छंद।

जय अमल अनादि अनंत जान। अनिमित

षु अकीर्तम अचल थान ॥ जय अजय अखंड गरूपधार । षट्द्रव्य नहीं दीसै लगार ॥ २ ॥
जय निराकार अविकार होय । राजत अनंत परदेश सोय ॥ जे शुद्ध सुगुण अवगाह पाय । दशदिशामांहिं इहविध लखाय ॥ ३ ॥ यह भेद अलोकाकाश जान । तामध्य लोक नभ तीन मान ॥ स्वयमेव बन्यो अविचल अनंत । अविनाशि अनादि जु कहत संत ॥ ४ ॥ पुरुष अकार ठाढो निहार । कटि हाथ धारि द्वै पग पसार ॥ दच्छिन उत्तरदिशि सर्व ठौर । राजू जु सात भाख्यो निचोर ॥ ५ ॥ जय पूर्व अपर दिश घाटबाधि । सुन कथन कहूं ताको जु साधि ॥ लखि श्वभ्रतलैं राजू जु सात । मधिलोक एक राजू रहात ॥ ६ ॥ फिर ब्रह्मसुरग राजू जु पांच । भूसिद्ध एक राजू जु सांच ॥ दश चार ऊंच राजू गिनाय । षट्द्रव्य लये चतुकोण पाय ॥ ७ ॥ तसु वातवलय लपटाय तीन । इह निराधार लखियो प्रवीन ॥ त्रसनाड़ी तामधि

थान स्वास। चतुकोन इक राजु जु व्यास ॥८॥
राजू उतंग चौदह प्रमान। लखि स्वयंसिद्ध
रचना महान ॥ तामध्य जीव त्रस आदि देय।
निज थान पाय तिष्ठें भलेय ॥९॥ लखि अधो
भागमें श्वभ्रथान। गिन सात कहे आगम प्रमान॥
षट थानमाहिं नारकि बसेय। इक श्वभ्रभाग
फिर तीन भेय ॥ १० ॥ तसु अधोभाग नारकि
रहाय। फुनि ऊर्ध्वभाग द्वय थान पाय ॥ बस
रहे भवन व्यंतर जु देव। पुर हर्म्य छजे रचना
स्वमेव ॥ ११ ॥ तिंह थान गेह जिनराज भाख।
गिन सातकोटि बहतरि जु लाख ते भवन नमों
मन वचन काय। गति श्वभ्रहरनहारे लखाय
॥ १२ ॥ पुनि मध्यलोक गोल अकार। लखि
द्वीप उदधि रचना विचार ॥ गिन असंख्यात
भाखे जु संत। लखि संभुरमन सबके जु अंत
॥ १३॥ इक राजुव्यासमें सर्व जान। मधिलोक
तनों इह कथन मान ॥ सबमध्यदीप जंबू गिनेय
अपदशम रुचिकवर नाम लेय ॥१४॥ इन तेरहमें

जिनधाम जान । शतचार अठावन है प्रमान ॥
स्वर्ग देव असुर नर आय आय । पद पूज जांय
शिर नाय नाय ॥ १५ ॥ जय उर्ध्वलोकसुर
कल्पवास । तिहँ थान छजें जिन भवन खास ॥
जय लाख चुरासीपै लखेय । जय सहससत्याणव
और ठेय ॥ १६ ॥ जय वीसतीन फुनि जोड
देय । जिनभवन अकीर्तम जान लेय ॥ प्रति-
भवन एक रचना कहाय । जिनविंब एकसत
आठ पाय ॥१७॥शतपंच धनुष उन्नत लसाय।
पद्मासनजुत वर ध्यान लाय ॥ शिर तीनछत्र
शोभित विशाल । त्रय पादपीठ मणिजडित लाल
॥ १८ ॥ भामंडलकी छवि कौन गाय । फुनि
चँवर ढुरत चौसाठि लखाय ॥ जय दुंदुभिरव
अदभुत सुनाय । जय पुष्पवृष्टि गंधोदकाय ॥
॥ १९ ॥ जय तरु अशोक शोभा भलेय । मंगल
विभूति राजत अमेय । घट तूप छजै मणिमाल
पाय । घटधूम्र धूम दिग सर्व छाय ॥२०॥ जय-
केतुपंक्ति सोहै महान । गंधर्वदेवगन करत गान ॥

सुर जनमलेत लखि अवधि पाय। तिहँ थान
प्रथम पूजन कराय॥ जिनगेहतणो वरनन अ-
पार। हम तुच्छबुद्धि किम लहत पार॥ जय
देव जिनेसुर जगत भूप। नमि 'नेम' मंगै निज
देहरूप ॥ २२ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुः
शतैकाशीतिअकृत्रिमश्रीजिनचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यंनिर्वपामीतिस्वाहा ॥

दोहा—तीनलोकमें सासते श्रीजिनभवनविचार।
मनबचतनकरि शुद्धता पूजों अरघ उतार॥
तिहुं जगभीतर श्रीजिनमंदिर, बने अकी-
र्तम अति सुखदाय। नग सुर खगकरि वंदनीक
जे तिनको भविजन पाठ कराय॥ धनधान्या-
दिकि संपति तिनके,पुत्रपौत्र सुख होत भलाय॥
चक्री सुर खग इंद्र होयकैं, करम नाश शिवपुर
सुख थाय ॥२४॥

(इत्याशीर्वाद—पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

८४। सिद्धपूजा।

अडिल्ल छंद।

अष्टकरमकरि नष्ट अष्ट गुण पायकैं।
अष्टमवसुधामाहिं विराजे जायकैं॥
ऐसे सिद्ध अनंत महंत मनायकैं।
संवौषट् आह्वान करूं हरषायकैं॥१॥

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र ममसन्निहितो भव भव। वषट्।

छंद त्रिभंगी।

हिमवनगतगंगा आदि अभंगा, तीर्थ उतंगा सरवंगा। आनिय सुरसंगा सलिल सुरंगा, करि मनचंगा भरि भृंगा॥ त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरजामी अभिरामी। शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी, सिद्धजजामी सिरनामी।

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये जलं निर्वपामीति स्वाहा॥

हरिचंदन लायो कपूर मिलायो, बहुमहकायो मनभायो। जलसंगघसायो रंगसुहायो, चरनचढ़ायो हरषायो॥ त्रिभु०॥२॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिप-
तये चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

तंदुल उजियारे शशिदुतिहारे, कोमल प्यारे अनियारे। तुष्खंडनिकारे जलसु पखारे, पुंज तुमारे ढिग धारे ॥ त्रिभु० ॥३॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिप-
तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

सुरतरुकी बारी, प्रीतिविहारी, किरिया प्यारी गुलजारी। भरि कंचन थारी फूल सँवारी, तुम पदढारी अति सारी ॥ त्रिभु० ॥४॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिप-
तये पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥

पकवान निवाजे, स्वाद विराजे, अम्रत लाजे क्षुत भाजे। बहु मोदक छाजे, घेवर खाजे, पूजन काजे करि ताजे ॥ त्रिभु० ॥५॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिप-
तये नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

आपापरभासै ज्ञानप्रभासै, चित्तविकासै तम नासै। ऐसे विध खासे दीप उजासे, धरि तुम पासे उल्लासे ॥ त्रिभु० ॥६॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्तायसिद्धचक्राधिपतये दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥

चुंबक अलिमाला गंधविशाला, चंदनकाला गरु वाला। तस चूर्ण रसाला करि ततकाला, अगनी-ज्वालामैं डाला ॥ त्रिभु० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

श्रीफल अतिभारा, पिस्ता प्यारा, दाख छुहारा सहकारा। रितु रितुका न्यारा सत्फलसारा, अपरंपारा लै धारा ॥ त्रिभु० ॥८॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल फल वसुवृंदा अरघअमंदा, जजत अनंदा के कंदा। मेटो भवफंदा सब दुखदंदा, 'हीराचंदा' तुम वंदा ॥ त्रिभु० ॥९॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—ध्यानदहनविधिदारु दहि, पायो पद निरवान। पंचभावजुत थिर थये, नमों सिद्ध भगवान ॥

त्रोटकछंद—सुख सम्यकदर्शन ज्ञान लहा।
अगुरू-लघु सूक्षमवीर्य महा। अवगाह अबाध
अघायक हो। सब सिद्ध नमों सुखदायक हो ॥२॥
असुरेन्द्र सुरेन्द्र नरेन्द्र जजैं। भुवनेन्द्र खगेन्द्र
गणेन्द्र भजैं॥ जर जामनमर्ण मिटायक हो।
सब० ॥ ३ ॥ अमलं अचलं अकलं अकुलं।
अछलं असलं अरलं अतुलं॥ अरलं सरलं
शिवनायक हो। सब० ॥ ४ ॥ अजरं अमरं
अधरं सुधरं। अडरं अहरं अमरं अधरं॥ अपरं
असरं सब लायक हो। सब० ॥ ५ ॥ वृषवृंद
अमंद न निंद लहैं। निरदंद अफंद सुछंद रहैं॥
नितआनँदवृंद विधायक हो। सब० ॥ ६ ॥
भगवंत सुसंत अनंत गुणी। जयवंत महंत
नमंत मुनी॥ जगजंतु तणे अघघायक हो।
सब० ॥७॥ अकलंक अटंक शुभंकर हो। निर
डंक निशंक शिवंकर हो॥ अभयंकर शंकर
क्षायक हो। सब० ॥ ८ ॥ अतरंग अरंग
असंग सदा। भवभंग अभंग उतंग सदा॥

सरवग अनंग नसायक हो । सब० ॥ ९ ॥ बह मंड जु मंडलमंडन हो । तिहुँदंडप्रचंड विहंडन हो । चिद पिंड अखंड अ.ायक हो । सब०॥१०॥ निरभोग सुभोग वियोग हरे । निरजोग अरोग अशोग धरे ॥ भ्रमभंजन तीक्षण सायक हो । सब० ॥ ११ ॥ जय लक्ष अलक्ष सुलक्ष्यक हो । जय दक्षक पक्षक रक्षक हो ॥ पण अक्ष प्रतक्ष खपायक हो । सब० ॥ १२ ॥ निरभेद अखेद अछेद सही । निरवेद अवेदन वेद नहीं ॥ सब लोक अलोकहि ज्ञायक हो । सब० ॥१३॥ अमलीक अदीन अरीन हने । निजलीन अधीन अछीन बने ॥ जमको घनघात बचायक हो । सब० ॥ १४ ॥ न अहार निहार विहार कबै । अविकार अपार उदार सबै ॥ जगजीवनके मन भायक हो । सब० । ॥ १५ ॥ असमंध अधंद अरंध भये । निरबंध अखंध अगंध ठये । अमनं अतनं निरवायक हो । सब० ॥ १६ ॥ अविरुद्ध अक्रुद्ध अजुद्ध प्रभू । अति शुद्ध प्रबुद्ध समृद्ध

विभू ॥ परमातम पूरन पायक हो । सब० ॥१७॥
सब इष्ट अभीष्ट विशिष्ट हितू । उतकिष्ट वरिष्ठ गरिष्ट मितू ॥ शिवतिष्ठत सर्व सहायक हो । सब० ॥ १८ ॥ जय श्रीधर श्रीवर श्रीवर हो । जय श्रीकर श्रीभर श्रीझर हो ॥ जय रिद्धि सुसिद्धि-बढायक हो । सब० ॥ १९ ॥

दोहा—सिद्ध सुगुण को कहि सकै, ज्यों विलस्त नभमान । 'हिराचंद' तातैं जजै, करहु सकल कल्यान ॥ २० ॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

(यहापर विसर्जन भी करना चाहिये)

अडिल्ल—सिद्ध जजैं तिनको नहिं आवै आपदा । पुत्र पौत्र धन धान्य लहै सुख संपदा ॥ इंद्र चंद्र धरणेंद्र नरेंद्र जु होयकैं । जावैं मुकतिमझार करम सब खोयकैं ॥ २१ ॥

(इत्याशीर्वादाय पुष्पांजलिं क्षिपेत्) समाप्त ।

वृषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पदम सुपास जिनराय। चंद पुहुप शीतल श्रियांस नमि, वासुपूज्य पूजितसुरराय॥ विमल अनंत धर्मजसउज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय। मुनिसुव्रत नमि नेमि पासप्रभु,वर्द्धमान पद पुष्प चढाय ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतचतुर्विंशतिजिन-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

मुनिमनसम उज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा।
भरि कनकटोरी धीर दीनी धार धरा॥
चौवीसों श्रीजिनचंद, आनँदकंद सही।
पद जजत हरत भवफंद, पावत मोक्षमही ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि०

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंगभरी। जिनच-रनन देत चढाय, भवआताप हरी। चौवीसों०

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो भवतापविनाशनाय चंदनं नि०।

तंदुल सित सोमसमान, सुंदर अनियारे। मुक्ता-
फलकी उनमान, पुंज धरौं प्यारे॥ चौबीसों०
ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो [illegible] नि०

वरकंज कदंब कुरंड, सुमन सुगंध भरे। जिन
अग्र धरौं गुनमंड, कामकलंक हरे। चौबीसों०।
ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो [illegible] पुष्पं नि०

मनमोदनमोदक आदि, सुंदर सद्य बने। रस-
पूरित प्रासुक स्वाद, जजत छुधादि हने। चौ०
ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो [illegible] नैवेद्यं नि०

तमखंडन दीप जगाय, धारौं तुम आगे। सब
तिमिरमोहक्षयजाय, ज्ञानकला जागै॥ चौबी०
ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो [illegible] दीपं नि०

दशगंध हुताशनमांहि, हे प्रभु खेवत हौं। मिस
धूमकरम जरिजांहि, तुमपद सेवत हौं। चौबी०
ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो [illegible] धूपं नि०

शुचि पक्क सुरस फल सार, सब ऋतुके ल्यायो।
देखत दृगमनको प्यार, पूजत सुख पायो। चौ०।
ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो [illegible] फलं नि०

जलफलआठोंशुचिसार, ताको अर्घ करों तुमकों
अरपों भवतार, भवतरि मोच्छ वरों ।।चौवीसों॰

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति

जयमाला । दोहा–

श्रीमत तीरथनाथपद, माथ नाय हित हेत ।
गाऊं गुणमाला अबै, अजर अमरपददेत ।।१।।

घत्ता ।

जय भवतमभंजन जनमनकंजन, रंजन दिन-
मनि स्वच्छ करा । शिवमगपरकाशक अरिगन
नाशक, चौवीसों जिनराज वरा ।।२।।

पद्धरि छन्द ।

जय ऋषभदेव रिषिगन नमंत । जय अजित
जीत वसुअरि तुरंत । जय संभव भवभय करत
चूर । जय अभिनंदन आनंदपूर ।। ३ ।। जय
सुमति सुमतिदायक दयाल । जय पद्मपद्म-
दुतितनरसाल ।। जय जय सुपास भवपासनाश
जय चंद चंदतनदुतिप्रकाश ।। ४ ।। जय पुष्प-
दंत दुतिदंत सेत । जय शीतल शीतलगुन-
निकेत ।। जय श्रेयनाथ नुतसहसभुज्ज । जय

८६। अथ श्रीआदिनाथजिन पूजा।

नाभिराय मरुदेविके नंदन, आदिनाथ स्वामी महाराज। सर्वारथसिद्धितैं आप पधारे, मध्यमलोकमांहिं जिनराज॥ इंद्रदेव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज। आह्वानन सब विधि मिलकरके, अपने कर पूजें प्रभु पांय॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अथ अष्टक।

क्षीरोदधिको उज्वल जल ले, श्रीजिनवर पद पूजन जाय। जन्म जरा दुख मेटन कारन, ल्याय चढाऊं प्रभुजीके पांय॥ श्रीआदिनाथके चरण कमलपर, वलि वलि जाऊं मनवचकाय। हो करुणानिधि भव दुख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पांय॥

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं।

मलयागिरि चंदन दाह निकंदन, कंचन झारी मैं भर ल्याय। श्रीजीके चरण चढावो भविजन,

भव आताप तुरत मिटि जाय ॥ श्री आदि० ॥

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि०

सुभशालि अखंडित सौरभमंडित, प्रासुक जलसों धोकर ल्याय। श्रीजीके चरण चढावो भविजन अक्षयपदकों तुरत उपाय ।श्रीआदि०।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपा०

कमल केतुकी वेल चमेली, श्रीगुलावके पुष्प मंगाय। श्रीजीके चरण चढावो भविजन, कामवाण तुरत नासिजाय ॥ श्रीआदि० ॥

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं नि०

नेवज लीना तुरत रस भीना, श्री जिनवर आगे धरवाय। थाल भराऊं क्षुधा नसाऊं ल्याऊं प्रभुके मंगल गाय ॥ श्रीआदि० ।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व०

जगमग जगमग होत दशोदिस, ज्योति रही मंदिरमें छाय। श्रीजीके सन्मुख करत आरती, मोहतिमिर नासै दुखदाय। श्रीआ०।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्रायमोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व०

अगर कपूर सुगंध मनोहर चंदन कूट सुगंध

मिलाय। श्रीजीके सन्मुख खेय धुपायन, कर्म जरे चहुंगति मिटि जाय। श्रीआदि०।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व०

श्रीफल और बदाम सुपारी केला आदि छुहारा ल्याय। महामोक्षफल पावन कारन, ल्याय चढाऊं प्रभुजीके पांय। श्रीआदि०।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व०

शुचि निरमल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरू ले मन हरषाय। दीप धूप फल अर्घ सुलेकर, नाचत ताल मृदंग वजाय। श्रीआदि०।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं नि०

पञ्चकल्याणक।

सर्वारथसिद्धितैं चये, मरुदेवी उर आय।
दोज असित आषाढकी, जजूं तिहारे पाय॥

ओं ह्रीं श्रीआषाढकृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतवदी नौमी दिना, जन्म्या श्रीभगवान।
सुरपति उत्सव अति कऱ्या, मैं पूजों धरध्यान॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिजिनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तृणवत् ऋधि सब छांडिके, तप धार्यो वनजाय।
नौमी चैत्र असेतकी, जजूं तिहारे पाय।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां तपःकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिजिनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

फाल्गुन वदि एकादशी, उपज्यो केवलज्ञान।
इंद्र आय पूजा करी, मैं पूजों यह थान॥

ओं ह्रीं फाल्गुणकृष्ण एकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिजिनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ चतुर्दशि कृष्णकी, मोक्ष गये भगवान।
भवि जीवोंको बोधिके, पहुंचे शिवपुर थान॥

ओं ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिजिनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

आदीश्वर महाराज मैं विनती तुमसे करूं। चारों गतिके मांहिं मैं दुखपायो सो सुनो। अष्टकर्म मैं हूं एकलो, यह दुष्ट महादुख देत हो। कबहूं इतर निगोदमें मोकूं पटकत करत अचेत हो॥ म्हारी दीनतणी सुन वीनती॥ १॥ प्रभु कबहूं पटक्यो नरकमें, जठे जीव महादुख पा

हो। नित उठि निरदई नारकी. जठै करत पर-
स्पर घात हो।म्हारी०॥२॥ प्रभु नरकतणा दुख
अब कहूं जठै करै परस्पर घात हो।कोइयक बांध्यो
खंभसों, पापी दे मुद्गरकी मार हो। कोइयक
काटैं करोतसों, पापी अंगतणी दोय फाड हो।
म्हारी० ॥३॥ प्रभु यह विधि दुख भुगत्या घणा.
फिर गति पाई तिरयंच हो। हिरणा वकरा
वाछ्ला पशु दीन गरीब अनाथ हो।म्हारी०।४॥
प्रभु मैं ऊंट बलद भैंसा भयो, ज्यांपै लदियो
भार अपार हो। नहिं चाल्यो जठै गिर पर्‌यो,
पापी दे सोटनकी मार हो ॥म्हारी० ॥५॥ प्रभु
कोइयक पुण्यसंजोगसूं मैं तो पायो स्वर्गनिवास
हो। देवांगना संग रमि रह्यो जठै भोगनिको
परिताप हो ॥म्हारी० ॥ ६ ॥ प्रभु संग अप्सरा
रमि रह्यो कर कर अति अनुराग हो। कबहुंक
नंदनवन विषैं प्रभु कबहुंक वन-गृह मांहि हो।
म्हारी० ॥७॥ प्रभु यह विधि काल गमायकै,
फिर माला गई मुरझाय हो। देव थिती सब घट

गई, फिर उपज्यो सोच अपार हो । सोच क-
रंता तन खिर पड्यो, फिर उपज्यो गरभमें जाय
हो । म्हारी० ॥८॥ प्रभु गर्भतणा दुख अव कहूं,
जठे सकडाईकी ठोर हो ॥ हलन चलन नहिं
करसक्यो जठै सघन कीच घनघोर हो। म्हारी०।९।
माता खावे चरपरो फिर लागे तन संताप हो ।
प्रभु जो जननी तातो भखै, फेर उपजे तन सं-
ताप हो ॥ म्हारी० ।१०॥ ओंधे मुख झूल्यो रह्यो
फेर निकसन कौन उपाय हो ॥ कठिन कठिन
कर नीसर्‌यो. जैसे निसरै जंत्रीमें तार हो । म्हारी०
॥११॥ प्रभु फिर निकसतही धरत्यां पड्यो फिर
लगी भूख अपार हो । रोय रोय बिलख्यो घणो
दुख वेदनको नहिं पार हो ॥ म्हारी० ॥ १२ ॥
प्रभु दुख मेटन समरथ धनी, यातें लागूं तिहारे
पांय हो । सेवक अरज करै प्रभू ! मोकूं भवो-
दधि पार उतार हो ॥ म्हारी० ॥ १३ ॥
श्रीजीकी महिमा अगम है, कोइ न पावै पार ।
मैं मति अल्प अज्ञान हो. कौन करै विस्तार ॥

इति श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

विनती ऋषभ जिनेशकी. जो पढसी मनलाय ।
सुरगोंमें संशय नहीं निश्चै शिवपुर जाय ॥

इत्याशीर्वाद. । समाप्त ।

८७ श्रीचंद्रप्रभजिनपूजा ।

छप्पय—अनोष्ठ्य यमकालंकार तथा शब्दालंकार शातरस ।

चारुचरन आचरन,चरन चितहरनचिहनचर ।
चंदचंदतनचरित, चंदथल चहत चतुर नर ॥
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर ।
चंचल चलितसुरेश, चूलनुत चक्र धनुरधर ॥
चरअचरहितू तारनतरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि । जिनचंदचरन चर्च्यो चहत, चितचकोर नचि रच्चि रुचि ॥ १ ॥

दोहा—धनुष डेढसौ तुंग तन, महासेन नृपनंद ।
मातुलच्छमनाउर जये, थापों चंदजिनंद ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

अष्टक ।

चाल द्यानतरायकृत नंदीश्वराष्टककी अष्टपदी तथा होलीकी तालमें, तथा गरवा आदि अनेक चालोंमें ।

गंगाह्रदनिरमल नीर, हाटकभृंगभरा ।
तुम चरन जजों वरवीर, मेटो जनमजरा ॥
श्रीचंदनाथदुति चंद, चरनन चंद लगै ।
मनवचतन जजत अमंद, आतमजोति जगै ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि०

श्रीखंडकपूर सुचंग, केशररंग भरी । घसि प्रासुकजलके संग, भवआताप हरी ॥श्रीचंद्र०॥२॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्व० ।

तंदुलसित सोमसमान, समलय अनियारे ।
दिय पुंज मनोहर आन, तुमपदतर प्यारे ।श्री०।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपा० ।

सुरद्रुमके सुमन सुरंग, गंधित अलि आवै ।
तासों पद पूजत चंग, कामविथा जावै ।श्री० ।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० ।

नेवज नानापरकार, इंद्रियबलकारी ।
सो लै पदपूजों सार, आकुलताहारी ॥श्री०५॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविन.

तमभंजन दीप सँवार, तुम ढिग धारतु हों।
ममतिमिरमोह निरवार, यह गुण धारतु हों।श्री०
ओं ह्री श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि०।

दसगंधहुतासनमांहिं. हे प्रभु खेवतु हों।
मम करम दुष्ट जरि जांहिं. यातैं सेवतु हों।श्री०।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामीति०

अति उत्तम फल सु मँगाय. तुम गुण गावतु हों।
पूजों तनमन हरषाय. विघन नशावतु हों।श्री०।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामी०।

सजि आठों दरब पुनीत. आठों अंग नमों।
पूजों अष्टमजिन मीत. अष्टमअवनि गमों।श्री०
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामी०।

पंचकल्याणक। छंद तोटक (वर्ण १२)

कलि पंचमचैत सुहात अली। गरभागममंडल
मोद भरी॥ हरि हर्षित पूजत मातु पिता।
हम ध्यावत पावत शर्मसिता॥ १॥
ओं ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलप्राप्तायश्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय [illegible]

कलि पौष [illegible] शि जन्म लयो। तब लोकवि

सुखथोक भयो ॥ सुरईस जजैं गिरशीश तबैं।
हम पूजत हैं नुत शीस अबैं ॥२॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा। कलिपौष इग्यारसि पर्व वरा ॥ निजध्यानविषै लवलीन भये। धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥३॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सवमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर केवल भानु उद्योत कियो। तिहुँलोकतणो भ्रम मेट दियो ॥ कलि फाल्गुणसप्तमि इंद्र जजैं। हम पूजहिं सर्व कलंक भजें ॥४॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित फाल्गुन सप्तमि मुक्ति गये ॥ गुणवंत अनंत अबाध भये ॥ हरि आय जजे तित मोदधरें। हम पूजत ही सब पाप हरे ॥५॥

ओं ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा—हे मृगांकअंकित चरण, तुम गुण अगम अपार। गणधरसे नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार॥ १॥ पै तुम भगति हिये मम, प्रेरै अति उमगाव। तातैं गाऊं सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय॥२॥

छन्द पद्धरि (१६ मात्रा)

जय चंद्र जिनेंद्र दयानिधान। भवकाननहानन दौं प्रमान॥ जय गरभजनममंगल दिनंद। भविजीवविकाशन शर्मकंद॥ ३॥ दशलक्षपूर्वकी आयु पाय। मनवांछित सुख भोगे जिनाय॥ लखि कारण ह्वै जगतैं उदास। चिंत्यो अनुप्रेक्षा सुख निवास॥ ४॥ तित लौकांतिक बोध्यो नियोग। हरि शिविका साजि धरियो अभोग। तापै तुम चढि जिनचंदराय। ताछिनकी शोभा को कहाय॥५॥ जिनअंग सेत सित चमर ढार। सित छत्र शीस गलगुलकहार॥ सित रतन जडित भूषण विचित्र। सित चंद्रचरण चरचैं

पवित्र ॥६॥ सित तनद्युति नाकाधीश आप। सित शिविका कांधे धरि सुचाप ॥ सित सुजस सुरेश नरेश सर्व। सित चितमें चिंतत जात सर्व ॥ ७ ॥ सित चंद्रनगरतें निकसि नाथ। सित वनमें पहुंचे सकल साथ ॥ सितशिलाशिरोमणि स्वच्छछाँह। सित तप तित धारयो तुम जिनाह ॥ ८ ॥ सित पयको पारण परमसार। सित चंद्रदत्त दीनों उदार ॥ सित करमें सो पयधार देत। मानों बांधत भवसिंधु सेत ।९। मानों सुपुण्य धारा प्रतच्छ। तित अचरज पन सुर किय ततच्छ ॥ फिर जाय गहन सित तपकरंत सित केवलज्योति जग्यो अनंत ॥ १० ॥ लहि समवसरनरचना महान। जाके देखत सब पाप हान ॥ जहँ तरु अशोक शोभै उतंग। सब शोकतनो चूरै प्रसंग ॥ ११ ॥ सुर सुमनवृष्टि नभतें सुहात। मनु मन्मथ तज हथियार जात ॥ बानी जिनमुखसौं खिरत सार। मनु तत्त्वप्रकाशन मुकुर धार ॥ १२ ॥ जहँ चौसठ

नमर अमर दुरंत। मनु सुजस मेघ झरि लाग
नंत॥ सिंहासन है जँह कमल जुक्त। मनु शिव·
सरवरको कमलशुक्त॥ १३॥ दुंदुभि जित
बाजत मधुर सार। मनु करमजीतको है नगार॥
शिर छत्र फिरै त्रय श्वेत वर्ण। मनु रतन तीन
त्रयताप हर्ण॥ १४॥ तनप्रभातनों मंडल
सुहात। भवि देखत निजभव सात सात॥ मनु
दर्पणद्युति यह जगमगाय। भविजन भव मुख
देखत सु आय॥ १५॥ इत्यादि विभूति अनेक
जान। बाहिज दीसत महिमा महान॥ ताको
वरणत नाहिं लहत पार। तो अंतरंग को कहै
सार॥१६॥ अनअंत गुणनिजुत करि विहार।
धरमोपदेश दे भव्य तार॥ फिर जोगनिरोधि
अघाति हान। सम्मेदथकी लिय मुकतिथान।१७
वृन्दावन वंदत शीश नाय। तुम जानत हो मम
उर जु भाय॥ तातें का कहौं सु बार बार। मन·
वांछित कारज सार सार॥१८॥

छन्द घत्तानन्द।

जय चंद्जिनंदा, आनँदकंदा, भवभयभंजन राजै हैं। रागादिक द्वंदा, हरि सब फंदा, मुकति माहिं थिति साजै हैं॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

छन्द चौबोला।

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचंद जजै। ताके भवभवके अघ भाजैं मुक्तसारसुख ताहि सजैं॥ २०॥ जमके त्रास मिटै सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं। वृंदावन ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुरि राज रजैं।

इत्याशीर्वादः। परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्। इतिश्री चन्द्रजिनपूजा॥

---

८८ श्रीवासुपूज्य जिनपूजा।

छंद रूपकवित्त।

श्रीमतवासुपूज्य जिनवरपद, पूजनहेत हिये उमगाय। थापों मनवचतन शुचि करिकै, जिनकी पाटलदेव्या माय॥ महिष चिह्न पद लसै मनोहर, लाल वरन तन समतादाय। से

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामी०

पारिजात संतानकल्पतरु,-जनित सुमन बहु लाई। मीनकेतुमदभंजनकारन, तुम पदपद्म चढाई ॥ वासु० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपा०

नव्यगव्यआदिकरसपूरित, नेवज तुरित उपाई। छुधारोग-निवारनकारन, तुम्हें जजों शिरनाई ॥ वासु० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व०

दीपकजोत उदोत होत वर, दशादिशमें छवि छाई। तिमिरमोहनाशक तुमको लखि, जजों चरन हरषाई ॥ वासु० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्व०

दशविध गंधमनोहर लेकर, वातहोत्रमें डाई। अष्ट करम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम सु धूम उडाई ॥ ॥ वासु० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति०

सुरस सुपक्व सुपावन फल लै, कंचनथार भ-

राई। मोच्छ महाफलदायक लखि प्रभु, भेंट धरों गुनगाई ॥ वासु० ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति०

जलफल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई। शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई ॥ वासु० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामी०

पञ्चकल्याणक। छंद पाईता (मात्रा १४)

कलि छट्ठ असाढ़ सुहायो। गर्भागम मंगल पायो ॥ दशमें दिवितें इत आये। शतइंद्र जजे सिर नाये ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि चौदश फागुन जानों। जनमें जगदीश महानों। हरि मेर जजे तब जाई। हम पूजत हैं चितलाई ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुणकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तिथि चौदस फागुन श्यामा। धरियो तप

श्रीआभिरामा ॥ नृप सुंदरके पय पायो। हम पूजत अतिसुख थायो ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपमगलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

वदि भादव दोइज सोहै। लहि केवल आतम जो है ॥ अनअंत गुनाकर स्वामी। नित बंदों त्रिभुवन नामी ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णद्वितीयायां केवलज्ञानमंडिताय श्रीवासुपूज्य जिनेंद्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सितभादव चौदशि लीनों। निरवान सुथान प्रवीनों ॥ पुर चंपाथानकसेती। हम पूजत निजहित हेती ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्या मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला।

चंपापुरमें पंचवर, कल्याणक तुम पाय।
सत्तर धनु तन शोभनो, जै जै जै जिनराय ॥१॥

छन्द मोतियदाम (वर्ण १२)

महासुखसागर आगर ज्ञान। अनंत सुखामृतभुक्त महान ॥ महाबलमंडित खंडितकाम। रमाशिवसंग सदा विसराम ॥ २ ॥ सुरिंद फर्निद खगिंद नरिंद। मुनिंद जजैं नित पादरविंद ॥ प्रभू तुम

अंतरभाव विराग। सुबालहितैं भवभोगसों राग ॥३॥ कियो नहिं राज उदासस्वरूप। सुभावन भावत आतमरूप॥ अनित्य शरीर प्रपंच समस्त। चिदातम नित्य सुखाश्रित वस्त॥४॥ अशर्ण नहीं कोउ शर्न सहाय। जहां जिय भोगत कर्मविपाय॥ निजातम है परमेसुर शर्न। नहीं इनके बिन आपदहर्न॥५॥ जगत्त जथा जल बुद्बुद येव। सदा जिय एक लहै फलमेव॥ अनेकप्रकार धरी यह देह। भमें भवकानन आन न नेह॥६॥ अपावन सात कुधात भरीय। चिदातम शुद्धसुभाव धरीय॥ धरै इनसों जब नेह तबेव। सुआवत कर्म तबै वसुभेव॥७॥ जबै तनभोगजगत्तउदास। धरै तब संवर निर्जरआस॥ करै जब कर्मकलंक विनाश। लहै तब मोक्ष महासुखराश॥८॥ तथा यह लोक नराकृत नित्त। विलोकिय ते षटद्रव्यविचित्त॥ सुआतम जानन बोधविहीन। धरै किन तत्त्वप्रतीत प्रवीन॥९॥ जिनागमज्ञानरु संजमभाव। सबै निजज्ञान विना विरसाव॥ सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल। सुभाव सबै जिहतें शिव हाल॥१०॥ लयो सब जोग सुपुण्य वशाय। कहो किमि दीजिय ताहि गँवाय॥ विचारत यों लवकांतिक आय। नमे पदपंकज पुष्प चढाय॥११॥ कह्यो प्रभु धन्य कियो सुविचार। प्रबोधि सु येम कियो जु विहार॥ तबै सौधर्मतनों हरि आय। रच्यो शिविका चढि आप जिनाय॥१२॥ धरे तप पाय सुकेवलबोध। दियो उपदेश सुभव्य संबोध॥ लियो फिर मोक्ष महासुखराश। नमैं नित भक्त सोई सुखआश॥१३॥

घत्तानंद।

नित वासववंदत पापनिकंदत वासुपूज्य व्रत ब्रह्मपती।
भवसंकलखंडित आनंदमंडित जै जै जै जैवंत जती॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेंद्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१४॥

सोरठा।

वासपूजपद सार, जजों दरबविधि भावसों।
सो पावे सुखसार, भुक्ति मुक्तिको जो परम ॥१५॥

इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

इति श्रीवासुपूज्यजिनपूजा समाप्त ॥

८१ श्रीअनंतनाथ जिनपूजा।

अडिल्ल--बाह्यि अभ्यंतर त्यागि परिग्रह जति भये। बहुजन हित शिवपंथ दिखायो हरि नये॥ ऐसे अनंत जिनेश पाय नमि हूं सदा। आह्वाननविधि करूं त्रिविध करिके मुदा॥

ओं ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

नाराच छंद

क्षीर नीर हीर गौर सोम शीत धारया। मिश्र गंध रत्न भृंग पाप नाश कारया॥ अनंतनाथ पाय सेव मोख्य सौख्य दाय है। अनंतकाल भ्रमज्वाल पूजतें नसाय है॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं०

कुंकुमादि चंदनादि गंध शीत कारया। सं-
सवेन अंतकेन भूरि ताप हारया॥ अनंतनाथ०
ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेंद्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि०

स्वेत इंदु कुंद हार खंड ना अखित्तही। दुर्ति
खंडकार पुंज धारिये पवित्त ही॥अनंतनाथ०॥
ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेंद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० ॥

सरोजुनीत पुष्पसार पंथ वर्ण ल्यावही। गंध
लुब्ध भृंगवृंद शब्द धारि आवही॥ अनंत०॥
ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेंद्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० ॥

मोदकादि घेवरादि मिष्ट स्वादसार ही। हेम-
थाल धारि भव्य दुष्ट भूख टारही॥ अनंत०॥
ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेंद्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि०॥

रत्न दीप तेज भान हेमपात्र धारिये। भवांध-
कार दुःखभार मूलतैं निवारिये॥अनंतनाथ०॥
ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेंद्राय मोहांधकार विनाशनाय दीप नि०॥

देवदारु कृष्ण सार चंदनादि ल्यावही। दशांग
धूप धूम्रगंध भृंगवृंद धावही॥ अनंतनाथ०॥
ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेंद्राय अष्टकर्मदहनाय धूप नि० स्वाहा॥

श्रीफलादि खारिकादि हेमथालमें भरे। शुद्ध

मिष्ट गंधसार चक्खि नासिका हरे ॥ अनंत० ॥

ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथजिनेंद्राय मोक्षफलप्राप्तये फल नि० स्वाहा ॥

छप्पय ।

सलिल शीत अति स्वच्छ मिष्ट चंदन मलयागर । तंदुल सोम समान पुष्प सुरतरुके लावर ॥ चरु उत्तम अति मिष्टपुष्ट रसना मनभावन । मणि दीपक तमहरन धूप कृष्नागर पावन ॥ लहि फल उत्तम कणथाल भरि, अरघ 'रामचंद' इम करै । श्रीअनंतनाथके चरण जुग, बहुविधि अरचै शिव वरै ॥

ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामी०

पंचकल्याणक ।

दोहा--पुष्पोत्तरतैं चय लियो, 'सूर्यादे' उर आय ।
कातिक पडिवा कृष्ण ही, जजहूं तूर बजाय ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कार्तिककृष्णप्रतिपदाया गर्भमङ्गलमंडिताय श्रीअनंत० अर्घं०

जेठ असित द्वादशिविषैं, जनम सुराधिप ज्ञान ।
सनपन करि सुरगिर जजे, जजहूं जनमकल्यान ॥

ओं ह्रीं जेष्ठकृष्णद्वादश्या जन्ममङ्गलमंडिताय श्रीअनंत० अर्घं० ।

जगतराज्य तृणवत तज्यो, द्वादशि जेठ असेव ।

लौकान्तिक सुरपाति जजे, मैं जजहूं शिवदेन ॥३॥

ओं ह्रीं जेष्ठकृष्णद्वादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीअनंत० अर्घं० ॥

चैत अमावसि अरि हने, घातिकर्म दुखदाय।
कह्यो धर्म केवलि भये, जजूं चरण सुखदाय ॥४॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीअनंत० अर्घं० ॥

चैत अमावसि शिव गये, हनि अघाति भगवान।
सुरनरखगपाति मिलि जजे, जजहुं मोक्षकल्यान ॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यां मोक्षमङ्गलमंडिताय श्रीअनंत० अर्घं० ॥

जयमाला।

दोहा—काल अनंतानंत भव, जीव अनंतानंत।
जिन उतपाति व्यय ध्रुव कही, नमूंऽनंत भगवन्त

(चाल—त्रिभुवनगुरु स्वामीजीकी)

जय अनन्त जिनेश्वरजी, पुष्पोत्तरतैं स्वरजी, सिंहसेन नरन्दके
जय सुत भये जी ॥ 'सूर्यादे' माताजी जग पुण्य विख्याताजी,
तिनके जगत्राता गर्भविषैं थयेजी ॥२॥ कातिक अंधियारीजी,
परिवा अविकारीजी, साकेत मझारि कल्याणक हरि कियोजी।
षटमास अगारेजी, मणि स्वर्ण घनेरेजी बरषे नृपकेरे मंदिर घन
जयोजी ॥३॥ द्वादशि अंधियारीजी, जनमे हितकारीजी, प्रभु जेठ-
मझार सुरासुर आयकैंजी। सुरगिरि लै आयेजी, जय मंगल
गायेजी, अभिषेक रचाये पूजे ध्यायकैंजी ॥४॥ फिर [illegible]
[illegible]येजी, नखि दूर [illegible]येजी, लखि अंग नमाये [illegible]।

तन हेम महा छविजी, पच्चास धनू गविजी, लाख तीस करो कवि आयु भई सबैजी ॥५॥ नृपपदवी धारीजी, लखि पणदह सारीजी, सब अनीति विचारि तपोवनकूं गयेजी, वदि जेठ दुवादसिजी, तप देखि स्वरा रिषिजी, पद पूजि नये नसि पाप सबै गयेजी ॥६॥ षष्ठम करि पूरोजी, भोजन दित सूरोजी, पुर धर्म मनूरो आवत देखिकैंजी, नच भक्तिथकी पगजी, विलाय तहा दयजी, मणिविष्टि अक्षय करि सुरगण पेखिकैंजी ॥७॥ धरि ध्यान सुक्ल बकजी, चउ घातिया हने जबजी, सुर आय मिले सब ज्ञान कल्याण ही जी। वदि चैत अमावसिजी, जगि भुक्ति तुहे धनिजी, सम-वादि रच्यो तसु उपमा भी नहींजी। समवादि जिते भविजी, सुनि धर्म तिरे सबजी, प्रभु आयु रही जब मास तणी तवे जी। संमेद पधारेजी, सब जोग सधारेजी, समभाव विचारि वरी शिवतिय अबैजी ॥ वसु गुण जुत भूषितजी, भव छारि बचे कितजी, सुख मगन भये जित मावस चैतकीजी। सुर सब मिलि आयेजी, शिव मंगल गायेजी, बहु पुण्य उपाय चले तुम गुणल कीजी ॥१०॥ गुणवृन्द तुम्हारेजी, बुध कौन उचारेजी, गणधर मिहारे पै वचना कहैजी। "चन्द्राम" करै थुतिजी, वसु मंगलकी थुतिजी, गुण पूरन द्यो मति मर्म तुहे लहैजी ॥११॥ प्रभु अरज हमारीजी, सुनिज्यो सुखकारीजी, भवमें दुखभारी निवारो हो धणीजी। तुम सरन सहाईजी, जगके सुखदाईजी मिलदे पितु माई कहो कबलों धणीजी ॥१२॥

घत्ता—इति गुणगण सारं, अमल अपारं, जिन चन्दाके जिन गाई। सुनि अजरअमरबलि, माससिमवाकलि, शिवसुन्दरि ततछिन पाई॥

ओं ह्रीं श्रीअनंतनाथ जिनेंद्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

१० श्रीशांतिनाथजिनपूजा।

मत्तगयन्द छन्द (तथा जमकालंकार)

या भवकाननमें चतुरानन पापपनानन घेरि हमेरी। आतमजानन मानन ठानन, बानन होन दई सठ मेरी। तामदभानन आपहि हो, यह छानन आन न आननटेरी। आन गही शरनागतको अब, श्रीपतजी पत राखहु मेरी॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अष्टक।

छन्द त्रिभंगी अनुप्रासक। (मात्रा ३२ जगनवर्जित)

हिमगिरिगतगंगा, धार अभंगा प्रासुक संगा, भरि भृंगा। जरमरनमृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदुहिंगा॥ श्रीशांतिजिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं। हनि अरिचक्रेशं हे गुनधेशं दयामृतेशं मक्रेशं॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं०।

बर बावनचदन, कदलीनंदन, घनआनंदन सहित घसौं। भवतापनिकंदन, परानंदन, अभंदन, चरनबसौं ॥ श्रीशांति० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय भवातापविनाशनाय चन्दन निर्व० ।

हिमकरकरिलज्जत, मलयसुसज्जत, अच्छत-जज्जत भरि थारी। दुखदारिद गज्जत सदपद-सज्जत, भवभय भज्जत अति भारी ॥श्री०॥३॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व० ।

मंदार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं, मलयभरं। भरि कंचनथारी, तुम ढिग धारी, मदनविदारी धीरधरं। श्रीशांति० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्प निर्व० ।

पकवान नवीने, पावन कीने, षटरसभीने, सुखदाई। मनमोदनहारे, छुधाविदारे, आगैं धारे गुनगाई ॥ श्रीशांति० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० ।

तुम ज्ञानप्रकाशे, भ्रमतम नाशे, ज्ञेयविकाशे सुखरासे। दीपक उजियारा यातैं धारा, मोह-निवारा निजभासे ॥ श्रीशांति० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नर्व॰ ।

चंदन करपूरं, करि वरचूरं, पावक भूरं, माहि सुरं। तसु धूम उड़ावै नाचत जावै, अलि गुं-जावै मधुरसुरं ॥ श्रीशांति॰ ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति॰ ।

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं, निंबुक भूरं, ले आयो। तासों पद जज्जों शिवफल सज्जों, नि-जरसरज्जों उमगायो। श्रीशांति॰ ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व॰ स्वाहा ।

वसुद्रव्य सँवारी, तुमढिगधारी, आनँदकारी दृगप्यारी। तुम हो भवतारी करुनाधारी, यातैं धारी शरनारी ॥ श्रीशांति॰ ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति॰ ।

पंचकल्याणक। सुन्दरी तथा द्रुतविलंबितछंद।

असित सातयँ भादव जानिये। गरभमंगल तादिन मानिये ॥ सचि कियो जननी पद चर्च-नं। हम करैं इत ये पद अर्चनं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है। सकलइंद्र सुआगत धाम है॥ गजपुरे गज साजि सबै तबैं। गिरि जजे इत मैं जजिहों अबैं॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवशरीर सुभोग असार हैं। इमि विचार तबैं तप धार हैं॥ भ्रमर चौदशि जेठ सुहावनी। धरमहेत जजों गुन पावनी॥ ३॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुकलपौष दशैं सुखराश है। परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है॥ भवसमुद्र-उधारन देवकी। हम करैं नित मंगल सेवकी॥ ४॥

ओं ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

असित चौदस जेठ हने अरी। गिरि समेद-थकी शिवतियवरी। सकल इंद्र जजें तित आयकें। हम जजैं इत मस्तक नायकें॥ ५॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला।

छन्द रथोद्धता, चन्द्रवत्सा तथा चन्द्रवर्त्म (वर्ण ११, लाटानुप्रास)

शांतिशांतिगुण-मंडिते सदा। जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा॥ मैं तिन्हें भगतिमंडिते सदा। पूजि हों कलुषहंडिते सदा॥१॥ मोच्छहेत तुम ही दयाल हो। हे जिनेश गुनरत्नमाल हो॥ मैं अबै सुगुनदाम ही धरों। ध्यावतें तुरित मुक्ति ती वरों॥ २॥

छन्द पद्धरि (१६ मात्रा)

जय शांतिनाथ चिद्रूपराज। भवसागरमें अद्-भुत जहाज॥ तुम तज सरवारथसिद्ध थान। सर-वारथजुत गजपुर महान॥१॥ तित जनम लियो आनंदधार। हरि तताछिन आयो राजद्वार॥ इंद्रानी जाय प्रसूति-थान। तुमको करमें ले हरष मान॥ २॥ हरि गोद देय सो मोद धार। सिर चमर अमर ढारत अपार॥ गिरिराज जाय तित शिलापांड। तापैं थाप्यो अभिषेक मांड॥३॥ तित पंचम उदधितनों सुवार। सुर कर कर करि ल्याये उदार॥ तब इंद्र सहसकर करि

अनंद। तुम शिर धारा ढार्‍यो सुनंद ॥ अघ
घघ घघ घघ धुनि होत घोर। भभ भभ भभ
धध धध कलशशोर ॥ द्रमद्रम द्रमद्रम वाजत
मृदंग। झन नन नन नन नन नूपुरंग ॥५॥ तन
नन नन नन नन तनन तान। घन नन नन
घंटा करत ध्वान ॥ ताथेइ थेइ थेइ थेइ थेइ सु-
चाल। जुत नाचत नावत तुमहिं भाल ॥ ६ ॥
चट चट चट अटपट नटत नाट। झट झट झट
हट नट शट विराट ॥ इमि नाचत राचत भगत
रंग। सुर लेत जहां आनंद संग ॥७॥ इत्यादि
अतुल मंगल सुठाट। तित बन्यौ जहां सुरगिरि
विराट ॥ पुनि करि नियोग पितुसदन आय।
हरि सौंप्यो तुम तित वृद्ध थाय ॥ ८ ॥ पुनि
राजमाहिं लहि चक्ररत्न। भोग्यो छखंड करि
धरमजत्न ॥ पुनि तपधरि केवलरिद्धि पाय।
भविजीवनकों शिवमग बताय ॥ ९ ॥ शिवपुर
पहुंचे तुम हे जिनेश। गुनमंडित अतुल अनंत
भेष ॥ मैं ध्यावतु हौं नित शीशनाय। हमरी

भवबाधा हरि जिनाय ॥ १० ॥ सेवक अपनो निज जान जान। करुणाकरि भौभय भान भान॥ यह विघनमूलतरु खंड खंड। चितचिंतित आनँद मंड मंड ॥ ११ ॥

घत्तानन्द छन्द (मात्रा ३१)

श्रीशांतिमहंता, शिवतियकंता, सुगुनअनंता भगवंता। भवभ्रमन हनंता, सौख्य अनंता दातारं तारनवंता ॥ १ ॥

ॐ श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

छंद रूपक सवैया (मात्रा ३१)

शांतिनाथ जिनके पदपंकज, जो भवि पूजैं मनवचकाय। जनमजनमके पातक ताके, तत छिन तजिकैं जाय पलाय॥ मनवांछितसुखपावै सोनर, बांचैभगतिभावअति लाय॥ तातैं वृंदावन' नित बंदै, जातैं शिवपुरराजकराय ॥ १ ॥

इत्याशीर्वाद ॥ पुष्पांजलि क्षिपेत्॥

१६ श्रीकुन्थुनाथ जिनपूजा।

गीताछंद०-वर स्वर्गप्राणतकों विहाय, सुमात

वामा सुत भये। अश्वसेनके पारस जिनेश्वर, चरन जिनके सुर नये ॥ नवहाथ उन्नत तन विराजे, उरग लच्छन पद लसैं। थापूं तुम्हें जिन आय तिष्ठो, करम मेरे सब नसैं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट् ॥

अथाष्टक–छंद नाराच।

क्षीरसोमके समान अंबुसार लाइये। हेमपात्र धारिकैं सु आपको चढाइये। पार्श्वनाथदेव सेव आपकी करूं सदा। दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि०

चंदनादि केशरादि स्वच्छ गंध लीजिये। आप चर्न चर्च मोहतापको हनीजिये। पार्श्व०॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्रायभवातापविनाशनाय चदनंनिर्वपामी०

फेन चंदके समान अक्षतान् लाइकैं, चर्नके समीप सार पुंजको रचाइकैं ॥ पार्श्वनाथदेव०॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामी०

केवडा गुलाब और केतकी चुनायकैं, धार
चर्नके समीप कामको नसाइकैं ॥ पार्श्वनाथ० ॥
ओं ह्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्रायकामबाणविध्वसनाय पुष्पंनिर्वपामी ।

घेवरादि बावरादि मिष्ट सद्यमैं सने, आप
चर्न चर्चते क्षुधादिरोगको हनै ॥ पार्श्वनाथ० ॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्रायक्षुद्रोगविनाशनायनैवेद्यं निर्वपामी ।

लाय रत्नदीपको सनेहपूरके भरूं, वातिका
कपूर बारि मोह ध्वांतकूं हरूं ॥पार्श्वनाथ०॥६॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं नि० ।

धूपगंध लेयकैं सुअग्निसंग जारिये, तास धूप
के सुसंग अष्टकर्म बारिये ॥ पार्श्वनाथ०॥७॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामी ॥७॥

खारिकादि चिरभटादि रत्नथालमैं भरूं, हर्ष
धारिकैं जजूं सुमोक्ष सुक्खको वरूं ॥ पार्श्व०॥८॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामी ॥८

नीरगंध अक्षतान् पुष्प चारु लीजिये, दीप
धूप श्रीफलादि अर्घतैं जजीजिये ॥पार्श्व०॥९॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामी ॥९॥

पंच कल्याणक । छंदचाल ।

शुभप्राणत स्वर्ग बिहाये, वामा माता उर आये।
वैशाखतनी दुतिकारी, हम पूजैं विघ्न निवारी॥

ओं ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगलमंडिताय श्रीपार्श्वजि० अ०

जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष वि-
ख्याता। श्यामा तन अद्भुत राजे, रवि कोटिक
तेज सु लाजे॥२॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथ० अर्घं॥

कलि पौष इकादशि आई, तब बारह भावन
भाई। अपने कर लोंच सु कीना, हम पूजैं चरन
जजीना॥३॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीपार्श्वनाथ० अर्घं

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवलज्ञान उपाई।
तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवनको सुख
दीना॥४॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थीदिने केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथ० अर्घं

सित सातैं सावन आई, शिवनारि वरी जिन-
राई। सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजैं मोक्ष
कल्याना॥५॥

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीपार्श्वनाथ० अर्घं

पारसनाथ जिनेंद्रतने वच, पौनभखी जरतैं सुन पाये। कर्‌यो सरधान लह्‌यो पद आन भयो पद्मावति शेष कहाये॥ नाम प्रताप टरै संताप सु, भव्यनको शिवशरम दिखाये। हैं विश्वसेनके नंद भले, गुणगावत हैं तुमरे हरखाये॥१॥

दोहा—केकी-कंठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ। लक्षण उरग निहारपग, वंदौं पारसनाथ॥

पद्धरी छन्द

रची नगरी छहमास अगार। बने चहुँ गोपुर शोभ अपार॥ सु कोटतनी रचना छवि देत। कँगूरनपै लहकैं वहुकेत॥३॥ बनारसकी रचना जु अपार। करी वहुभांति धनेश तयार। तहां विश्वसेन नरेंद्र उदार। करै सुख वाम सु दे पटनार॥४॥ तज्यो तुम प्रानत नाम विमान भये तिनके वर नंदन आन। तबै सुरइंद नियोगन आय। गिरिंद करी विधि न्हौन सु जाय॥५॥ पिता-घर सौंपि गये निज धाम। कुवेर

करे वसु जाम सु काम ॥ बढै जिन दोज. मयंक समान । रमैं बहु बालक निर्जर आन ॥६॥ भये जब अष्टम वर्ष कुमार । धरे अणुव्रत्त महासुखकार ॥ पिता जब आनकरी अरदास । करौ तुम ब्याह वरै मम आस ॥७॥ करी तब नाहिं रहे जगचंद । किये तुम काम कषाय ज़ु मंद ॥ चढे गजराज कुमारन संग । सु देखत गंगतनी सु तरंग ।८। लख्यो इक रंक करै तप घोर । चहूंदिशि अगनि बलै अति जोर ॥ कहै जिननाथ अरे सुन भ्रात । करै बहु जीवनकी मत घात ॥९॥ भयो तब कोप कहै कित जीव । जले तब नाग दिखाय सजीव ॥ लख्यो यह कारण भावन भाय । नये दिव ब्रह्मरिषीसुर आय ॥ १० ॥ तबहि सुर चारप्रकार नियोग । धरी शिविका निज कंध मनोग ॥ कियो वनमाहि निवास जिनंद । धरे व्रत चारित आनँद कंद ॥ ११ ॥ गहे तहँ अष्टमके उपवास । गये धनदत्त तने जु अवास ॥ दयो पयदान महासुखकार । भयी पनवृष्टि तहाँ

ोहिं बार ॥ १२ ॥ गये तब काननमाहिं दयाल। धस्यो तुम योग सबहिं अघटाल ॥ तबै वह धूम सुकेत अयान । भयो कमठाचरको सुर आन ॥ १३ ॥ करै नभ गौन लखे तुम धीर। जु पूरब वैर विचार गहीर ॥ कियो उपसर्ग भयानक घोर । चली बहु तीक्षण पवन झकोर ॥ १४ ॥ रह्यो दसहूं दिशिमैं तप छाय। लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय ॥ सुरुंडनके विन मुंड दिखाय। पडै जल मूसलधार अथाय ॥१५॥ तबै पदमावति-कंथ धनिंद। चले जुग आय जहां जिनचंद ॥ भग्यो तब रंक सु देखत हाल। लह्यो तब केवल ज्ञान विशाल ॥ १६ ॥ दियो उपदेश महा हितकार। सुभव्यन बोधि समेद पधार ॥ सुवर्णभद्र जहँ कूट प्रसिद्ध। वरी शिव नारि लही वसुरिद्ध ॥ १७ ॥ जजूं तुम चरन दुहूं कर जोर। प्रभू लखिये अब ही मम ओर॥ कहै बखतावर रत्न बनाय। जिनेश हमे भवपार लगाय ॥ १८ ॥ घत्ता—

जय पारस देवं सुरकृत सेवं, वंदत चर्न सुनागपती। करुणाके धारी परउपगारी, शिवसुखकारी कर्महती ॥ १९ ॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अडिल्ल—जो पूजै मनलाय भव्य पारस प्रभु नितही। ताके दुख सब जांय भीत व्यापै नहिं कितही॥ सुख संपति अधिकाय पुत्र मित्रादिक सारे। अनुक्रमसों शिव लहै, रतन इमि कहै पुकारे ॥ २० ॥ इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं)

६२ दीपावली-श्रीवर्द्धमानजिनपूजा।

मत्तगयंद।

श्रीमतवीरहरैभवपीर, भरैसुखसीरअनाकुलताई। केहरि अंक अरीकरदंक, नये हरिपंकति मौलि सु आई॥ मैं तुमको इत थापतुहौं प्रभु, भक्ति समेत हिये हरखाई। हे करुणाधनधारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

(द्यानतरायकृत नंदीश्वराष्टकादिक अनेक रागोंमें बनती है)

क्षीरोदधिसम शुचि नीर. कंचनभृंग भरों ।
प्रभु वेग हरो भवपीर. यातें धार करों ॥
श्रीवीर महा अतिवीर, सन्मतिनायक हो ।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि०

मलयागिरचंदनसार. केसरसंग घसों । प्रभु
भवआतापनिवार. पूजत हिय हुलसो । श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदन निर्व० ।

तंदुलसित शशिसम शुद्ध. लीनो थार भरी । त-
सुपुंजधरों अविरुद्ध, पावोंशिवनगरी । श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपा० ।

सुरतरुके सुमन समेत, सुमन सुमनप्यारे । सो
मनमथभंजनहेत, पूजों पद थारे ॥श्रीवीर०॥४॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० ॥

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी । पद
जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी । श्रीवीर०।

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० ।

तमखंडित मंडितनेह, दीपक जोवत हों ।. तुम
पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हों।। श्रीवीर०
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० ॥

हरिचंदन अगर कपूर, चूर सुगंध करा । तुम
पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ।।श्रीवीर०।।
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपा० ॥

रितुफल कलवर्जित लाय, कंचनथार भरों । शिव-
फलहित हे जिनराय, तुमढिग भेंट धरों ।।श्री०।।
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामी० ॥

जलफल वसु साजि हिमथार, तनमनमोद धरों ।
गुणगाऊं भवदधितार, पूजतपापहरों ।श्रीवीर०
ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामी० ॥

पंचकल्याणक । राग टप्पा ।

मोहि राखो हो सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरा-
यजी, मोहि राखो० ।। गरभ साढ सित छट्ठ
लियो थिति, त्रिशलाउर अघ हरना । सुरसुरपति
तितसेव करी नित, मैं पूजों भवतरना । मोहि०
ओं ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय
अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जनम चैतसित तेरसके दिन, कुंडलपुर कन-वरना। सुरगिर सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भवहरना ॥ मोहिराखो हो० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्मकल्याणप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मँगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना। नृप कुमारघर पारन कीनों, मैं पूजों तुम चरना। मोहिराखो हो० ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

शुक्लदशैं वैशाखदिवस अरि, घात चतुक छयकरना॥ केवललहि भवि भवसर तारे, जजों चरन सुख भरना। मोहि० ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कातिक स्याम अमावस शिवतिय, पावापुरतैं वरना। गनफनिवृंद जजे तित बहुविध, मैं पूजों भयहरना। मोहि० ॥५॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला । छंद हरिगीता २८ मात्रा ।

गनधर अशनिधर, चक्रधर, हरधर, गदाधर वरवदा । अरु चापधर, विद्यासुधर तिरसूलधर सेवहिं सदा ॥ दुखहरन आनँदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं। सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नत,-भालकी जयमाल हैं ॥ १ ॥

छंद घत्तानन्द ।

जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदन, चंदवरं । भवतापनिकंदन, तनकनमंदन, रहित सपंदन नयन धरं ॥ २ ॥

छंद त्रोटक ।

जय केवलभानुकलासदनं । भविकोकविकाशन कंदवनं ॥ जगजीतमहारिपुमोहहरं । रज ज्ञानद गावरचूरकरं ॥१॥ गर्भादिकमंगलमंडित हो । दुखदारिदकोनितखांडित हो ॥ जगमाहिंतुमी मतपंडित हो । तुमहीभवभाव-विहंडितहो ॥२॥ हरिवंशसरोजनकों रविहो । बलवंतमहंततुमी कवि हो ॥ लहि केवलधर्मप्रकाशकियो । अबलौं

सोऽमारगराजति यो ॥३॥ पुनि आपतने गुण
माहिंसही । सुरमग्नरहैंजितनेसबही॥ तिनकी
वनिता गुनगावत हैं । लयमाननिसों मनभावत
हैं ॥४॥ पुनि नाचत रंग उमंग-भरी । तुअ भक्ति
विषै पग एम धरी॥ झननं झननं झननं झननं।
सुरलेत तहां तननं तननं ॥ ५ ॥ घननं
घननं घनघंट वजै । दृमदं दृमदं मिरदंग सजै॥
गगनांगनगर्भगता सुगता । ततता ततता अतता
वितता ॥६॥ धृगतां धृगतां गति बाजत है। सुर-
ताल रसाल जु छाजत हैं॥ सननं सननं सननं
नभमें । इकरूप अनेक जु धारि भ्रमें ॥७॥ कइ
नारिसुवीनवजावति हैं । तुमरो जस उज्जल
गावति हैं ॥ करतालविषै करताल धरैं । सुर-
ताल विशाल जु नाद करैं ॥ ८ ॥ इन आदि
अनेक उछाह भरी । सुरभक्ति करै प्रभुजी
तुमरी ॥ तुमही जगजीवनके पितु हो । तुमही
विनकारनतैं हितु हो ॥ ९ ॥ तुमही सब विघ्न
विनाशन हो । तुमही निज आनँदभासन हो ॥

तुमही चितचिंततदायक हो, जगमाहिं तुमी सब लायक हो ॥ १० ॥ तुमरे पनमंगलमाहिं सही। जिय उत्तमपुन्यलियो सब ही ॥ हमको तुमरी सरनागत है। तुमरे गुनमें मन पागत है ॥११॥ प्रभु मोहिय आप सदा बसिये। जबलों वसुकर्म नहीं नसिये ॥ तबलों तुम ध्यान हिये वरतों। तबलों श्रुतचिंतन चित्तरतो ॥ १२ ॥ तबलों व्रत चारित चाहतु हों। तबलों शुभभाव सुगाहतु हों ॥ तबलों सतसंगति नित्त रहो। तवलों मम संजम चित्त गहो ॥ १३ ॥ जबलों नहिं नाश करों अरिको। शिवनारिवरों समता धरिको ॥ यह द्यो तबलों हमको जिनजी। हम जाचतु हैं इतनी सुनजी ॥ १४ ॥

घत्तानद।

श्रीवीरजिनेशा नमित सुरेशा, नागनरेशा भगति भरा। 'वृंदावन' ध्यावै विघन नशावै वांछित पावै शर्म वरा ॥ १५ ॥

ओं ह्रीं [illegible]जिनेंद्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

श्रीसनमतिके जुगलपद, जो पूजै धरि प्रीति।
वृंदावन सो चतुर नर लहै मुक्ति नवनीत ॥१६॥

इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

६३ निर्वाणक्षेत्र पूजा।

सोरठा—परम पूज्य चौवीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये। सिद्धभूमि निशदीस, मनवचतन पूजा करौं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरतअवतरत संवौषट्। ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः। ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत। वषट्।

गीता छंद।

शुचि छीरदधि सम नीर निरमल, कनकझारीमें भरौं। संसारपारउतारस्वामी, जोरकर विनती करौं॥ संमेदगढ गिरनार चंपा, पावापुरि कैलासकों। पूजों सदा चौवीसजिननिर्वाण भूमिनिवासकों ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्व० स्वाहा ॥१॥

केशर कपूर सुगंध चंदन सलिल शीतल

विस्तरौं। भवतापको संताप मेटो, जोरकर वि-
नती करौं ॥ संमेद० ॥२॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो चंदनं निर्म० ॥ २ ॥

मोतीसमान अखंड तंदुल, अमल आनँद-
धरि तरौं ॥ औगुन हरौ गुन करौ हमको, जोर-
कर विनती करौं ॥ संमेद० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षतान् नि० ॥ ३ ॥

शुभ फूलरास सुवासवासित, खेद सब मनकी
हरौं। दुखधामकामविनाश मेरो, जोरकर
विनती करौं ॥ संमेद० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति० ॥

नेवज अनेकप्रकार जोग, मनोग धरि भय
परिहरौं। यह भूखदूखन टार प्रभुजी, जोरकर
विनती करौं ॥ संमेद० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं नि० ॥ ५ ॥

दीपकप्रकाशउजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं
डरौं। संशयविमोहविभरम तमहर, जोरकर
विनती करौं ॥ संमेद० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्व० ॥ ६ ॥

धूप परमअनूप पावन, भानपावन आचरौं। सब करमपुंज जलाय दीज्यौ, जोरकर विनंती करौं ॥ संमेद० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूप निर्व० ॥ ७ ॥

बहुफलमँगाय चढाय उत्तम, चारगतिसों निरवरौं। निहचै मुकति फल देहु मोकं, जोरकर विनती करौं ॥ संमेद० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा

जल गधं अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं। 'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोरकर विनती करौं ॥ संमेद० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपा० ॥९॥

अथ जयमाला।

सोरठा—श्रीचौबीसजिनेश, गिरिकैलाशादिक नमों। तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतें ॥

चौपाई १६ मात्रा।

नमों ऋषभ कैलासपहारं। नेमिनाथ गिरनार निहारं ॥१॥ वासुपूज्य चंपापुर वंदौं। सनमति पावापुर अभिनंदौं ॥२॥ वंदौं अजितअजितपद-

दाता । बंदौं संभव भवदुखघाता ॥ बंदौं अभि-
नंदन गणनायक । बंदौं सुमति सुमतिके दायक ॥
बंदौं पदममुकति पदमाकर । बंदुं सुपास आश-
पासाहर । बंदौं चंद्रप्रभ प्रभुचंदा । बंदौं सुविधि
सुविधिनिधि कंदा ॥४॥ बंदौं शीतल अघतप-
शीतल । बंदुं श्रियांस श्रियांस महीतल ॥ बंदौं
विमल विमल उपयोगी । बंदुं अनंत अनँत सुख
भोगी ॥५॥ बंदौं धर्म धर्म-विस्तारा । बंदौं शांति
शांतिमनधारा ॥ बंदौं कुंथु कुंथु-रखवालं । बंदौं
अर अरिहर गुणमालं ॥६॥ बंदौं मल्लि काम-
मलचूरन । बंदौं मुनिसुव्रत व्रतपूरन ॥ बंदौं
नमि जिन नमितसुरासुर । बंदौं पास पासभ्रम-
जगहर ॥७॥ बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर । शिखर
सम्मेदमहागिरि भूपर । एकबार बंदै जो कोई ।
ताहि नरकपशुगति नहिं होई ॥ ८ ॥ नरपति-
नृप सुरशक्र कहावै । तिहुंजग भोगभोगिशिव
पावै ॥ विघनविनाशन मंगलकारी । गुणविलास
बंदौं भवतारी ॥ ९ ॥

घत्ता—जो तीरथ जावे पाप मिटावे, ध्यावे गावे भगति करै। ताको जस कहिये संपति लहिये, गिरिके गुण को बुध उचरै ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामी०।

६४। निर्वाणकांड [गाथा]

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो। उज्जंते णेमिजिणो पावाए णिव्बुदो महावीरो ॥१ वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुर वंदिदा धुदकिलेसा। सम्मेदे गिरि सिहरे णिव्वाण० ॥२॥ वरदत्तो य वरंगोसायरदत्तोय तारवरणयरे। आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाण० ॥३॥ णेमिसामि पज्जण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो। बाहत्तरिकोडीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा ॥ ४ ॥ रामसुआ बेण्णि जणा लाडणरिंदाण पंचकोडीओ। पावागिरिवरसिहरे णिव्वाण०॥५॥ पंडुसुआतिण्णिजणा दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ। सत्तुंजयगिरिसिहरे णिव्वाण० ॥ ६ ॥ संते जे बलभद्दा जदुवणरिंदाण अट्ठकोडीओ। गजपंथे गिरि

सिहरे णिव्वाण० ॥७॥ रामहणू सुग्गीओ गवय-
यगवॉक्खो य णीलमहणीलो । णवणवदीको-
डीओ तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे ॥ ८ ॥ णंगाणंग-
कुमारा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया । सुवणा-
गिरिवरसिहरे णिव्वाण० ॥ ९ ॥ दहमुहरायस्स
सुआ कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया । रेवाउहयत-
डग्गे णिव्वाण० ॥१०॥ रेवाणइए तीरे पच्छिम-
भायम्मि सिद्धवरकूडे । दो चक्की दह कप्पे आहुट्ठ
य कोडिणिव्वुदे वंदे ॥ ११ ॥ वडवाणीवरण-
यरे दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे । इंद-
जीदकुंभयणो णिव्वाण० ॥ १२ ॥ पावागिरि-
वरसिहरे सुवण्णभद्दाइमुणिवरा चिउरो ।
चलणाणईतडग्गे णिव्वाण० ॥१३॥ फलहोडी-
वरगामे पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे । गुरु-
दत्ताइमुणिंदा णिव्वाण० ॥१४॥ णायकुमारमु-
णिंदो बालि महाबालि चेव अज्झेया । अट्ठावय-
गिरिसिहरे णिव्वाण० ॥१५॥ अच्चलपुरवरणयरे
ईसाणे भायमेढगिरिसिहरे । आहुट्ठयकोडीओ

णिव्वाण० ॥१६॥ वँसत्थलवणणियरे पच्छिम भायम्मि कुंथुगिरिसिहरे। कुलदेसभूषणमुणी णिव्वाण० ॥१७॥ जसरहरायस्स सुआ पंचस- याइं कलिंगदेसाम्मि। कोडिसिलकोडिमुणी णिव्वाण० ॥१८॥ पासस्स, समवसरणे सहिया वरदत्तमुणिवरा पंच। रिस्सिंदे गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं॥ १९॥

अथ अइसयखेत्तकंडं—अतिशयक्षेत्रकांडं।

पासं तह अहिणंदण णायद्दहि मंगलाउरे वंदे। अस्सारम्मे पट्टणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ॥ १॥ वाहूवलि तह वंदमि पोयणपुरहत्थिणा- पुरे वँदे। सांति कुंथव अरिहो वाणारसिए सुपा- सपासं च॥ २॥ महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वंदामि। जंवुमुणिंदो वंदे णिव्वुइपत्तोवि जंवुवणगहणे॥ ३॥ पंचकल्लाणठाणइं जाणवि संजादमज्झलोयम्मि। मणवयणकायसुद्धी सव्वं सिरसा णमस्सामि॥ ४॥ अग्गलदेवं वंदमि वरणयरे णिवडकुंडली वंदे। पासं सिवपुरि

वंदमि होलागिरिसंखदेवम्मि ॥ ५ ॥ गोमटदेवं वंदमि पंचसयं धणुहदेहउच्चंतं। देवा कुणंति वुट्ठी केसरिकुसुमाण तस्स उवरिम्मि ॥६॥ णिव्वाण-ठाण जाणिवि अइसयठाणाणि अइसए सहिया। संजादमिच्चलोए सव्वे सिरसा णमस्सामि ॥७॥ जो जण पढइ तियालं णिव्वुइकंडंपि भावसुद्धीए। भुंजदि णरसुरसुक्खं पच्छा सो लहइणिव्वाणं ॥

६५। अथ निर्वाणकांड भाषा।

दोहा--वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय। कहूं कांड निर्वाणकी भाषा सुगमबनाय ॥ १ ॥

चौ०--अष्टापद आदीश्वरस्वामि। वासुपूज्य चंपापुरिनामि ॥ नेमिनाथस्वामी गिरनार। बंदौं भावभगतिउरधार ॥२॥ चरम तीर्थंकरचरम शरीर। पावापुरि स्वामी महावीर ॥ शिखरस-मेद जिनेसुर बीस। भावसहित बंदौं निशदीस ॥ ३ ॥ वरदतराय रु इंद मुनिंद। सायरदत्त आदिगुणवृंद ॥ नगरतारवर मुनि उठकोडि। बंदौं भावसहित कर जोडि ॥ ४ ॥ श्रीगिरनार

शिखर विख्यात । कोडि बहत्तर अरु सौ सात
संबु प्रदुम्न कुमर द्वै भाय । अनिरुध आदि नमूं
तसु पाय ॥ ५ ॥ रामचंद्रके सुत द्वै वीर । लाड-
नरिंद आदि गुणधीर ॥ पांचकोडि मुनि मुक्ति
मझार पावागिरि बंदौं निरधार ॥ ६ ॥ पांडव
तीन द्रविडराजान । आठकोडि मुनि मुकति
पयान ॥ श्रीशत्रुंजयगिरिके सीस । भावसहित
बंदौं निशदीस ॥७॥ जे बलभद्र मुकतिमें गये ।
आठकोडि मुनि औरहु भये ॥ श्रीगजपंथ
शिखर सुविशाल । तिनके चरण नमूं तिहुंकाल
॥८॥ राम हणू सुग्रीव सुडील । गवगवाख्य
नील महानील ॥ कोडि निन्याणव मुक्तिपयान ।
तुंगीगिरि बंदौं धरिध्यान ॥ ९ ॥ नंग अनंग
कुमार सुजान । पांचकोडि अरु अर्ध प्रमान ॥
मुक्तिगये सोनागिरिशीश । ते बंदौं त्रिभुवनपति
ईस ॥ १० ॥ रावणके सुत आदिकुमार । मुक्ति
गये रेवातट सार ॥ कोटि पंच अरु लाख पचास
ते बंदौं धरि परम हुलास ॥ ११ ॥ रेवानदी

सिद्धवर कूट। पश्चिम दिशा देह जहँ छूट॥ द्वै चक्री दश कामकुमार। ऊंठकोडि बंदौं भव पार॥ १२॥ बडवानी बडनयर सुचंग। दक्षिण दिशि गिरिचूल उतंग॥ इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण। ते बंदौं भवसायरतर्ण॥ १३॥ सुवरण भद्र आदि मुनिचार। पावागिरिवर-शिखर-मँझार॥ चेलना नदीतीरके पास। मुक्तिगये बंदौं नित तास॥ १४॥ फलहोडी बडगाम अनूप। पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहां। मुक्ति गये बंदौं नित तहां॥ १५॥ बाल महाबाल मुनि दोय। नागकुमार मिले त्रय होय। श्रीअष्टापद मुक्तिमँझार। ते बंदौंनित सुरत सँभार॥१६॥ अचलौपुरकी दिश ईसान। तहां मेढ्रगिरि नाम प्रधान॥ साढे तीन कोडि मुनिराय। तिनके चरण नमूं चितलाय॥ १७॥ वंसस्थल वनके ढिग होय। पश्चिमदिशा कुंथुगिरि सोय॥ कुलभूषण

१। वर्त्तमान एलचपुर। २। साढ़े तीन किरोड़।

दिशिभूषण नाम। तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥१८॥ जसरथराजाके सुत कहे। देश कलिंग पांचसौ लहे ॥ कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान वंदन करूं जोर जुगपान ॥ १९ ॥ समवसरण श्री पार्श्वजिनंद। रेसिंदीगिरि नयनानंद॥ वरदत्तादि पंच ऋषिराज। ते वंदौं नित धरम जिहाज ॥ २० ॥ तीनलोकके तीरथ जहां। नित प्रति वंदन कीजै तहां ॥ मनवचकायसहित सिर नाय। वंदन करहिं भविक गुणगाय ॥ २१ ॥ संवत सतरहसौ इकताल। आश्विन सुदि दशमी सुविशाल। 'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल जय निर्वाणकांड गुणमाल॥२२॥ इति

६६। महावीराष्टक भाषा।

जिन्होंकी प्रज्ञामें, मुकुरसम, चैतन्य जड भी,
स्थिती ध्रौव्योत्पत्ती, युत झलकते साथ सबही।
जगत ज्ञाता ज्ञान प्रकटकरता सूर्यसम जो, महावीरस्वामी दरश हमको दें प्रगट वे ॥ १ ॥
जिन्होंके दो चक्षू पलक अरु लाली रहित हो,

चनोंको दर्शाते, हृदयगत क्रोधातिलयको।
जिन्होंकी शांतात्मा अतिविमलमूर्ती स्फुटमहा,
महावीर०॥२॥ नमंते इंद्रोंके, मुकुटमणिकी कांति
धरता, जिन्होंके चर्णोंका युग, ललित, संतप्त
जनको भवाग्नीका हर्ता, स्मरण करते ही सुजल
है, महावीर० ॥३॥ जिन्होंकी पूजासे, मुदित-
मन हो मेंढक जबै, हुआ स्वर्गी ताही, समय
गुणधारी अतिसुखी। लहैं जो मुक्तीके सुख
भगत तो विस्मय कहा? महावीर० ॥ ४ ॥ तपे
सोने ज्योंभी, रहित वपुसे, ज्ञानगृह हैं, अकेले
नाना भी, नृपनिवर सिद्धार्थ सुत हैं। न जन्मे
भी श्रीमान्, भवरत नहीं अद्भुतगती, महा-
वीर० ॥५॥ जिन्होंकी वाग्गंगा, अमल नयक-
ल्लोल धरती, न्हवाती लोगोंको, सुविमल महा
ज्ञानजलसे। अभी भी सेते हैं, बुधजन महाहंस
जिसको, महावीर० ॥ ६ ॥ त्रिलोकीका जेता
मदनभट जो दुर्जय महा, युवावस्थामें भी, वह
दलिन कीना स्वबलसे। प्रकाशी मुक्तीके, अति-

सुखदाना जिनविभू, महावीर० ॥७॥ महा-
मोहव्याधी, हरण करता वैद्य सहज, विन
इच्छा बंधू, प्रथितजगकल्याण करता। सहाय
भव्योंको सकलजगमें उत्तम गुणी, महावीर
स्वामी दरश हमको दें प्रगट वे ॥ ८ ॥
संस्कृत वीराष्टक रच्यो, भागचंद रुचिवान।
तस भाषा अनुवाद यह, पढ़ि पावें निर्वान॥

६७। अथ सप्तर्षि पूजा।

छप्पय।

प्रथम नाथ श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीश्वर।
तीसर मुनि श्रीनिचय सर्वसुंदर चौथो वर॥
पंचम श्री जयवान विनयलालस षष्ठम भनि।
सप्तम जयमित्राख्य सर्व चारित्रधाम गनि॥
ये सातों चारणऋद्धिधर, करूं तासपदथापना।
मैं पूजूं मनवचनकायकरि, जो सुख चाहूं आपना॥

ओं ह्रीं चारणर्द्धिधरसप्तर्षीश्वर! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् अत्र तिष्ठतः तिष्ठत। ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अष्टक—गीता छंद

शुभतीर्थउद्‌भव जल अनूपम मिष्ट शीतल लायकें ॥ भवतृषा कंदनिकंदकारण, शुद्ध घट भरवायकें ॥ मन्वादिचारणऋद्धिधारक, मुनिनकी पूजा करूं । ता करें पातिक हरें सारे, सकल आनँद विस्तरूं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वस्वरमन्यनिचयसर्वसुन्दरजयवानविनयलालसजयमित्रर्षिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१ ॥

श्रीखंड कदलीनंद केशर, मंद मंद घिसायकें। तसगंध प्रसरित दिगदिगंतर, भरकटोरी लायकें । मन्वादि० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अति धवल अक्षत खंड-वर्जित, मिष्ट राजन भोगके ॥ कलधौत थारा भरत सुंदर चुनित शुभ उपयोगके ॥ मन्वादि० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

बहुवर्णसुवरण सुमन आछे, अमल कमल गुलाबके । केतकी चंपा चारु मरुआ, चुने निजकर चावके ॥ मन्वादि० ॥ ४ ॥

ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

पकवान नानाभांति चातुर, रचित शुद्ध नये नये। सदामिष्टलाडूआदिभरबहु, पुरटके थारा लये॥ मन्वादि० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

कलधौत दीपक जडित नाना, भरित गोघृतसा रसों। अति ज्वलितजगमगज्योतिजाकी, तिमिरनाशनहार सों॥ मन्वादि० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

दिक्चक्र गंधित होत जाकर, धूप दश अंगी कही। सो लाय मनवचकाय-शुद्ध, लगायकर खेऊं सही॥ मन्वादि० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

वर दाख खारक अमिति प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायकें। द्रावडी दाडिम चारु पुंगी, थाल भर भर लायकें॥ मन्वादि० ॥

ओं ह्रीं मन्वादिसप्तर्षिभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जलगंधअक्षतपुष्पचरुवर, दीप धूप सु लावना।

फल ललित आठों द्रव्यमिश्रित, अर्घ कीजे पावना ॥ मन्वादि० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला । छंद त्रिभंगी ।

वंदूं ऋषिराजा, धर्मजहाजा, निजपरकाजा, करत भले । करुणाके धारी, गगनविहारी, दुखअपहारी, भरम दले ॥ काटत जमफंदा, भविजन वृंदा, करत अनंदा चरणनमें । जो पूजें ध्यावें मंगल गावें, फेर न आवें भववनमें ॥ १ ॥

छंद पद्धरी—जय श्रीमनु मुनिराजा महंत । त्रस थावरकी रक्षा करंत ॥ जय मिथ्यातमनाशक पतंग । करुणारसपूरित अंग अंग ॥ २ ॥ जय श्रीम्वरमनु अकलंकरूप । पदसेवकरत नित अमर भूप ॥ जय पंच अक्ष जीते महान । तप तपत देह कंचनसमान ॥ ३ ॥ जय निचय सप्त तत्त्वार्थभास । तप-रमातनों तनमें प्रकाश ॥ जय विषयरोध संबोध भान । परणतिके नाशन अचल ध्यान ॥ ४ ॥ जय जयहिं सर्वसुंदर दयाल ।

लखि इंद्रजालवत जगतजाल ॥ जय, तृष्णा-हारी रमण राम । निज परणतिमें पायो विराम ॥ ५ ॥ जय आनँदघन कल्याणरूप । कल्याण करत सबको अनूप ॥ जय मद नाशन जयवान देव । निरमद विरचित सब करत सेव ॥ ६ ॥ जय जयहिं विनयलालस अमान । सब शत्रु मित्र जानत समान ॥ जय कृशितकाय तपके प्रभाव । छवि छटा उडति आनंददाय ॥ ७ ॥ जयमित्र सकल जगके सुमित्र । अनगिनत अधम कीने पवित्र ॥ जग चंद्रवदन राजीव-नैन । कबहूं विकथा बोलत न बैन ॥ ८ ॥ जय सातों मुनिवर एकसंग । नित गगन-गमन करते अभंग ॥ जय आये मथुरापुरमँझार । तँह मरी रोगको अति प्रचार ॥ ९ ॥ जय जय तिन चरणनिके प्रशाद । सब मरी देवकृत भई बाद ॥ जय लोक करै निर्भय समस्त । हम नमत सदा नित जोड हस्त ॥ १० ॥ जय ग्रीषमऋतु परवत मँझार । नित करत अतापन योगसार ॥ जय

तृषापरीषह करत जेर। कहुं रंच चलत नहिं मनसुमेर ॥ ११ ॥ जय मूलअठाइसगुणनधार। तप उग्र तपत आनंदकार ॥ जय वर्षाऋतुमें वृक्षतीर। तहँ अति शीतल झेलत समीर ।१२। जय शीतकाल चौपटमँझार। कै नदी सरोवर तट विचार ॥ जय निवसत ध्यानारूढ़ होय। रंचक नहिं मटकत रोम कोय ॥ १३ ॥ जय मृतकासन वज्रासनीय। गोदूहन इत्यादिक गनीय ॥ जय आसन नानाभांतिधार। उपसर्ग सहत ममता निवार ॥१४॥ जय जपत तिहारो नाम कोय। लख पुत्रपौत्र कुलवृद्धि होय ॥ जय भरे लक्ष अतिशय भँडार। दारिद्र तनो दुख होय छार ॥ १५ ॥ जय चोर अग्नि डाकिन पिशाच। अरु ईति भीति सब नसत सांच ॥ जय तुम सुमरत सुख लहत लोक। सुर असुर नवत पद देत धोक ॥ १६ ॥

छंद रोला—ये सातों मुनिराज, महातप लछमी धारी। परम पूज्य पद धरें, सकल जगके हित-

धारी। जो मन वचतन शुद्ध होय सेवै औ ध्यावै। सो जैन मनरँगलाल अष्टऋद्धिनकों पावै ॥१६॥

दोहा—नमन करत चरनन परत. अहो गरीब निवाज। पंच परावर्तननितैं, निरवारो ऋषिराज ॥ १७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

६८। अथ पंचमेरुपूजा।

पीता छंद।

तीर्थंकरोंके न्हवनजलतैं, भये तीरथ शर्मदा। तातैं प्रदच्छन देत सुरगन, पंचमेरनकी सदा ॥ दो जलधि ढाईदीपमें सब, गनत मूल विराजही। पूजों असीजिनधामप्रतिमा, होहि सुख दुख भाजही ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु संबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्रावतर अवतर संवौषट्। ॐ ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ॐ ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

चौपाई आंचलीबद्ध (१५ मात्रा)

शीतलमिष्टसुवास मिलाय, जलसों पूजों श्रीजिन



सुकुमाल मुनि का जीव ब्राह्मण के पूर्व भव में भौजाई को लात मारते हुए।

राय। महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पांचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाको करों प्र-
नाम। महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो जल नि० ॥१॥
जलकेशरकरपूर मिलाय, गंधसों पूजों श्री-
जिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परमसुख
होय॥ पांचों० ॥ २॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो चंदनं नि० ॥२॥
अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं
जिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परम सुख
होय॥ पांचों० ॥ ३॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्योऽक्षतान् नि० ॥
बरन अनेक रहे महकाय, फूलनसौं पूजौं
जिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परम सुख
होय॥ पांचों० ॥ ४॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो पुष्पं नि० ॥४॥
मनवांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजों
श्री जिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परम
सुख होय॥ पांचों० ॥ ५॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो नैवेद्यं नि० ॥५॥

तुमहर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसों पूजों श्री जिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पांचों०॥ ६॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो दीपं नि० ॥६॥

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजों श्रीजिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पांचों०॥ ७॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो धूप नि० ॥७॥

सुरस सुवर्ण सुगंध सुहाय, फलसों पूजों श्री जिनराय। महा सुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥ पांचों०॥ ८॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो फल नि० ॥८॥

आठ दरबमय अरघ बनाय, द्यानत पूजों श्री जिनराय। महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥ पांचों०॥ ९॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति।

अथ जयमाला। सोरठा।

सुदर्शन स्वामि, विजय अचल मंदर कहा।

विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जगमें प्रगट ॥१॥

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै। चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवच तन वंदना हमारी ॥ २ ॥ ऊपर पांचशतकपर सोहै, नंदनवन देखत मन मोहै ॥ चैत्यालय० ।३। साढे बासठ सहस उंचाई, वन सुमनस सोभै अधिकाई ॥ चै० ॥४॥ ऊंचा योजन सहस छतीसं, पांडुकवन सोहै गिरिसीसं । चै०॥५॥ चारों मेरु समान बखानै, भूपर भद्रसाल चहुं जानै। चैत्यालय सोलह सुखकारी, मदवचतन वंदना हमारी ॥ ६ ॥ ऊंचे पांच शतकपर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे। चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥ ७॥ साढे पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा ॥ चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥८॥ उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये। चैत्यालय सोलह सुखकारी मनवचतन वंदना हमारी ॥९॥ सुरनर चारन

वदनं आवें, सो शोभा हम किह मुख गावें।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥ १० ॥

पंचमेरुकी आरती, पढ़ै सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय ॥

ओं ह्रीं पंचमेरु संबंधि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिंबेभ्योऽर्घ्यं ॥

(अर्घके बाद विसर्जन करना चाहिये)

६६। अथ नंदीश्वर पूजा संस्कृत।

स्थानासनार्घ्यप्रतिपत्तियोग्यं, सद्भावसन्मानजलादिभिश्च। लक्ष्मीसुतागमनवीर्यसुदर्भगर्भैः संस्थापयामि भुवनाधिपतिं जिनेंद्रं ॥

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

तीर्थोदकैर्मणिसुवर्णघटोपनीतैः, पीठे पवित्रवपुषि प्रविकल्पितार्थैः। नदीश्वरद्वीपजिनालयार्चाः समर्चये चाष्टदिनानि भक्त्या ॥

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदिग्भागे एक अंजनगिरि-चतुर्दधिमुख-रतिकरेति त्रयोदशजिनालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिग्भागे त्रयोदशजिनालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा। ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिग्भागे त्रयोदशजिनालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा। ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिग्भागे त्रयोदशजिनालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीखंडकर्पूरसुकुंकुमाद्यैर्गंधैः सुगंधीकृतदिग्विभागैः। नंदीश्वरद्वीपजिनालयार्चाः समर्चये चाष्टदिनानि० ॥चंदनं॥ साल्यक्षतैरक्षतदीर्घगात्रैः सुनिर्मलैश्चंद्रकरावदातैः। नंदीश्वरद्वीपजिनालयार्चाः समर्चये चाष्टदिनानि० ॥ अक्षतान् ॥ अंभोजनीलोत्पलपारिजातैः कदंबकुंदादितरुप्रसूतैः। नंदीश्वरद्वीपजिनालयार्चाः समर्चये चाष्टदिनानि० ॥ पुष्पं ॥ नैवेद्यकैः कांचनपात्रसंस्थैर्न्यस्तैरुदस्तैर्हरिनासुहस्तैः। नंदीश्वरद्वीपजिनालयार्चाः० ॥ नैवेद्यं ॥ दीपोत्करैर्ध्वस्ततमोवितानैरुद्योतिताशेषपदार्थजातैः॥ नंदीश्वर द्वीपजिनालयार्चाः० ॥ दीपं ॥ कर्पूरकृष्णागरुचंदनाद्यैर्धूपैर्विचित्रैर्वरगंधयुक्तैः॥ नंदी० ॥ धूपं ॥ लवंगनारिंगकपित्थपूगश्रीमोचचोचादिफलैः पवित्रैः। नंदी० ॥ फलं ॥ श्रीचंदना-

ड्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांजलिना सुभ-
क्त्या । यजे त्रिकालोद्भवजैनविंबान् भक्त्या
स्वकर्मक्षयहेतवेऽहं ॥ अर्घ ॥ श्रीचंदनाढ्याक्ष-
तनोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांजलिना सुभक्त्या ।
सद्भावनाम्नासजिनालयस्थान् जिनेंद्रविंबान्प्रयजे
मनोज्ञान ॥

ओं ह्रीं भावनामरजिनालयेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांज-
लिना सुभक्त्या । जंव्वाख्यद्वीपस्थजिनालय-
स्थान् जिनेंद्रविंबान् प्रयजे मनोज्ञान् ॥

ओं ह्रीं जम्बूद्वीपस्थजिनालयविंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांज-
लिना सुभक्त्या । श्रीधातकीखंडजिनालयस्थान्
जिनेंद्रविंबान् प्रयजे मनोज्ञान् ॥

ओं ह्रीं धातकीखंडद्वीपस्थजिनालयविंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा

श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशि पुष्पांज-
लिना सुभक्त्या । श्रीपुष्करद्वीपजिनालयस्थान्
जिनेंद्रविंबान्प्रयजे मनोज्ञान् ॥

ओं ह्रीं पुष्करार्द्धद्वीपस्थजिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति० ॥

श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांज-
लिना सुभक्त्या। सत्कुंडलाद्रिस्थजिनालयस्थान्
जिनेंद्रबिंबान्प्रयजे मनोज्ञान् ॥

ओं ह्रीं कुंडलगिरिद्वीपस्थजिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति० ॥

श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांज-
लिना सुभक्त्या। श्रीमन्नगे वै रुचिके हि संस्थान्
जिनेंद्रबिंबान्प्रयजे मनोज्ञान् ॥

ओं ह्रीं रुचिकगिरिस्थजिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति० ॥

श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांज-
लिना सुभक्त्या। सद्व्यंतराणां निलयेषुसंस्थान्
जिनेंद्रबिंबान्प्रयजे मनोज्ञान् ॥

ओं ह्रीं अष्टप्रकारव्यन्तरदेवाना गृहेषु जिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्व०।

श्रीचंदनाढ्याक्षततोयमिश्रैर्विकाशिपुष्पांज-
लिना सुभक्त्या। चद्रार्कताराग्रतऋक्षज्योति-
ष्काणां यजे वै जिनबिंबवयान् ॥

ओं ह्रीं पचप्रकारज्योतिष्काणा देवाना जिनालयबिंबेभ्योऽर्घं निर्व०।

कल्पेषु कल्पातिगकेषु चैव देवालयस्थान् जिन-

देवबिंबान् । सन्नीरगंधाक्षतमुख्यद्रव्यैर्यजे मनो- वाक्तनुभिर्मनोज्ञान् ॥

ओं ह्रीं कल्पकल्पातीतसुरविमानस्थजिनबिंबेभ्योऽर्घं निर्व० ॥

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकी- गतान् । वंदे भावनव्यंतरद्युतिवरस्वर्गामरावा- सगान् ॥ सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीप- धूपैः फलै–र्द्रव्यैर्नीरमुखैर्नमामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ॥

ओं ह्रीं कृत्याकृत्रिमजिनालयस्थजिनबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति० ।

वर्षेषु वर्षांतरपर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मंद- रेषु । यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानां ॥ अवनितलगतानां कृत्रिमा- कृत्रिमाणां वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानां इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां जिनवरनि- लयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥ जम्बूधातकिपु- ष्करार्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवाश्चंद्राम्भोजशिखं- डिकंठकनकप्रावृड्घनाभाजिनाः । सम्यग्ज्ञान- चरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेंधना । भूतानागत-

वर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥ श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे। वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचके कुंडले मानुषांके इष्वाकारेंजनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके, ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥ द्वौ कुंदेंदुतुषारहारधवलौ द्वाविंद्रनीलप्रभौ द्वौ बंधूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ । शेषाः षोडश जन्ममृत्युरहिताः संतप्तहेमप्रभास्ते संज्ञानदिवाकरा सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः । नोकोडिसया पणवीसा तेपन्नलक्खाण सहससत्ताईसा । नौसेते पडियाला जिणपडियाला जिणपडिमाकिट्टिमा वंदे ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा

अतीतचतुर्विंशतितीर्थंकरनामानि ।

निर्वाणसागरराभिख्यो माधुर्यो विमलप्रभः ।
शुद्धवाक् श्रीधरो धीरो दत्तनाथोऽमलप्रभुः ॥१॥
उद्धराह्वोग्निनाथश्च संयमः शिवनायकः । पुष्पांजलिर्जगत्पूज्यस्तथा शिवगणाधिपः ॥ २ ॥

उत्साहो ज्ञानमता च महनीयो जिनोत्तमः।
विमलेश्वरनामान्यो यथार्थश्च यशोधरः ॥ ३ ॥
कर्मसंज्ञोऽपरो ज्ञान-मतिः शुद्धमतिस्तथा। श्री-
भद्रपदकांतश्चातीता एते जिनाधिपाः ॥ ४ ॥
नमस्कृतसुराधीशैर्महीपतिभिरर्चिताः। वंदिता
धरणेंद्राद्यैः संतु नः सिद्धिहेतवे ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं अतीतचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरनामानि।

ऋषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनंदनः।
सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥१॥
चन्द्राभः पुष्पदंतश्च शीतलो भगवान्मुनिः।
श्रेयांसो वासुपूज्यश्च विमलो विमल द्युतिः॥२॥
अनन्तो धर्मनामा च शांतिकुंथौ जिनोत्तमौ।
अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥ ३॥
हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः। ध्वस्तो-
पसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेंद्रपूजितः ॥४॥ कर्मा-
तकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसंभवः। एते सुरा-
सुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥ ५ ॥ पूजिता

भरताद्यैश्च भूपेंद्रैर्भूरिभूतिभिः । चतुर्विधस्य संघस्य शांतिं कुर्वंतु शाश्वतीं ॥६॥

ओं ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतिजिनेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अनागततीर्थंकरनामानि ।

तीर्थकृच्च महापद्मः सूरदेवो जिनाधिपः । सुपार्श्वनामधेयोऽन्योयथार्थश्च स्वयंप्रभुः ॥१॥ सर्वात्मभूतइत्यन्यो देवदेवप्रभोदयः । उदयः प्रश्नकीर्तिश्चजयकीर्तिश्च सुव्रतः ॥ अरश्च पुण्यमूर्तिश्च निष्कषायो जिनेश्वरः । विमलो निर्मलाभिख्यश्चित्रगुप्तो वरः स्मृतः ॥३॥ समाधिगुप्तनामान्यो स्वयंभूरनिवर्तकः । जयो विमलसंज्ञश्च दिव्यपाद इतीरितः ॥४॥ चरमोऽनंतवीर्योऽमीवीर्यधैर्यादिसद्गुणाः । चतुर्विंशतिसंख्याता भाविष्यत्तीर्थकारिणः ॥५॥

ओं ह्रीं अनागतचतुर्विंशतिजिनेभ्योर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

कंपिल्लाणयरीमंडणस्स विमलस्स विमलणाणस्स । आरत्तिय वरसमये णच्चंति अमररमणीओ ॥

छंद—अमररमणीउ णच्चंति जिणमंदिरं । विविहवरतालतूरहिं सुचंगमपुरं ॥ जडियबहुरय-

गच्चामीयरं पत्तयं । जोइयं सुंदरं जिणघ आर
नियं ॥१॥ रुणझडंकारणेवरघचलणुट्ठिया । मो
तियादाम वच्छच्छले संठिया ॥ गीय गायंति
णच्चंति जिणमंदिरं । जोइयं सुंदरं ॥ ३ ॥ कंस-
भरिकुसुमपय मरमढोलतिया । वयण छणइंद
समकंतवियसतिया कमलदलणयणाजिणवयण
पेक्खतिया । जोइयं सुंदरं० ॥४॥ इंदधारिणिंदज
क्खंदवोहंतिया । मिलिव सुर असुर घणरासि
खेलंतिया । के वि सियचमर जिणबिंब ढोलं-
तिया । जोइय० ।

गाथा—णंदीसुरम्मि दीवे बावण्णजिणालयेसु पडिमाण। अट्ठाहिवरपव्वे इंदो आरत्तियं कुणइ ॥

छंद--इंद्र आरत्तियं कुणइ जिणमंदिरं, रयण-मणिकिरणकमलेहि वरसुंदरं । गीय गायंति णच्चंति वरणाडियं, तूर वज्जंति णाणाविहप्पाडियं

गाथा-एक्कम्मि य जिणहरे चउचउ सोलहवा-बीओ ।, जोयणलक्खपमाणं अट्ठमणंदीसुरं दीवे ॥ ८ ॥

अट्ठमं दीवणंदीसुरं भासुरं चैत्यचैत्यालये वंदि अमरासुरं। देवदेवीउ जह धम्मसंतोसिया, पंचमं गीय गायंति रसपोसिया॥

गाथा-दिव्वेहिं खीरणीरेहिं गंधइढाइहिं कुसुममालाहिं। सव्वसुरलोयसहिया पुज्जा आरंभए इंदो॥ १०॥

इंदसोहम्मिसग्गावर्ज्जोसयं, आयऊसज्जि ऐरावयं वरगयं। सव्वदव्वेहिं भव्वेहिं पूजाकरा, मिलिव पडिवक्खया तस्स तिहु देसया।

गाथा-कंसालतालतिवली, झल्लरभर भेरिवेणुविण्णाओ। वज्जंति भावसहिया भव्वेहिं णउज्जिया सव्वे॥

छंद-सव्वदव्वेहिं भव्वेहिं करताडियं, सद्दए संझिगणझिगणणिद्धाडयं। गिझिनिझं झिगिनिझं वज्जये झल्लरी, णच्चये इंदइंदायणी सुंदरी। णयणकज्जलसलायामयं दिण्णयं, हेमहीरालयं कुंडलं, कंकणं॥ झंझणं झंकरं तं पिये णेवरं, जिण्णघआरात्तिय जोइयं सुंदरं॥ दिट्ठिणासज्जि

अंगुलियदावंतिया, खिणहिं खिण खिणहिं जिण-
विंव जोइच्चिया ॥ णारिणच्चंति गायंति कोइल-
झुरं, जिणघ० ॥ रुणुझुणंकारणे वरधकरकंकणं
णाइ जंपंति जिणणाहवे वहुगुणं ॥ जुवइ ण-
च्चंति सुमरंति ण उ णियघरं जिणघआरत्तियं
जोइयं सुंदरं ॥ कंठकदलीह मणिहार झुल्लंतऊ,
जिणइ थुइ थुई सो णाय संतुट्टऊ ॥ विविहको-
ऊहलं रयहि णारीधरं, जिणघ आरत्तियं जोइयं
सुंदरं ॥ १७ ॥

घत्ता—आरत्तिय जोवइ कम्मइ धोवइ, सग्गा-
वग्ग हलहु लहइ । जं जं मण भावइ तं सुह
पावइ, दीणु वि कासुण भासुणइ ॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपंचाशज्जिना-
लयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये ।
तावंति सततं भक्त्या, त्रि परीत्य नमाम्यहं ॥

(इत्याशीर्वादः)

सरब पर्वमें बडो अठाई परव है। नंदीश्वर सुर जांहिं लेय वसु दरव है॥ हमें सकति सो नाहिं इहां करि थापना। पूजें जिनग्रह प्रतिमा है हित आपना ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीनंदीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर। सवौषट्। ओं ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे द्विपचास ज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठ ठ.। ओं ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

कंचनमणिमय भृंगार, तीरथ नीरभरा।
तिहुं धार दयी निरवार, जामन मरन जरा॥
नंदीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पुंज करों।
वसुदिनप्रति मैं अभिराम, आनँदभावधरों॥१॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपेपूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपंचासज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति०

भवतपहर शीतल वाच, सो चंदन नाहीं। प्रभु यह गुन कीजे सांच, आयो तुम ठांहीं।नंदी०। चंदनं०॥२॥ उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे

सोहै। सब जीते अक्षसमाज, तुमसम अरु
को है ॥नंदी०॥ अक्षतान् ॥३॥ तुम काम विनाश
शक देव, ध्याऊं फूलनसों। लहुं शीललच्छमी
एव, छूटों सूलनसों॥ नंदी०॥पुष्पं०॥४॥ नेवज
इंद्रियबलकार. सो तुमने चूरा। चरु तुम ढिग
सोहै सार. अचरज है पूरा॥नंदी०॥ नैवेद्यं ।५।
दीपककी ज्योति प्रकाश. तुम तन मांहिं लसै।
टूटै करमनकी राशि. ज्ञानकणी दरसै॥ नंदी०
॥दीपं॥ ६ ॥ कृष्णागरुधूपसुवास. दशदिशि
नारि वरै। अति हरषभाव परकाश. मानों नृत्य
करै॥ नंदी० ॥ धूपं॥ ७ ॥ बहुविधिफल ले
तिहुंकाल. आनँद राचत हैं॥ तुम शिवफल देहु
दयाल. तुहि हम जाचत हैं॥ नंदी०॥ फलं॥ ॥८।
यह अरघ कियो निजहेत. तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिवखेत. भूमि समरपतु हों
॥ नंदी० अर्घं ॥९॥

अथ जयमाला।

दोहा—कातिक फागुन साढके. अंत आठदिन

माहिं। नंदीस्वर सुरजात हैं.हम पूजें इह ठाहिं।
एकसौ त्रेसठ कोडि जोजनमहा। लाख चौरासि
एक एक दिशमें लहा॥ अट्ठमों दीप नंदीश्वरं
भास्वरं। भौन बावन प्रतिमा नमों सुखकरं।२।
चार दिशि चार अंजनागिरि राजहीं। सहस
चौरासिया एकदिश छाजहीं॥ ढोलसम गोल
ऊपर तले सुंदरं॥ भौन०॥३॥ एक इक चार
दिशि चार शुभ बावरी। एक इक लाख जोजन
अमल जलभरी॥ चहुंदिशि चार वन लाख
जोजन वरं। भौन०॥४॥ सोल वापीनमधि
सोल गिरि दधिमुखं। सहस दश महा जोजन
लखतही सुखं। बावरीकौन दोमाहि दो रति
करं। भौन०॥५॥ शैल बत्तीस इक सहस
जोजन कहे। चार सोले मिलें सर्व बावन लहे॥
एक इक सीसपर एक जिनमंदिरं भौन०॥६॥
बिंब अठ एकसौ रतनमयी सोहही। देवदेवी
सरव नयनमनमोहही॥ पांचसै धनुष तन
पद्म-आसन परं। भौन०॥७॥ लाल नख मुख

नयन स्याम अरु स्वेत हैं। स्यामरंग भौंह सिर केश छबिदेत हैं॥ वचन बोलत मनों हँसत कालुषहरं। भौन०॥ ८॥ कोटि शशि-भान-द्युति तेज छिप जात है। महा वैराग परिणाम ठहरात है॥ बयन नहिं कहैं लखि होत सम्यक धरं॥ भौन०॥ ९॥

सो०--नंदीश्वर जिनधाम.प्रतिमा महिमाको कहै। द्यानत लीनो नाम.यही भगति शिवसुखकरै॥

ओं ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्योपूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा। इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिं।

१०१। षोडशकारणपूजा संस्कृत।

ऐंद्रं पदं प्राप्य परं प्रमोदं धन्यात्मतामात्मनि मन्यमानः। दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या महाम्यहं षोडशकारणानि॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि। अत्रावतरत अवतरत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट्।

सुवर्ण भृंगारविनिर्गताभिः पानीयधाराभिः

धाभिरुच्चैः। दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या महाम्यहं० ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि-विनयसम्पन्नता-शीलव्रतेष्वनतीचारा-भीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तितस्त्यागतप--साधुसमाधि—वैयावृत्य-करण-अर्हदाचार्यबहुश्रुतभक्ति--प्रवचनभक्ति—आवश्यकापरिहाणि-मार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्येति--तीर्थङ्करत्वकारणेभ्यो जन्मजरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति० ॥

श्रीखंडपिंडोद्भवचंदनेन, कर्पूरपूरैः सुरभीकृतेन दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या० ॥ चंदनं० ॥

स्थूलैरखंडैरमलैः सुगंधैः शाल्यक्षतैः सर्वजगन्नमस्यैः। दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या०। अक्षतं

गुंजद्द्विरेफैः शतपत्रजातीसत्केतकीचंपकमुख्यपुष्पैः। दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या०।। पुष्पं॥

नवीनपक्वान्नविशेषसारैर्नानाप्रकारैश्चरुभिर्वरिष्ठैः दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या० ॥ नैवेद्यं ॥

तेजोमयोल्लासशिखैः प्रदीपैः दीपप्रभैर्ध्वस्ततमोवितानैः। दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या०। दीपं

कर्पूरकृष्णागरुचूर्णरूपैर्धूपैर्हुताशाहुतादिव्यगंधैः दृक्शुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्या० ॥ धूपं ॥

घनालिकेराक्रमुकाम्रबीजपूरादिभिः सारफलैः रसालैः। द्रव्यशुद्धिमुख्यानि जिनेंद्रलक्ष्म्याः॥ फलं॥ पानीयचंदनरसाक्षतपुष्पभोज्यसद्दीपधूपफलकल्पितमर्घपात्रं। आर्हत्यहेत्वमलषोडशकारणानां पूजाविधौ विमलमंगलमातनोतु॥ अर्घं॥

अथ प्रत्येकार्घं।

यदा यदोपवासाः स्युराकर्ण्यंते तदा तदा। मोक्षसौख्यस्य कर्तॄणि कारणान्यपि षोडश॥

इति पठित्वा यंत्रोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् यंत्रके ऊपर पुष्प क्षेपै

असत्यसहिता हिंसा मिथ्यात्वं च न दृश्यते। अष्टांगं यत्र संयुक्तं दर्शनं तद्विशुद्धये॥ १॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

दर्शनज्ञानचारित्रतपसां यत्र गौरवं। मनोवाक्कायसंशुद्ध्या साख्याता विनयस्थितिः॥२॥

ओं ह्रीं विनयसंपन्नतायै अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

अनेकशीलसंपूर्णं व्रतपंचकसंयुतं। पंचविंशतिक्रिया यत्र तच्छीलव्रतमुच्यते॥ ३॥

ओं ह्रीं निरतिचारशीलव्रताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

काले पाठस्तवो ध्यानं शास्त्रे चिंता गुरौ नुतिः। यत्रोपदेशना लोके शास्त्रज्ञानोपयोगता॥४॥

ओं ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

पुत्रमित्रकलत्रेभ्यः संसारविषयार्थतः। विरक्तिर्जायते यत्र स संवेगो बुधैः स्मृतः॥५॥

ओं ह्रीं संवेगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥

जघन्यमध्यमोत्कृष्टपात्रेभ्यो दीयते भृशं। शक्त्या चतुर्विधं दानं सारव्याता दानसंस्थितिः॥

ओं ह्रीं शक्तितस्त्यागायार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ६॥

तपो द्वादशभेदं हि क्रियते मोक्षलिप्सया। शक्तितो भक्तितो यत्र भवेत् सा तपसः स्थितिः॥

ओं ह्रीं शक्तितस्तपसेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ७॥

आर्या--मरणोपसर्गरोगादिष्टवियोगादनिष्टसंयोगात्। न भयं यत्र प्रविशति, साधुसमाधिः स विज्ञेयः॥ ८॥

ओं ह्रीं साधुसमाधयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥

अनुष्टुप्--कुष्टोदरव्यथाशूलैर्वातपित्तशिरोर्तिभिः। काशस्वासज्वरारोगैः पीडिता ये मुनीश्वराः॥ तेषां भैषज्यमाहारं शुश्रूषापथ्यमादरात्।

यत्रैतानि प्रवर्तंते वैयावृत्यं तदुच्यते ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं वैयावृत्यकरणायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

मनसा कर्मणा वाचा जिननामाक्षरद्वयं । स-
दैव स्मर्यते यत्र सार्हद्भक्तिः प्रकीर्तिता ॥ १० ॥

ओं ह्रीं अर्हद्भक्त्यैर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

निर्गंथमुक्तितो भुक्तिस्तस्य द्वारावलोकनं । त-
द्भोज्यालाभतो वस्तुरसत्यागोपवासता ॥ तत्पा-
दवंदनापूजा प्रणामो विनयो नतिः । एतानि
यत्र जायंते गुरुभक्तिर्मता च सा ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं आचार्यभक्त्यैर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ११ ॥

भवस्मृतिरनेकांतलोकालोकप्रकाशिका । प्रोक्ता
यत्रार्हता वाणी वर्ण्यते सा बहुश्रुतिः ॥१२॥

ओं ह्रीं बहुश्रुतभक्त्यैर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १२ ॥

षट्द्रव्यपंचकायत्वं सप्ततत्वं नवार्थता । कर्मप्र-
कृतिविच्छेदो यत्र प्रोक्तः स आगमः ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं प्रवचनभक्त्येऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १३ ॥

प्रतिक्रमस्तनूत्सर्गः समता वंदना स्तुतिः । स्वा-
ध्यायः पठ्यते यत्र तदावश्यकमुच्यते ॥१४॥

ओं ह्रीं आवश्यकापरिहाणयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १४ ॥

जिनस्नानं श्रुताख्यानं गीतवाद्यं च नर्तनं।
यत्र प्रवर्तते पूजा सा सन्मार्गप्रभावना ॥१५॥

ओं ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १५ ॥

चारित्रगुणयुक्तानां मुनीनां शीलधारिणां।
गौरवं क्रियते यत्र तद्वात्सल्यं च कथ्यते ॥१६॥

ओं ह्रीं प्रवचनवात्सल्यत्वायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १६ ॥

अथ जयमाला।

भवभवहि निवारण सोलहकारण, पयडमि गुण-गणसायरहं। पणविवितित्थंकर असुहखयंकर केवलणाण दिवायरहं ॥१॥

पद्धरिछंद—दिढ धरहु परम दंसण विसुद्धि, मणवयणकायविरइयत्तिसुद्धि। मा छंडहु विणउ चउ पयार, जो मुत्तिवरांगण हियहि हार ॥२॥ अणुदिणु परिपालउ सीलभेउ, जो हुत्ति हरइ संसारहेउ। णाणोपजोग जो काल गमइ, तसु तणिय किट्टि भुवणयहिं भमइ ॥ संचेउ चाउ जे अणुसरंति, वेएण भवण्णउ ते तरंति। जे चउ-विह दाण सुपत्त देय, ते भोहभूमि सुह सत्त

लेय ॥४॥ जे तव तवंति वारहपयार, तैं सग्ग-सुरहिंदहविहवसार। जो साहु समाधि धरंति थक्कु, सो हवइ ण कालमुहंधुवक्कु ॥५॥ जो जाणइ वैयावच्चकरण, सो होइ सव्व दोसाण हरण। जो चिंतइ मण अरिहंत देव, तसु वि-सय अणंताक्खवण खेव ॥ ६ ॥ पव्वयणसरिस जे गुरु णमंति, चउगइसंसार ण ते भमंति। बहु सुयह भत्ति जे घर करंति, अप्पउ रयण-त्तय ते धरंति ॥७॥ जे छह अवासइ चित्तदेइ, सो सिद्धपंचासहरत्थ लेइ। जे मग्गपहावण आ-इरंति, ते अहमिंदुदंसण संभवंति ॥८॥ जे पव-यणकज्जसमत्थ हंति, तहँ कम्म जिणंदह खवय भांति। जे वच्छलच्छ कारण वहंति, ते तित्थय-रत्तउ पुह लहंति ॥९॥

घत्ता--जे सोलह कारण कम्मवियारण जे धरंति वयसीलधरा। ते दिवि अमरेसुर पहुमि परे-सुर सिद्धवरंगण हियहि हरा॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्घं नि०

एताः षोडश भावना यतिवराः कुर्वंतिये निर्मलास्ते वै तीर्थंकरस्य नामपदवीमायुर्लभंते कुलं। वित्तं कांचनपर्वतेषु विधिना स्नानार्चनं देवतां, राज्यं सौख्य मनेकधा वरतपो मोक्षं च सौख्यास्पदं॥ (इत्याशीर्वादः)

१०२। अथ सोलहकारण पूजा

अडिल्ल।

सोलहकारण भाय तीर्थंकर जे भये। हरषे इंद्र अपार मेरुपै ले गये॥पूजाकरिनिजधन्यलख्यौ बहु चावसौं। हमहू षोडशकारन भावैं भावसौं॥१॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्। ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि! अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः। ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत। वषट्।

चौपाई।

कंचनझारी निरमल नीर, पूजौं जिनवर गुन-गंभीर। परमगुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दरश विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थ-

करपदद्दाय। परमगुरु हो, जय जय नाथ परम
गुरु हो ॥ १ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योजन्ममृत्युविनाशनाय

चंदन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्रीजिनवरके
पाय। परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो॥
दरश० ॥२॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योसंसारतापविनाशनाय चं०

तंदुल धवल सुगंध अनूप। पूजौं जिनवर
तिहुं जगभूप। परमगुरु हो, जय जय नाथ
परमगुरु हो ॥ दरशविशुद्धि० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि०

फूल सुगंध मधुपगुंजार। पूजौं जिनवर जग
आधार। परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु
हो ॥ दरशवि० ॥४॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पु०

सदनेवज बहुविध पकवान। पूजौं श्रीजिन-
वर गुणखान। परमगुरु हो, जय जय नाथ पर-
मगुरु हो ॥ दरशवि० ॥५॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य क्षुधारोगविनाशनाय ने०

दीपकजोति तिमिर छयकार, पूजूं श्रीजिन केवलधार । परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरशवि० ॥६॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दी०

अगर कपूर गंध शुभखये । श्रीजिनवर आगैं महकेय । परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥७॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि०

श्रीफल आदि बहुत फलसार, पूजौं जिन वांछितदातार । परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरशवि० ॥८॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०

जल फल आठों दरब चढाय । 'द्यानत' वरत करों मनलाय । परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि०

अथ जयमाला ।

दोहा—षोडशकारण गुण करै, हरै चतुरगतिवास ।

पाप पुण्य सब नाशकें, ज्ञानभानपरकास ॥१॥

चौपाई १६ मात्रा।

दरशविशुद्धि धरै जो कोई ताको आवागमन न होई ॥ विनय महा धारै जो प्रानी। शिववनिताकी सखी बखानी ।२। शीलसदादिढ जो नर पालैं। सो अवरनकी आपद टालैं ॥ ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं। ताके मोहमहातम नाहीं ॥३॥ जो संवेगभाव विस्तारै। सुरगमुकतिपद आप निहारै ॥ दान देय मन हरष विशेखै। इह भव जस परभव सुख देखै ॥४॥ जो तप तपै खपै अभिलाषा। चूरै करमशिखर गुरु भाषा ॥ साधु समाधि सदा मनलावै। तिहुंजगभोग भोगि शिव जावै ॥५॥ निशिदिन वैयावृत्य करैया। सो निहचै भवनीर तिरैया ॥ जो अरंहतभगति मन आनै। सो जन विषय कषाय न जानै ।६। जो आचारज भगति करै है। सो निरमल आचार धरै है ॥ बहुश्रुत्तवंतभगति जो करई। सोनर संपूरन श्रुत धरई ॥ ७ ॥ प्रवचन भगति करै जो

ज्ञाता। लहै ज्ञान परमानंददाता ॥ षट्‌आवश्यक नित जो साधै। सो ही रत्नत्रय आराधै॥ ८ ॥ धरमप्रभाव करै जे ज्ञानी। तिन शिवमारग रीति पिछानी॥ वत्सल अंग सदा जो ध्यावै। सो तीर्थंकर पदवी पावै ॥ ९ ॥ दोहा—

एही सोलहभावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव इन्द्र नरवंद्यपद, द्यानत, शिवपद होय ।१०।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यः पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा

(इत्याशीर्वादः)

१०३ अथ दशलक्षणपूजा संस्कृत ।

उत्तमादिक्षमाद्यंतब्रह्मचर्यसुलक्षणं । स्थापयेद्दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलाक्षणिकधर्म अत्रावतर अवतर । संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

प्रालेयशैलशुचिनिर्गतचारुतोयैः शीतैः सुगंधिसहितैर्मुनिचित्ततुल्यैः । संपूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं, संसारतापहननाय क्षमादियुक्तं ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा-मार्दवा-र्जव-सत्य-शौच-संयम-तपस्त्यागा-किंचन्य ब्रह्मचर्य धर्मेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपा० ॥

श्रीचंदनैर्बहलकुंकुमचंद्रमिश्रैःसंवासवासितदि-
शामुखदिव्यसंस्थैः। संपूजयामि दशलक्षणधर्म-
मेकं संसार० ॥ चंदनं ॥

० शालीयशुद्धसरलामलपुण्यपुंजै रम्यैरखंडश-
शिलक्षणरूपतुल्यैः संपूजयामि दशलक्षणधर्म-
मेकं संसार० ॥ अक्षतं ॥

मंदारकुंदवकुलोत्पलपारिजातैः पुष्पैः सुगंध-
सुरभीकृतमूर्धलोकैः। संपूजयामि दशलक्षण-
धर्ममेकं संसार० ॥ पुष्पं ॥

अत्युत्तमैः रसरसादिकसद्यजातैर्नैवेद्यकैश्च प-
रितोषित भव्यलोकैः। संपूजयामि दशलक्षण-
धर्ममेकं संसार० ॥ नैवेद्यं ॥

दीपैर्विनाशिततमोत्कररुद्धताशैः कर्पूरवर्ति-
ज्वलितोज्वलभाजनस्थैः। संपूजयामिदशलक्ष-
णधर्ममेकं संसार० ॥ दीपं ॥

कृष्णागरुप्रभृतिसर्वसुगंधद्रव्यैर्धूपैस्तिरोहित-
दिशामुखदिव्यधूम्रैः। संपूजयामि दशलक्षण-
धर्ममेकं संसार० ॥ धूपं ॥

पूगीलवंगकदलीफलनालिकेरैर्हृद्भाणनेत्र-
सुखदैः शिवदानदक्षैः संपूजयामि दशलक्षण-
धर्ममेकं संसार० ॥ फलं ॥

पानीयस्वच्छहरिचंदनपुष्पसारैः शालीयतं-
दुलनिवेद्यसुचन्द्रदीपैः। धूपैः फलावलिविनि-
र्मितपुष्पगंधैः पुष्पांजलिभिरपि धर्ममहं समर्चे॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा-मार्दवा-र्जव—सत्य-शौच-संयम-तपस्त्यागाकिं-
चन्य-ब्रह्मचर्यधर्मेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

अथ अंगपूजा।

येनकेनापि दुष्टेन पीडितेनापि कुत्रचित्। क्ष-
मा त्याज्या न भव्येन स्वर्गमोक्षाभिलाषिणा॥

ओं ह्रीं परमब्रह्मणे उत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।
चंदनं निर्व०। अक्षतान् निर्व०। पुष्पं निर्व०। चरुं निर्व०। दीपं
निर्व०। धूपं निर्व०। फलं निर्व। अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

उत्तमखममद्दउ अज्जउ सच्चउ पुणु सउच्च सं-
जम सुतऊ। चाउवि आकिंचणु भवभयवंचणु
बंभचेरु धम्मजु अखऊ॥ १ ॥ उत्तमखम तिलो-
यहसारी उत्तमखम जम्मोवहितारी। उत्तमखम
रयणत्तयधारी, उत्तमखम दुग्गइदुहहारी॥ २ ॥

उत्तमखम गुणगणसहयारी, उत्तमखम मुणिविं-
दपयारी । उत्तमखम बुहयण चिंतामणि, उत्तम-
खम संपज्जइ थिरमणि ॥ ३ ॥ उत्तमखम मह-
णिज्ज सयलजणु, उत्तमखम मिच्छत्त विहंडणु ।
जह असमत्थह दोसु खमिज्जइ, जहिं असमत्थइ
ण वि रूसिज्जइ ॥ जहिं आकोसणवयण सह-
ज्जइ, जहि परदोस ण जण भासिज्जइ । जह
चेयणगुण चित्त धारिज्जइ, तहिं उत्तमखम जिणे
कहिज्जइ ॥ ५ ॥

घत्ता—इय उत्तमखमजूया सुरखगणूया केवल-
णाण लह विथिरू । हुय सिद्धणिरंजण भवदुह-
भंजणु अगणियरिसि पुंगमजि चिरू ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मा गायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

मृदुत्वं सर्वभूतेषु कार्यं जीवेन सर्वदा । का-
ठिन्यं त्यज्यते नित्यं धर्मबुद्धिं विजानता ॥२॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमार्दवधर्मा गाय जलाद्यर्घं निर्वपामीति० ॥

मद्दव भवमद्दणु माणणिकंदणु दयधम्म जु
मूल हु विमलु । सव्वह हिययारउ गुनजनसा-

रउ तिस उत्तऊ संजम सयलु ॥ मद्दउ माणक-
साय विहंडणु, मद्दउ पंचेंदियमण दंडणु । मद्द-
उ धम्मइकरुणावल्ली, पसरइ चित्तमहीरुहवल्ली
॥ २ ॥ मद्दउ जिणवर भत्तिपयासइ, मद्दउ कु-
मइपसरु णिण्णासइ । मद्दवेण बहुविणय पवट्टइ
मद्दवेण जणवइरी हट्टइ ॥ ३ ॥ मद्दवेण परि-
णामविसुद्धी, मद्दवेण विहु लोयह सिद्धी । म-
द्दवेण दोविह तव सोहइ, मद्दवेण तीजो णर
मोहइ ॥ मद्दउ जिणसासण जाणिज्जइ, अप्पापर
सरूव भासिज्जइ । मद्दउ दोस असेस णिवारउ,
मद्दउ जणणसमुद्दउ तारउ ॥

घत्ता—सम्मद्दंसण अंगु मद्दउपरिणाम जु मुणहु
इय परियाण विचित्त मद्दउ धम्म अमल थुणहु ।

ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्मा गायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

आर्यत्वं क्रियते सम्यक् दुष्टबुद्धिश्च त्यज्यते ।
पापचिंता न कर्त्तव्या श्रावकैर्धर्मचिंतकैः ॥३॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणे आर्जवधर्मा गाय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

धम्मह वरलक्खणु अज्जउ थिरमणु, दुरिय-

त्तिहंडणु सुहजणणु । तं इत्थु जि किज्जइ तं पा-
लिज्जइ, तं णि सुणिज्जइ खयजणणु ॥ जारिसु
णिजयचित्त चिंतिज्जइ तारिसु अण्णहु पुण मा-
सिज्जइ । किज्जइ पुण तारिसु सुहसंचणु, तं अ-
ज्जवगुण मुणहु अवंचणु ॥ २ ॥ मायासल्ल म-
णहु णीसारहु, अज्जउ धम्म पवित्त वियारहु ।
वउ तउ मायावियउ णिरत्थउ, अज्जउ सिवपुर
पंथ सउत्थउ ॥ ३ ॥ जत्थ कुटिलपरिणाम चइ-
ज्जइ, तहिं अज्जउ धम्मजु संपज्जइ । दंसणणा-
८ णसरूव अखंडो, परम अतींदिय सुक्खकरंडो
॥ ४ ॥ अप्पे अप्पउ भवहतरंडो, एरिसु चेयण-
भावपयंडो । सो पुण अज्जउ धम्मे लब्भइ, अ-
ज्जवेण वैरियमण खुब्भइ ॥ ५ ॥

घत्ता—अज्जउ परमप्पउ गयसंकप्पउ चिम्मितु
सासय अभयपऊ । त णिरुज्झाइज्जइ संसउ हि-
ज्जह, पाविज्जइ जिहि अचलपऊ ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

असत्यं सर्वथा त्याज्यं दुष्टवाक्यं च सर्वदा । पर-

निंदा न कर्तव्या भव्येनापि च सर्वदा ॥४॥

ओं ह्रीं परमब्रह्मणे उत्तमसत्यधर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दयधम्महु कारण दोसणिवारण, इहभवपरभव सुक्खयरू। सच्चुजि वयणुल्लउ भुवणिअतुल्लउ, बोलिज्जइ वीसासयरू॥ १ ॥ सच्चु जि सव्वह धम्मपहाणु, सच्चु जि महियलगरुवविहाण। सच्चु जि संसारसमुद्दसेउ, सच्चु जि भव्वह मण सुक्खहेउ ॥ २ ॥ सच्चेण जि सोहइ मणुवजम्मु, सच्चेण पवित्तउ पुण्णकम्मु। सच्चेण सयल गुणगण सहंति, सच्चेण तिअस सेवा वहंति ॥ सच्चेण अणुव्वमहव्वयाइ, सच्चेण विणासिय आवयाइ। हियमिय भासिज्जइ णिच्चभास, ण वि भासिज्जइ परदुहपयास ॥४॥ परबाहायर भासहु ण भव्व, सच्चु णि छंडउ विगयगव्व। सच्चु जि परमप्पा अत्थि एक्कु, सो भावहु भवतमदलण अक्कु ॥ रुंधिज्जइ मुणिणा वयणगुत्ति, जं खण किट्टइ संसार अत्ति। घत्ता-सच्चु जि धम्मफलेण केवलणाण वहेइ थणु।

तं पाल्हु भो भव्य ! भणहु ण आलियउ इह वयणु

ओं ह्रीं सत्यधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

बाह्याभ्यंतरैश्चापि मनोवाक्कायशुद्धिभिः ।
शुचित्वेन सदा भाव्यं पापभीतैः सुश्रावकैः ।१।

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमशौचधर्मांगाय जलाद्यर्घं निर्वपामीति ।

सच्चु जि धम्मंगो तं जि अभंगो भिण्णंगो उवओगमई । जरमरणविणासणु तिजयपयासणु काइज्जइ अहिणिसु जिथुऊ ॥ धम्म सउच्च होइ मणसुद्धिय, धम्म सउच्च वयणधणगिद्धिये । धम्म सउच्च लोह वज्जंतउ, धम्म सउच्च सुतव पहिजंतउ ॥ धम्म सउच्च वंभवयधारणु, धम्म सउच्चा मयट्ठणिवारणु । धम्म सउच्च जिणायमभणणे, धम्म सउच्चा सुगुण अणुमणणे ॥ धम्म सउच्चा सल्लकयचाए, धम्म सउच्चु जि णिम्मलभाए । धम्म सउच्च कसाय अहावे, धम्म सउच्चा ण लिप्पउ पावे ॥ अहवा जिणवर पूज विहाणे, णिम्मल फासुयजलकयह्वाणे । तं पि सउच्चा गिहत्थह भासइ,

णवि मुणिवरह कहिउलोयासिउ ॥
घत्ता-भव मुणि वि अणिच्चो । धम्म सउच्चउ पालिज्जउ. सिवमग्ग सहाओ सिवपयदाओ अणुमंचितहिंकिंणिखणि ।

ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

संयमं द्विविधं लोके कथितं मुनिपुंगवैः ।
पालनीयं पुनश्चित्ते भव्यजीवेन सर्वदा ॥६॥

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तम सयमधर्मांगायजलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

संजम जणि दुल्लहु, तं पाविल्लहु, जो छंडइ पुण मूढमई । सो भमै भवावलि, जरमरणावलि किमपावइ सुइ पुण सुगई ॥ संजम पंचेंदिय दंडणेण, संजम जि कसाय विहंडणेण । संजम दुद्धर तव धारणेण, संजमरस चाय वियारणेण ॥ संजम उववास वियंभणेण, संजम मणुपसरहु थंभणेण । संजम गुरु कायकलेसणेण, संजम परिगहगिहचायणेण ॥ संजम तसथावररक्खणेण, संजम तिणि जोयाणियत्तणेण । संजमसु तत्थपरिरक्खणेण, संजम बहुगमण चयंतणेण ॥

संजम अणुकंपकुणंतणेण, संजम परमत्थवि-
यारणेण। संजम पोसइ दंसण हु अत्थु, संजम
तिसल्लणिरुमोक्खपत्थ। संजम विणु णरभव स-
यल सुण्णु, संयम विणु दुग्गइ जि उपवण्णु।
संजम विण घडि ण्म इत्थ जाउ, संजम विण
विहली अत्थि आउ ॥ घत्ता--इहभवपरभव सं-
जमसरणो, होज्जउ जिणणाहे भणिओ। दुग्ग-
इ सरसो सण खराकिरणोवम जेण भवारि वि-
सम हणिओ ॥

ओं ह्रीं संयमधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

द्वादशं द्विविधं लोके बाह्याभ्यंतरभेदतः।
स्वयं शक्तिप्रमाणेन क्रियते धर्मवेदिभिः ।७।

ओं ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमतपोधर्मांगाय जलाद्यर्घं निवपामीति० ॥

णरभवपावेप्पिणु तच्च मुणेप्पिणु खंड वि पंचें-
दियसमणु। णिव्वेउवि मंडिवि संगइ छंडिवि
तव किज्जइ जाये विवणु ॥ तं तउ जहि परि-
गह छंडिज्जइ, तं तउ जहि मयणु जि खंडि-
ज्जइ। तं तउ जहि णग्गत्तणु दीसइ, तं तउ

जहि गिरिकंदर णिवसइ ॥२॥ तं तउ जहि उ-
वसग्ग सहिज्जइ, तं तउ जहि रायाइ जिणि-
ज्जइ । तं तउ जहि भिक्खइ भुंजिज्जइ, सावइ-
गेह कालणिविसज्जइ ॥३॥ तं तउ जत्थ समि-
दिपरिपालणु, तं तउ गुत्तित्तयहाणिहालणु । तं
तउ जहि अप्पापर बुद्दिवझउ, तं तउ जहि भव
माणु जि उज्झिउ ॥ तं तउ जहि ससरूव मुणि-
ज्जइ, तं तउ जहि कम्महगण खिज्जइ । तं त-
उ जहि सुरभत्तिपयासहि, पवयणत्थ भवियणह
पभासहि ॥५॥ जेण तवे केवल उपवज्जइ, सा-
सय सुक्ख णिच्च संपज्जइ ॥ घत्ता--बारहविहु
तउवरु दुग्गइ परिहरु, तं पूज्जिइ थिरगाणि-
णा । मच्छरमयछंडिवि करणइ दंडावि तं पि ध-
इज्जइ गौरविणा ॥

ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

चतुर्विधाय संघाय दानं चैव चतुर्विधं ।
दातव्यं सर्वथा सद्भिश्चिंतकैः पारलौकिकैः ॥८॥

ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमत्यागधर्मांगाय जलाद्यर्घं नि० ॥

चाउ वि धम्मंगो करहु अभंगो णियसत्तिइ भत्तिए जणहु। पत्तह सुपवित्तह तवगुणजुत्तह परगइसंबलु तं मुणहु॥ चाए आवागवणउ छिज्जइ, चाए णिम्मल कित्ति पविट्टइ। चाए वयरिय पणमिइ पाये, चाए भोगभूमि सुह जाए॥२॥ चाउ विहिज्जइ णिच्च जि विणए, सुयवयणे भासेप्पिणु पणए। अभयदाण दिज्जइ पहिलारउ, जिमि णासइ परभवदुहयारउ॥ सत्थदाण वीजो पुण किज्जइ, णिम्मलणाण जेण पाविज्जइ। ओसह दिज्जइ रोयविणासणु, कह वि ण पित्थइ वाहिपयासणु। आहारे धणरिद्धि पविट्टइ, चउविह चाउ जि एहु पविट्टइ। अहवा दुट्ठवियप्पह चाए चाउ जि एहु मुणहु समवाए।५।

घत्ता—दुहियहिं दिज्जइ दाण, किज्जइ माणु जि गुणियणहिं। दयभावीय अभंग, दंसण चिंतिज्जइ मणहं॥

ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

चतुर्विंशतिसंख्यातो यो परिग्रह ईरितः।

तस्य संख्या प्रकर्तव्या तृष्णारहितचेतसा ॥८॥

ओं ह्रीं परब्रह्मण उत्तमाकिंचन्यधर्मांगायार्घं निर्वपामीति० ।

आकिंचणु भावहु अप्पा ज्झावहु देहभिण्णउ ज्झाणमऊ । णिरुवम गयवण्णउ सुहसंपण्णउ, परम अतींदिय विगयभउ ॥१॥ आकिंचणु चउसंगह-णिविति, आकिंचणु चउसुज्झाणेसत्ति । आकिं-चणु वउवियलियममत्ति, आकिंचणु रयणत्तयप-वित्त । आकिंचणु आउ चिएहिचित्त, पसरंतउ इंदिय वणिविचित्त । आकिंचणु देहहणेहचित्त, आकिंचणु जं भवसुह विरत्त । तिणमत्त परि-ग्गह जत्थ णत्थि, मणिराउ विहिज्जइ तव अव-त्थि । अप्पापर जत्थ वियारसत्ति, पयडिज्जइ जहि परमेट्ठिभत्ति ॥ जह छंडिज्जइ संकप्पदुट्ठ भोयण वंछिज्जइ जह अणिट्ठ । आकिंचणु धम्म जि एम होइ, तं ज्झाइज्जइ णरुइत्थलोइ ॥ घत्ता—ए हुज्जि पहावे, लद्धसहावे तित्थेसर सिवनयरिगया । ते पुण रिसिसारा मयणवियारा वंदणिज्ज एतेण सया ॥

घत्ता जिणणाह महिज्जइ, मुणि पणविज्जइ, दहलक्खण पालीइणिरु। भो खेमसियासुय भव्व विणय जुय होलिवम्मयहु करहु थिरु ॥

ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

समुच्चय आरती।

इय काऊण णिज्जरं जे हणंति भवपिंजरं।
नीरोयं अजरामरं ते लहंति सुक्खं परं ॥ १ ॥

जण मोक्खफल ते पाविज्जइ, सो धम्मंगो एहहु गिज्जइ। खमखमायलु तुंगय देहउ, मद्दउ पल्लउ अज्जउ सेहउं ॥ सच्च सउच्च मूल संजमदलु दुविह महातव णवकुसुमाउलु। चउविह चाउय साहियपरमलु, पीणिय भव्वलोय छप्पइयलु ॥ दियसंदोह सद्द कलकलयलु, सुरणरवरखेयर सुहसयफलु। दीणाणाह दीह सम णिरगहु, सुद्ध सोमतणुमिच्चपरिग्गहु ॥ बंभचेरु छायइ सुहासिउ, रायहंस नियरेहि समासिउ। एहउ धम्म रुक्ख लाखिज्जइ, जीवदया वयणहि राखिज्जइ ॥ झाणट्ठाण भल्लारउ किज्जइ, मिच्छामई

पवेस ण दिज्जइ । सीलसलिलधारहि सिंचिज्जइ, एम पयत्तणवड्ढारिज्जइ ।

घत्ता—कोहानल चुक्कउ, होउ गुरुक्कउ, जाइ रिसिंदिय सिट्ठगई ! जगताइ सुहंकरु धम्ममहातरु देइ फलाइ सुमिट्ठमई ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

(इत्याशीर्वाद)

१०४ । अथ दशलक्षणधर्मपूजा ।

अडिल्ल ।

उत्तम छिमा मारदव आरजवभाव हैं । सौच सत्य संजम तप त्याग उपाव हैं ॥ आकिंचन ब्रमचरज धरम दश सार हैं । चहुंगतिदुखतैं काढि मुकति करतार हैं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर । सवौषट् ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सोरठा ।

हेमाचलकी धार, मुनिचित सम शीतल सुरभि । भवआताप निवार, दसलच्छन पूजौं सदा ॥१॥

ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य-
ब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्मेभ्यो जल निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

चंदन केशर गार, होय सुवास दशोंदिशा। भ०

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षण धर्माय चदन निर्वपामीति स्वाहा

अमल अखंडितसार, तंदुल चंद्रसमान शुभ। भ०

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा

फूल अनेक प्रकार, महकैं ऊरधलोकलों ॥ भव०

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

नेवज विविध निहार, उत्तम षटरससंजुगत। भ०

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा ॥

बाति कपूर सुधार, दीपकजोति सुहावनी ॥ भ०

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीप निर्वपामीति स्वाहा ॥६

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगंधता ॥ भव०

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

फलकी जाति अपार, घ्राननयनमनमोहने। भ०

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फल निर्वपामीति स्वाहा ॥८

आठोंदरव सँवार, द्यानत अधिक उछाहसों। भ०

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अंग पूजा। सोरठा।

पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविधि करैं।

धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा ॥१॥

चौपाई मिश्रित गीता छंद।

उत्तमछिमा गहोरे भाई। इहभव जस परभव सुखदाई ॥ गाली सुनि मन खेद न आनो। गुनको औगुन कहै अयानो ॥ कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविध करै। घरतैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहां धरै ॥ तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा। अति क्रोधअगनि बुझाय प्रानी, साम्यजल ले सीयरा

ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

मान महाविषरूप, करहिं नीचगति जगतमैं। कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥२॥ उत्तम मार्दवगुन मनमाना। मानकरनका कौन ठिकाना। वस्यो निगोदमाहितैं आया। दमरी रूंकन भाग बिकाया ॥ रूंकन बिकाया कर्मवशतैं, देव इकइंद्री भया। उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीडोंमैं गया ॥ जीतव्य-जोबन धन-गुमान कहा करै जलबुदबुदा। करि विनय बहु

दरव सब दीजिये । मुनिराज श्रावककी प्रतिष्ठा
सांचगुण लख लीजिये ॥ ऊंचे सिंहासन बैठी
वसुनृप, धरमका भूपति भया । वच झूठसेती
नरक पहुंचा, सुरगमें नारद गया ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

धरि हिरदे सन्तोष, करहु तपस्या देहसों ।
शौच सदा निरदोष, धरम बडो संसारमें ॥५॥
उत्तम शौच सर्व जग जानो । लोभपापको बाप
बखानो ॥ आसापास महादुख दानी । सुखपावै
संतोषी प्रानी ॥ प्रानी सदा शुचि शीलजपतप,
ज्ञानध्यानप्रभावतें । नित गंगजमुन समुद्र न्हा
ये, अशुचि दोष सुभावतें ॥ ऊपर अमल मल
भर्‍यो भीतर, कौनविध घट शुचि कहै । बहु देह
मुगुन थैलो, शौच गुन साधू लहै ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

काय छहों प्रतिपाल, पंचेंद्री मन वश करो ।
संजमरतन सँभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं ।६।
उत्तम संजम गहु मन मेरे । भवभवके भागें अघ

तेरे॥ सुरग नरकपशुगतिमैं नाहीं, आलसहरन करन सुख ठाँहीं ॥ ठाँहीं पृथी जल आग मारुत, रूंख त्रस करना धरो। सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो। जिस विना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जगकीचमैं। इक घरी मत विसरो करो नित, आव जममुख बीचमैं ॥

ओं ह्रीं उत्तमसयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

तप चाहैं सुरराय, करमसिखरको वज्र है। द्वादसविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम ॥ ७ ॥ उत्तम तप सबमाहिं बखाना। करमशैलको वज्र समाना॥ वस्यो अनादिनिगोदमँझारा। भू विकलत्रय पशुतन धारा॥ धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आन निरोगता। श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषयपयोगता ॥ अति महादुरलभ त्याग विषय. कषाय जो तप आदरै ॥ नरभवअनूपमकनकघरपर, मणिमयी कलसा धरै ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

दान चार परकार, चारसंघको दीजिये।
धन विजुरी उनहार, नरभवलाहो लीजिये ॥८॥
उत्तमत्याग कह्यो जगसारा। औषध शास्त्र अभय आहारा॥ निहचै रागरोष निरवारै। ज्ञाता दोनों दान सँभारै॥ दोनों सँभारै कूपजल सम, दरब घरमें परिनया॥ निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया वह गया। धनि साध शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोधकों॥ विन दान श्रावक साध दोन्यों, लहैं नाहीं बोधकों॥८॥

ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

परिगह चौविस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
त्रिसनाभाव उछेद, घटती जान घटाइये ॥९॥
उत्तम आकिंचन गुण जानौ। परिगहचिंता दुख ही मानौ॥ फाँस तनकसी तनमें सालै। चाह लँगोटीकी दुख भालै॥ भालै न समता सुख कभी नर, विना मुनिमुद्रा धरे। धनि नगनपर तन-नगन ठाडे, सुर असुर पायनि परें॥ घर माहिं त्रिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसारसों।

बहुधन बुरा हू भला कहिये. लीनपरउपगारसौं ॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

शीलबाड नौ राख. ब्रह्मभाव अन्तर लखो ।
करि दोनों अभिलाख. करहु सफल नरभव सदा ॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनो । माता बहिन सुता पहिचानो ॥ सहैं बानवरषा बहु सूरे । टिके न नैन-बाण लखि कूरे ॥ कूरे तियाके अशुचितनमें कामरोगी रति करै । बहु मृतक सडहिं मसान-माहीं. काक ज्यों चोंचें भरै ॥ संसारमें विषबेल नारी. तजि गये जोगीश्वरा । 'द्यानत' धरमद-शपैंडि चढिकैं. शिवमहलमैं पग धरा ॥ १० ॥

ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

अथ समुच्चय जयमाला । दोहा ।

दोहा—दशलच्छन बंदों सदा. मन वांछित फल दाय । कहूं आरती भारती. हमपर होहु सहाय ॥

बेसरी छंद ।

उत्तमछिमा जहां मन होई. अंतरबाहिर शत्रु न कोई । उत्तममार्दव विनय प्रकासै. नानाभेद

ज्ञान सब भासै ॥२॥ उत्तमआर्जव कपट मिटावै। दुरगति त्यागि सुगति उपजावै ॥ उत्तम शौच लोभपरिहारी, संतोषी गुणरतन भंडारी। उत्तम सत्यवचन मुख बोलै। सो प्रानी संसार न डोलै ॥ ३ ॥ उत्तमसंजम पालै ज्ञाता। नरभव सफल करै, लै साता ॥ ४ ॥ उत्तम तप निरवांछित पालै। सो नर करमशत्रुकों टालै। उत्तमत्याग करै जो कोई। भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई ।५। उत्तमआकिंचनव्रत धारै। परमसमाधि दशा विसतारै ॥ उत्तमब्रह्मचर्य मन लावै। नरसुर सहित मुकतिफल पावै ॥ ६ ॥

दोहा-करै करमकी निरजरा, भवपींजरा विनाशि
अजरअमरपदको लहै, 'द्यानत' सुखकी राशि ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलक्षणधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

१०५। संस्कृत स्वयंभूस्तोत्र।

येन स्वयंबोधमयेन लोका आश्वासिता केचन चित्तकार्ये। प्रबोधिना केचन मोक्षमार्गे तमादि

नाथं प्रणमामि नित्यं ॥ १ ॥ इंद्रादिभिः क्षीरस-
मुद्रतोयैः संस्नापितो मेरुगिरौ जिनेंद्रः । यः
कामजेता जनसौख्यकारी तं शुद्धभावादजितं
नमामि ॥ २ ॥ ध्यानप्रबंधप्रभवेन येन निहत्य
कर्मप्रकृतीः समस्ताः । मुक्तिस्वरूपां पदवीं प्रपेदे
तं संभवं नौमि महानुरागात् ॥३॥ स्वप्ने यदीया
जननी क्षपायां गजादिवह्न्यंतमिदं ददर्श ।
यत्तात इत्याह गुरुः परोयं नौमि प्रमोदादभिनं-
दनं तं ॥४॥ कुवादिवादं जयता महांतं नयप्र-
माणैर्वचनैर्जगत्सु । जैनंमतं विस्तरितं च येन तं
देवदेवं सुमतिं नमामि ॥ ५ ॥ यस्यावतारे सति
पितृधिष्ण्ये ववर्ष रत्नानि हरेर्निदेशात् । धना-
धिपः षण्णवमासपूर्वं पद्मप्रभं तं प्रणमामि
साधुं ॥ ६ ॥ नरेंद्रसर्पेश्वरनाकनाथैर्वाणी भवती
जगृहे स्वचित्ते । यस्यात्म बोधः प्रथितः सभाया-
महं सुपार्श्वं ननु तं नमामि ॥७॥ सत्प्रातिहार्या-
तिशयप्रपन्नो गुणप्रवीणो हतदोषसंगः । यो लोक-
मोहांधतमः प्रदीश्चंद्रप्रभं तं प्रणमामि भावात्

॥ ८ ॥ गुप्तित्रयं पंच महाव्रतानि पंचोपदिष्टा समितिश्च येन। बभाण यो द्वादशधा तपांसि तं पुष्पदंतं प्रणमामि देवं ॥ ९ ॥ ब्रह्मव्रतांतो जिन नायकेनोत्तमक्षमादिर्दशधापि धर्मः। येन प्रयुक्तो व्रतबंधबुद्ध्या तं शीतलं तीर्थकरं नमामि ।१०। गणे जनानंदकरे धरांते विध्वस्तकोपे प्रशमैक-चित्तं। यो द्वादशांगं श्रुतमादिदेश श्रेयांसमा-नौमि जिनं तमीशं ॥११॥ मुक्त्यंगनाया रचिता विशाला रत्नत्रयीशेखरता च येन। यत्कंठमा-साद्य बभूव श्रेष्ठा तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेगात् ॥ १२ ॥ ज्ञानी विवेकी परमस्वरूपी ध्यानी व्रती प्राणिहितोपदेशी। मिथ्यात्वघाती शिवसौ-ख्यभोजी बभूव यस्तं विमलं नमामि ॥ १३ ॥ आभ्यंतरं बाह्यमनेकधा यः परिग्रहं सर्वमपाच-कार। यो मार्गमुद्दिश्य हितं जनानां वंदे जिनं तं प्रणमाम्यनंतं ॥ १४ ॥ सार्द्धं पदार्था नव सप्त तत्वैः पंचास्तिकायाश्च न कालकायाः॥ षड्द्रव्यनिर्णीतिरलोकयुक्तिर्येनोदिता तं प्रण-

मामि धर्मं ॥ १५ ॥ यश्चक्रवर्ती भुवि पंचमो-
भूच्छ्रीनंदनो द्वादशको गुणानां। निधिप्रभुः
षोडशको जिनेंद्रस्तं शांतिनाथं प्रणमामि भेदात्
॥१६॥ प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं विराधितो
यो न करोति रोषं। शीलव्रताद् ब्रह्मपदं गतो
यस्तं कुंथुनाथं प्रणमामि हर्षात् ॥ १७॥ यः सं-
स्तुतो यः प्रणतः सभायां यः सेवितोंतर्गणपूर-
णाय। पदच्युतैः केवलिभिर्जिनस्य देवाधिदेवं
प्रणमाम्यरं तं ॥ १८ ॥ रत्नत्रयं पूर्वभवांतरे यो
व्रतं पवित्रं कृतवानशेषं। कायेन वाचा मनसा
विशुद्ध्या, तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥१९॥
ब्रुवन्नमः सिद्धपदाय वाक्य,-मित्यग्रहीद्यः स्वयमेव
लोचं। लौकांतिकेभ्यः स्तवनं निशम्य, वंदे जि-
नेशं मुनिसुव्रतं तं ॥ २०॥ विद्यावतं तीर्थकरा-
य तस्मा,-याहारदानं ददतो विशेषात्। गृहे नृ-
पस्याजनि रत्नवृष्टिः स्तौमि प्रणामान्नयतो नमिं
तं ॥२१॥ राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे, स्थितिं
चकारापुनरागमाय। सर्वेषु जीवेषु दयां दधान-

स्तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥ २२ ॥ सर्पाधिराजः कमठारितोयै,-र्ध्यानास्थितस्यैव फणावितानैः । यस्योपसर्गं निरवर्तयत्तं, नमामि पार्श्वं महतादरेण ॥ २३ ॥ भवार्णवे जंतुसमूहमेन,-माकर्षयामास हि धर्मपोतात् । मज्जंतमुद्वीक्ष्य य एनसापि, श्रीवर्द्धमानं प्रणमाम्यहंतं ॥ २४ ॥ यो धर्मं दशधा करोति पुरुषः स्त्री वा कृतोपस्कृतं सर्वज्ञध्वनिसंभवं त्रिकरणव्यापारशुद्धयानिशं । भव्यानां जयमालया विमलया पुष्पांजलिं दापयन्नित्यं संश्रियमातनोति सकलं स्वर्गापवर्गस्थितिं ।

१०६ स्वयंभू स्तोत्र भाषा ।

चौपाई ।

राजविषै जुगलनि सुख कियो । राज त्याग भुवि शिवपद लियो ॥ स्वयंबोध स्वंभू भगवान । वंदों आदिनाथ गुणखान ॥ १ ॥ इंद्र छीरसागरजल लाय । मेरु न्हवाये गाय बजाय ॥ मदनविनाशक सुख करतार । वंदों अजित अजितपदकार ॥ २ ॥ शुकल ध्यानकरि करमविनाशि । घाति

अघातिसकल दुखराशि। लयो मुकतिपदसुख अधिकार। वंदों संभव भवदुख टार ॥ ३ ॥ माता पच्छिम रयनमंझार। सुपने सोलह देखे सार ॥ भूप पूछि फल सुनि हरषाय। वंदों अभिनंदन मनलाय ॥४॥ सब कुवादवादी सरदार। जीते स्यादवादधुनिधार ॥ जैनधरमपरकाशक स्वाम। सुमतिदेवपद करहुं प्रनाम ॥ ५ ॥ गर्भ अगाऊ धनपति आय। करी नगर शोभा अधिकाय ॥ बरसे रतन पंचदश मास। नमों पदमप्रभु सुखकी रास ॥६॥ इंद फनिंद नरिंद त्रिकाल। बानी सुनि सुनि होहिं खुस्याल ॥ द्वादशसभा ज्ञानदातार। नमों सुपारसनाथ निहार ॥ ७ ॥ सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं। दोष अठारह कोऊ नाहिं ॥ मोह महातमनाशक दीप। नमों चंद्रप्रभ राख समीप ॥ ८ ॥ द्वादश विध तप करम विनाश। तेरहभेद चरित परकाश ॥ निज अनिच्छ भवि इच्छकदान। वंदों पहुपदंत मनआन ॥ ९ ॥ भविसुखदाय सुरगतें

आय। दशविध धरम कह्यो जिनराय ॥ आप समान सबनि सुख देह। वंदौं शीतल धर्मसनेह ॥१०॥ समता सुधा कोपविष-नाश। द्वादशांग वानी परकाश ॥ चारसंघ-आनँद-दातार। नमौं श्रियांस जिनेश्वर सार ॥ ११ ॥ रतनत्रयचिर-मुकुटविशाल। सोभै कंठ सुगुन मनिमाल ॥ मुक्तिनार भरता भगवान। वासुपूज्य वंदौं धर ध्यान ॥ १२ ॥ परम समाधि-स्वरूप जिनेश। ज्ञानी ध्यानी हित उपदेश ॥ कर्मनाशि शिवसुख विलसंत। वंदौं विमलनाथ भगवंत ॥ १३ ॥ अंतर बाहिर परिगह डारि। परम दिगंबरव्रत को धारि ॥ सर्वजीवहित-राह दिखाय। नमौं अनंत वचनमनलाय ॥ १४ ॥ सात तत्त्व पंचा-स्तिकाय। अरथ नवौं छदरब बहुभाय ॥ लोक अलोक सकल परकास। वंदौं धर्मनाथ अवि-नाश ॥ १५ ॥ पंचम चक्रवरति निधिभोग। कामदेव द्वादशम मनोग ॥ शांतिकरन सोलम जिनराय। शांतिनाथ वंदौं हरखाय ॥ १६ ॥

बहुथुति करे हरष नहिं होय। निंदे दोष गहै नहिं कोय। शीलवान परब्रह्मस्वरूप। वंदौं कुंथुनाथ शिवभूप ॥१७॥ द्वादशगण पूजें सुखदाय थुति बंदना करें अधिकाय ॥ जाकी निजथुति कबहुं न होय। वंदौं अरजिनवर-पद दोय ॥१८। परभव रतनत्रय-अनुराग। इह भव ब्याहसमय वैराग ॥ बालब्रह्मपूरनव्रतधार। वंदौं मल्लिनाथ जिनसार ॥ १९ ॥ विन उपदेश स्वयं वैराग। थुति लोकांत करै पगलाग ॥ नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं। वंदौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं ॥ २० ॥ श्रावक विद्यावंत निहार। भगतिभाव सों दियो अहार ॥ बरसी रतनराशि ततकाल। वंदौं नमिप्रभु दीनदयाल ॥ २१ ॥ सब जीवन की बंदी छोर। रागरोष द्वै बंधन तोर ॥ रज-मति तजि शिवतियसों मिले। नेमिनाथ वंदौं सुखनिले ॥ २२ ॥ दैत्यकियो उपसर्ग अपार। ध्यान देखि आयो फनिधार ॥ गयो कमठ शठ मुख कर श्याम। नमों मेरुसम पारसस्वाम।२३।

भवसागरतैं जीव अपार । धरमपोतमैं धरे निहार ॥ डूबत काढे दया विचार । वर्द्धमान वंदौं वहुवार ॥२४॥

दोहा—चौवीसौं पदकमलजुग, वंदौं मनवचकाय।
'द्यानत' पढै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥

१०७। अथ रत्नत्रयपूजा भाषा ।

दोहा ।

चहुंगातिफनिविषहरनमणि, दुखपावकजलधार ।
शिवसुखसुधासरोवरी, सम्यकत्रयी निहार ॥१॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठ ठ ।
ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

अष्टक सोरठा ।

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो ।
जनमरोगनिरवार, सम्यकरत्नत्रय भजूं ॥१॥
ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय जन्मरोगविनाशनाय जलं निर्वपामीति०

चंदनकेसरगारि, परिमलमहासुरंगमय । जन्म०
ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति ।२।

तंदुलअमलचितार, वासमतीसुखदासके । जन्म०

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति ।४।

महकैं फूलअपार, अलिगुंजैंज्योंथुतिकरैं । जन्म०

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयायकामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति ।५।

लाडूबहु विस्तार चीकनामिष्टसुगंधयुत । जन्म०

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति ।

दीपरतनमयसार, जोतप्रकाशैजगतमें । जन्म०

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयायमोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति ।

धूपसुवासविथार, चंदनअगर कपूरकी । जन्म०

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामी० ॥ ७ ।

फलशोभाअधिकार, लौंगछुहारेजायफल । जन्म०

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामी० ॥ ८ ॥

आठदरवनिरधार, उत्तमसोंउत्तमलिये । जन्म०

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामी० ॥६ ॥

सम्यकदरशनज्ञान, व्रतशिवमगतीनोंमयी । ज०

पारउतारनयान, 'द्यानत' पूजोंव्रतसहित । ज०

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

दर्शन पूजा ।

दोहा—सिद्ध अष्टगुनमय प्रगट, मुक्तजीवसोपान

ज्ञानचरित जिहँविन अफल, सम्यकदर्शप्रधान ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सान्निहितो भव भव। वषट् ।

सोरठा-नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै।
सम्यकदर्शनसार, आठ अंग पूजों सदा ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जलकेसर घनसार, तापहरै सीतलकरै। सम्य०

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अछतअनूपनिहार, दारिदनाशैसुखभरै। सम्य०

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

पहुपसुवासउदार, खेदहरैमनशुचिकरै। सम्य०

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

नेवजविविधिप्रकार, छुधाहरैथिरताकरै। सम्य०

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपज्योतितमहार, घटपटपरकाशैमहा। सम्य०

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

धूप घ्रानसुखकार, रोगविघनजडताहरै। सम्य०

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

श्रीफलआदिविथार, निहचैसुरशिवफलकरै। स०

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जलगंधाक्षतचारु, दीपधूपफलफूलचरु । सम्य०

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जयमाला ।

दोहा--आप आप निहचै लखै, तत्त्वप्रीति व्योहार ।
रहितदोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार ॥१॥

चौपाई मिश्रित गीताछंद

सम्यकदरशनरतन गहीजे । जिनवचमें संदेह न कीजे । इहभव विभवचाह दुखदानी । परभवभोग चहै मत प्रानी ॥ प्रानी गिलान न करि, अशुचि लखि, धरमगुरुप्रभु परखिये ॥ परदोष ढकिये धरम डिगतेको, सुथिर कर हरखिये ॥ चहुंसंघको वात्सल्य कीजे, धरमकी परभावना । गुन आठसों गुन आठ लहिकें, इहां फेर न आवना ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसहितपञ्चविंशतिदोषरहितसम्यग्दर्शनायपूर्णार्घ्यं नि०

ज्ञान पूजा ।

दोहा--पंचभेद जाके प्रगट, ज्ञेयप्रकाशनभान ।
मोह-तपन-हर-चंद्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव, वषट् ।

सोरठा ।

नीरसुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै ।
सम्यकज्ञान विचार, आठभेद पूजों सदा ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जलकेसरघनसार, तापहरै शीतलकरै । सम्य०

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चंदन निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अक्षत अनुप निहार, दारिद नाशै सुख करै ।स०

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

पहुपसुवासउदारखेदहरैमनशुचिकरै । स० पुष्पं
नेवजविविधप्रकार,छुधाहरैथिरता करै । स० नै०
दीपजोतितमहार,घटपटपरकाशैमहा । स० दीपं
धूपघ्रानसुखकार,रोगविघनजडता हरै । स० धूपं
श्रीफलआदिविथारनिहचैसुरशिवफलकरै।स०फ
जलगंधाक्षतचारु,दीपधूपफलफूलचरु । स० अर्घं

अथ जयमाला ।

दोहा—आपआपजानै नियत, ग्रंथपठन व्योहार ।
संसय विभ्रम मोह विन, अष्टअंग गुनकार ॥१॥

चौपाई मिश्रित गीता छंद।

सम्यकज्ञानरतनमनभाया, आगम तीजा नैन बताया। अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अच्छर अरथ उभय सँग जानो॥ जानो सुकालपठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये। तपरीति गहि बहु मौन देकें, विनयगुन चितलाइये॥ ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान दर्पन देखना। इसज्ञान-हीसों भरत सीझा और सब पटपेखना॥ २॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

चारित्र पूजा।

दोहा-विषयरोग औषध महा, दवकषायजलधार।
तीर्थंकर जाको धरै, सम्यकचारितसार॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सोरठा।

नीरसुगंधअपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यक चारितसार, तेरहविध पूजों सदा॥१॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥१॥

जलकेशरघनसार, तापहरैशीतलकरै। सम्यक०

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥

अछतूअनूपनिहार, दारिदनाशैसुखभरै । सम्य०

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

पहुपसुवासउदार, खेदहरैमनशुचिकरै । सम्य०

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

नेवजविविधप्रकार, छुधाहरै थिरता करै । सम्य०

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

दीपजोति तमहार, घटपटपरकाशैमहां । सम्य०

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

धूप घ्रान सुखकार, रोगविघनजडताहरै । स०॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय धूप निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

श्रीफलआदिविथार, निहचैसुरशिवफलकरै । स०

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फल निर्वपामीति स्वाहा ।८।

जलगंधाक्षतचारु, दीपधूपफलफूलचरु । सम्य०

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।९।

अथ जयमाला ।

दोहा-आपआपथिरनियतनय, तपसंजम व्योहार

स्वपरदया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥१॥

चौपाई मिश्रित गीताछंद ।

सम्यकचारित रतन सँभालौ, पांचपाप तजि

के व्रत पालौ। पंचसमिति त्रयगुपति गहीजै। नरभव सफल करहु तन छीजै॥ छीजै सदा तनको जतन यह एक संजम पालिये। बहु रुल्यो नरक निगोदमाहीं, विषकषायनि टालिये॥ शुभकरमजोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है 'द्यानत' धरमकी नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है॥२॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।३।

अथ समुच्चय जयमाला। दोहा—

सम्यकदरशन-ज्ञानव्रत, इन विन मुकति न होय।
अंध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दवलोय॥१॥

चौपाई १६ मात्रा।

जापै ध्यान सुथिर बन आवै। ताके करमबंध कट जावैं॥ तासों शिवतिय प्रीति बढावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ १॥ ताको चहुंगतिके दुख नाहीं। सो न परै भवसागरमाहीं॥ जनम जरामृत दोष मिटावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥३॥ सोई दशलच्छनको साधै। सो सोलह कारण आराधै॥ सो परमातमपद उपजावै। जो

सम्यकरतनत्रय ध्यावे ॥४॥ सोई शक्रचक्रिपद लेई। तीनलोकके सुख विलसेई॥ सो रागादिक भाव वहावे। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावे ॥५॥ सोई लोकालोक निहारै। परमानंददशा विस्तारै॥ आप तिरै औरन तिरवावे। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावे ॥ ६ ॥

एकस्वरूपप्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, द्यानतको सुखदाय।७।

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्राय महार्घ्यं निर्वपामि०।

(अर्घके बाद विसर्जन करना चाहिये।)

१०८। श्रीसम्मेदाचल पूजा।

दोहा-सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, है उतकृष्टसुथान
शिखरसमेद सदा नमों, होयपापकी हान ॥१॥
अगणित मुनि जहँतें गये.लोकशिखरके तीर।
तिनके पदपंकज नमूं.नाशें भवकी पीर ॥ २ ॥
अडिल्ल-है उज्वल वह क्षेत्र सुअति निरमलसही।
परम पुनीत सुठौर महा गुणकी मही।
सकल सिद्धिदातार महा रमणीक है।

वंदों निज सुखहेत अचल पद देत है ॥३॥

सोरठा-सिखरसमेद महान, जगमें तीर्थप्रधान है। महिमा अद्भुत जान, अल्पमती मैं किमि कहों ॥

सुंदरी छंद--सरस उन्नत क्षेत्र प्रधान है। अति सु उज्वल तीर्थ महान है ॥ करहिं भक्ति सु जे गुण गायकें। वरहिं सुर शिवके सुख जायकें ॥

अडिल्ल--सुर हरि नर इन आदि और बंदन करें। भवसागरतें तिरें, नहीं भवमें परें। सफल होय तिन जन्म शिखर दरशन करें, जनमजनमके पाप सकल छिनमें टरें ॥ ६ ॥

पद्धरीछंद--श्रीतीर्थंकर जिनवर जु बीश। अरु मुनि असंख्य सब गुणन ईश ॥ पहुँचे जहँतें कैवल्य धाम। तिनकों अब मेरी है प्रणाम ॥ ७॥

गीतिका छंद

सम्मेदगढ है तीर्थ भारी सबहिकों उज्वल करे। चिरकालके जे कर्म लागे दर्शतें छिनमें टरें ॥ है परमपावन पुण्यदायक अतुलमहिमा जानिये। अरु है अनूप सरूप गिरिवर तासु पूजन ठानिये ॥८॥

दोहा-श्रीसम्मेदशिखर सदा, पूजों मनवचकाय।
हरत चतुर्गतिदुःखकों, मनवांछित फलदाय॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र अत्र। तिष्ठ तिष्ठ! ठ ठः। ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अष्टक।

अडिल्ल-क्षीरोदधिसम नीर सुनिरमललीजिये।
कनक कलशमें भरकें धारा दीजिये॥
पूजों शिखरसमेद सुमनवचकाय जी।
नरकादिक दुख टरें अचलपद पायजी॥

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामि०॥

पयसों घसि मलयागिरिचंदन लाइये। केसरि आदि कपूर सुगंध मिलाइये॥ पूजों शिखरसमेद०॥ नरका० चंदनं॥ २॥ तंदुल धवल सुवासित उज्वल धोयकैं। हेमरतनके थार भरों शुचि होयके॥ पूजों शिखरसमेद०। अक्षतान्। ॥ ३॥ सुरतरुके सम पुष्प अनूपम लीजिये। कामदाहदुखहरणचरण प्रभु दीजिये॥ पूजों शिखरसमेद०॥ पुष्पं॥ ४॥ कनकथार नैवेद्य सु

षटरसतैं भरे । देखत क्षुधा पलाय सुजिन आगैं धरे ॥ पूजों शिखरसमेद०। नरकादि०। नैवेद्यं० ॥५॥ लेकर मणिमय दीप सुज्योति प्रकाश है। पूजत होत सुज्ञान मोहतम नाश है ॥ पूजोंशि-खरसमेद० । नरका०। दीपं ॥ ६ ॥ दशविध धूप अनूप अगनिमैं खेवहूं । अष्टकर्मको नाश होत सुख लेवहूं ॥ पूजौं शिखरसमेद० ॥ नरका० ॥ धूपं ॥७॥ एला लौंग सुपारी श्रीफल ल्याइये । फल चढाय सुख वांछ मोक्षफल पाइये । पूजौं शिखर० । नरकादि० । फलं० ॥ ८ ॥ जल गंधाक्षतपुष्प सुनेवज लीजिये। दीप धूप फल लेकर अर्घ सुदीजिये॥ पूजौंशि- खरसमेद ॥ नरका० । अर्घ्यं ॥ ९ ॥

पद्धरि छंद ।

श्रीविंशति तीर्थंकर जिनेंद्र। अरु असंख्यात जहँतैं मुनेंद्र ॥ तिनकों करजोरि करौं प्रणाम। जिनको पूजों तजि सकल काम ॥ महार्घं० ॥ अडिल्ल—जे नर परम सुभावनतैं पूजा करैं।

हरि हलि चक्री होंय राज छह खंडकरें फेरि होंय धरणेंद्र इंद्रपदवी धरैं। नानाविध सुखभोगि बहुरि शिवतिय वरें ॥

इत्याशीर्वाद (पुष्पाजलिक्षिपेत्) छंद जोगीरासा।

श्रीसम्मेदशिखरगिरि उन्नत, शोभा अधिक प्रमानों। विंशति तिहिंपर कूट मनोहर, अदभुत रचना जानो ॥ श्रीतीर्थंकर वीस तहांतें, शिवपुर पहुंचे जाई। तिनके पदपंकज जुग पूजों, अर्घ प्रत्येक चढाई ॥

पुष्पाजलिं क्षिपेत्।

नं० २४ अजितनाथ सिद्धवरकूट।

प्रथम सिद्धिवरकूट सुजानों, आनँद मंगलदाई। अजितनाथ जहँतें शिव पहुंचे पूजोंमनवचकाई कोडि जु अस्सी एक अरब मुनि, चौवन लाख जु गाई। कर्म काटि निर्वाण पधारे, तिनकों अर्घ चढाई ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसिद्धवरकूटतें, अजितनाथजिनेंद्रादि मुनि एक अर्ब अस्सीकोटि चौवनलाख सिद्धपद प्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नं० १५ संभवनाथ धवलकूट ।

धवलदत्त है कूट दूसरो, सव जियको सुखकारी। श्रीसंभवप्रभु मुक्ति पधारे पापतिमिरकों टारी ॥ धवलदत्त दे आदि मुनी, नवकोडाकोडी जानो लाख वहत्तरि सहस वियालिस, पंचशतक ऋषि मानो ॥ कर्मनाशकरि शिवपुर पहुंचे, वदों शीशं नवाई । तिनके पदजुग जजहुं भावसों, हरषि २ चितलाई ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रधवलकूटतैं सम्भवनाथजिनेंद्रादि मुनि नौकोडाकोडीवहत्तरलाखब्यालीसहजारपांचसौसिद्धपदप्राप्तेभ्यःसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नं० १६ अभिनंदननाथ आनन्दकूट ।

चौपाई—आनँदकूट महासुखदाय । अभिनंदन प्रभु शिवपुर जाय ॥ कोडाकोडि वहत्तरजान। सत्तर कोडि लखछत्तिस मान ॥ सहस वियालिस शतक जु सात । कहे जिनागममें इह भांत ॥ ये ऋषि कर्म काटि शिवगये । तिनके पदजुग पूजत भये ॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रे आनंदकूटतैंश्रीअभिनंदनजिनेंद्रादि

मुनि बहत्तरकोडाकोडीसत्तरकोडिछचौसलाखब्यालीसहजार सा-
तसौसिद्धपद प्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

न० १६ सुमतिनाथ अविचलकूट। अडिल्ल।

अविचल चौथो कूट महासुख धामजी। जहँतैं सुमतिजिनेश गये निर्वाणजी॥ कोडाकोडी एक मुनीश्वर जानिये। कोटि चुरासी लाख बह-चरि मानिये॥ सहस इक्यासी और सातसौं गाइये। कर्म काटि शिवगये तिन्हें शिर नाइये सो थानक मैं पूजूं मनवचकायजी। पाप दूर हो जांय अचलपदपायजी॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रअविचलकूटतैंसुमतिनाथजिनेंद्रादि मुनि एक कोडाकोडी चौरासीकोडि बहत्तरलाख इक्यासीहजार सात्तसौ सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीतिस्वाहा।

नं० ८ पद्मप्रभ मोहनकूट। अडिल्ल—

मोहन कूट महान परम सुंदर कह्यो। पद्मप्रभ जिनराज जहां शिवपुर लह्यो॥ कोटि निन्या-वन लाख सतासी जानिये। सहस तियालिस और मुनीश्वर मानिये॥ सप्त सैंकरा सत्तर ऊपर वीस जू। मोक्ष गए मुनि तिन्हें नमूं निश

बीस जू ॥ कहे जवाहरलाल दोयकर जोरिके
अविनाशी पद दे प्रभु कर्मन तोरिके ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रमोहनकूटतें पद्मप्रभजिनेंद्रादिमुनि निन्यानवे कोडि सतासीलाख तेतालीसहजार सातसौ सत्ताईस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नं० २२ सुपार्श्वनाथ प्रभासकूट । सोरठा—

कूट प्रभास महान, सुंदर जनमन-मोहनो ।
श्रीसुपार्श्वभगवान, मुक्ति गये अघ नाशिकें ॥
कोडाकोडि उनचास, कोडि चुरासी जानिये ।
लाख बहत्तर खास, सात सहस हैं सात सौ ॥
और कहे ब्यालीस, जहँतें मुनि मुक्ती गए ।
तिनहिं नमैं नित शीश, दासजवाहर जोरकर ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रप्रभासकूटतें श्रीसुपार्श्वनाथजिनेंद्रादिमुनि उनचास कोडाकोडि चौरासीकोडि बहत्तरलाख सातहजार सातसौ बियालिस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नं० ६ चंद्रप्रभ ललितकूट ।

दोहा—पावन परम उतंग है, ललितकूट है नाम
चंद्रप्रभ शिवकों गये, बंदौं आठों जाम ॥
कोडाकोडी जानिये, चौरासी ऋषिमान ।

कोडि बहत्तर अरु कहे, अस्सीलाख प्रमान ॥
सहस चुरासी पंचशत, पचपन कहे मुनिंद।
वसुकरमनको नाशकर, पायो सुखको कंद।
ललितकूटतैं शिवगये, वंदौं शीश नवाय।
जिनपद पूजौं भावसों. निजहित अर्घ चढाय॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रललितकूटतैं चद्रप्रभजिनेंद्रादि मुनि चौरासीकोडाकोडीवहत्तरकोडिअसीलाख चौरासीहजार पांचसौ पचपन सिद्धपदप्राप्तेभ्य सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति।

नं० ७ पुष्पदंत सुप्रभकूट। पद्धरी छंद।

श्री सुप्रभकूट सु नाम जान। जहँ पुष्पदंतको मुकति थान॥ मुनि कोडाकोडि कहे जु भाख। नव ऊपर नवधर कहे लाख॥ शतचारि कहे अरु सहससात। ऋषिअस्सी और कहे विख्यात॥ मुनि मोक्षगए हनि कर्मजाल। वंदौं कर जोरि नमाय भाल॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुप्रभकूटतैं पुष्पदन्तजिनेंद्रादि मुनि एककोडाकोडीनिन्यानवेलाख सातहजार चारसौ अस्सी सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

नं० १२ शीतलनाथ विद्युतकूट। सुन्दरी छंद—

सुभग विद्युतकूट सु जानिये। परम अदभुत

तापर मानिये ॥ गये शिवपुर शीतलनाथजी। नमहुँ तिन इह करधर माथजी ॥ मुनि जु कोडा कोडि अठारहू । मुनि जु कोडि बियालिस जानहू ॥ कहे और जु लाखबत्तीस जू । सहसब्यालिस कहे यतीश जू ॥ अवर नौसौ पांच जु जानिये । गए मुनि शिवपुरको मानिये ॥ करहिं जे पूजा मन लायकें । धरहिं जन्म न भवमें आयकें ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रविद्युतकूटतैं श्रीशीतलनाथजिनेंद्रादि मुनि अठारहकोडाकोडी ब्यालीसकोडि बत्तीसलाखब्यालीसहजार नौसौ पांच सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं०।

नं० ६ श्रेयांसनाथ संकुलकूट। जोगीरासा—

कूट जु संकुल परममनोहर, श्री श्रेयान् जिनराई । कर्मनाशकर शिवपुर पहुंचे, वंदौं मनवच काई ॥ छ्यानव कोडाकोडी जानो, छ्यानवकोडि प्रमानो ॥ लाख छ्यानवे सहस मुनीश्वर, साढे नव अब जानो ॥ ता ऊपर ब्यालीस कहे हैं श्रीमुनिके गुण गावैं ॥ त्रिविधयोग करि जो कोइ पूजै, सहजानँद तहँ पावैं ॥ सिद्ध नमों सुख

दायक जगमें, आनँदमंगलदाई। जजौं भावसों चरण जिनेश्वर, हाथजोड शिरनाई ॥ परम मनोहर थान सु पावन, देखत विघन पलाई ॥ तीन काल नित नमत जवाहर मेटो भवभटकाई। जहँतें जे मुनिसिद्ध भये हैं, तिनको शरण गहाई। जापदको तुम प्राप्त भए हो, सो पद देहु मिलाई ॥११॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसंकुलकूटते श्रीश्रेयासनाथजिनेंद्रादिमुनिछ्यानवेकोडाकोडी छ्यानवेकोडि छ्यानवेलाखनवहजार पाचसौवियालिस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्योअर्घं०

न० २३ विमलनाथ सुवीरकुलकूट। कुसुमलताछद।

श्रीसुवीरकुलकूट परम सुंदर सुखदाई, विमलनाथ भगवान जहां पंचमगति पाई। कोडि सु सत्तर सातलाख षटसहस जु गाई, सात सतक मुनि और वियालिस जानो भाई ॥ दोहा—

अष्टकर्मको नष्टकर, मुनि अष्टमछिति पाय।
तिनप्रति अर्घ चढावहू, जनम मरण दुखजाय ॥
विमलदेव निरमल करण, सब जीवन सुखदाय।
मोतीसुत वंदत चरण, हाथ जोर शिरनाय ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरगिरिकूटसे श्रीसुवीरकुलकूटते श्रीविमलनाथजिनेंद्रादि मुनि सत्तरकोडि सातलाख छहहजार सातसौव्यालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

नं० १३ अनंतनाथ स्वयंभूकूट । अडिल्ल—

कूट स्वयंभू नाम परम सुंदर कह्यो । प्रभु अनंत जिननाथ जहां शिवपद लह्यो ॥ मुनि जु कोडाकोडि छ्यानवे जानिये । सत्तर कोडि जु सत्तरलाख प्रमानिये ॥ सत्तर सहस जु और मुनीश्वर गाइये । सात सतक ता ऊपर तिनको ध्याइये ॥ कहैं जवाहरलाल सुनो मनलायकैं । गिरिवरकों नित पूजो अति सुखपायकैं ॥

सो०—पूजत विघन पलाय, ऋद्धिसिद्धि आनँदकर सुरशिवको सुखदाय, जो मनवच पूजा करैं ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रे स्वयंभूकूटते अनंतनाथजिनेंद्रादि मुनि छ्यानवेकोडाकोडी सत्तरकोडि सत्तरलाख सत्तरहजार सातसौ सिद्धपद प्राप्तेभ्य सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति० ।

नं १४ धर्मनाथ सुदत्तकूट । चौपाई—

कूट सुदत्त महाशुभ जान । श्रीजिनधर्मनायको थान ॥ मुनि कोडाकोडी उनतीस । और कहे ऋषि कोडि उनीश ॥ लाखजु नव नवसहस मु-

ज्ञान । सात शतक पंचावन मान ॥ मोक्ष गये वे कर्मनचूर । दिवसरु रयन नमों भरपूर ॥ महिमा जाकी अतुल अनूप । ध्यावत वर इंद्रादिक भूप ॥ शोभत महा अचलपद पाय । पूजौं आनँद मंगलगाय ॥ दोहा—परमपुनीत पवित्र अति, पूजत शत सुरराय । तिह थानकको देख कर, मोतीसुत गुणगाय ॥ पावन परम सुहावनो, सब जीवन सुखदाय । सेवत सुरहरि नर सकल मनवांछित पद पाय ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुदत्तकूटतैंधर्मनाथजिनेंद्रादिमुनि उन्नीस कोडाकोडी उन्नीसकोडि नौलाख नौहजार सातसौ पंचानवे सिद्धपदप्राप्तेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

न० २० शान्तिनाथ-शातिप्रभकूट । सुगोतिका छंद ।

श्रीशांतिप्रभ है कूट सुंदर अति पवित्र सुजानिये । श्रीशांतिनाथ जिनेंद्र जहँतैं, परमधाम प्रमानिये ॥ नवजु कोडाकोडि मुनिवर लाख नव अब जानिये । नौ सहस नवसै मुनि निन्यानव, हृदयमें धर मानिये ॥ दोहा—कर्मनाश शिवको गए, तिन प्रति अर्घ चढाय ।

त्रिविधयोग करि पूज हैं मनवांछित फलपाय ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रशांतिप्रभकूटतैं शांतिनाथजिनेन्द्रादिमुनि नौकोडाकोड़ी नोलाख नोहजार नौसै निन्यानवे सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

नं० २ कुन्थुनाथ ज्ञानधरकूट। गीतिका छंद।

ज्ञानधर शुभकूट सुंदर, परम मनमोहन सही
जहँतैं प्रभु श्रीकुंथु स्वामी, गये शिवपुरकी मही
कोडा सु कोडि छ्यानवें, मुनि कोडिछ्यानव
जानिये। अर लाखबत्तिस सहसछ्यानव, शतक
सात प्रमानिये ॥

और कहे व्यालीस मुनि, सुमिरों हिये मझार।
तिनपद पूजों भावसों, करै जु भवदधिपार ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रज्ञानधरकूटतैं, श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्रादिमुनि छ्यानवे कोडाकोड़ी छ्यानवे कोडि बत्तीसलाखछ्यानवे हजार सातसौ बियालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं०

नं० ४ अरनाथ नाटककूट। दोहा—

कूट जु नाटक परमशुभ, शोभा अपरंपार।
जहंतैं अरजिनराजजी, पहुंचे मुक्ति-मझार ॥
कोडिनिन्यानव जानि मुनि, लाखनिन्यानव और
कहे सँहस निन्यानवै बंदौं कर जुग जोर ॥ अ०

कर्मको नष्टकरि, मुनि अष्टमक्षिति पाय। तेगुण यो हिरदै वसो, भवदधि पार लगाय ॥

सोरठा--तारणतरण जिहाज, भवसमुद्रके बीचमें। पकरो मेरी बांह, डूवतसे राखो मुझे ॥ अष्टकरम दुख दाय, ते तुमने चूरे सवै। केवल-ज्ञान उपाय, अविनाशी पद पाइयो ॥ मोती सुत गुणगाय, चरणन शीश नवायकै। मेटो भवभटकाय, मांगत अव वरदान यो ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रनाटककूटतैं अरनाथजिनेन्द्रादि-मुनि निन्यानवैकोडि निन्यानवेलाख निन्यानवै हजार सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

न० ५ मल्लिनाथ सम्बलकूट। सुन्दरी छंद।

कूट सम्वल परमपवित्र जू। गये शिवपुर मल्लिजिनेश जू ॥ मुनि जु छ्यानवकोडि प्रमानिये। पदजजतहिरदय सुख आनिये ॥ मोती-दामछंद—भजों प्रभुनाम सदा सुखरूप, जजों मनमें धरभाव अनूप। टरें अघपातिक जाहिंसुदूर, सदा जिनको सुख आनँदपूर ॥ डरै ज्यों नाग गरुडको देखि, भजै गजजुत्थ जु सिंहहि पेखि।

तुमनाम प्रभू दुखहरण सदा, सुखपूर अनूपम होय मुदा ॥ तुमदेव सदा अशरणशरणं, भट मोहबली प्रभुजी हरणं । तुम शरणगही हम आय अबैं, मुझ कर्मबली दिढ चूर सबैं ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसम्बलकूटते श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्रादि छयानवैकोडि मुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्य सिद्धक्षेत्रभ्योऽर्घंनिर्व०

नं० ९ मुनिसुव्रतनाथ निर्जरकूट । मदअवलिप्तकपोलछन्द—

मुनिसुव्रत जिननाथ सदा आनँदके दाई । सुंदर निर्जरकूट जहांतैं शिवपुर जाई । निन्यानवकोडाकोडि कहे मुनि कोडि सत्याना ॥ नवलख जोडि मुनिंद कहे नौसौ निन्न्याना ॥

सोरठा-कर्मनाशि ऋषिराज, पंचमगतिके सुख लहै । तारणतरणजिहाज, मो दुख दूर करो सकल ।

भुजंगप्रयात ।

बली मोहकी फौज प्रभुजी भगाई, जग्यो ज्ञानपंचम महासुक्खदाई । समोशरण धरणेंद्रने तब बनायो, तबै देव सुरपति सबै शीसनायो ॥ जयो जय जिनेंद्र सुशब्दं उचारी, भए आज दरशन सबै सुक्खकारी । गए सर्व पातिक प्रभू

दूरहीतें, जबै दर्श कीने प्रभू दूरहीतें ॥ सुनी नाथ श्रवनो जु तेरी बड़ाई, गही शरण हमने तुम्हारी सुहाई । बली कर्म नाशे जवै मुक्ति पाई तिन्हें हाथ जोरें सदा शीश नाई ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रनिर्जरकूटतैं मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्रादिमुनि निन्यानवैकोड़ाकोड़ी सत्तानवे कोडि नौलाख नौसौ- निन्यानवै सिद्धपदप्राप्तेभ्य: सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति० ॥

नं० ३ नमिनाथ मित्रधरकूट । जोगीरासा ।

कूट मित्रधर परममनोहर, सुंदर अति छवि- दाई । श्रीनमिनाथ जिनेश्वर जहतें, अविनाशी पदपाई ॥ नौसौ कोडाकोडी मुनिवर, एक अ- रब ऋषि जानो । लाख पैंतालिस सात सहस अरु, नौसै व्यालिस मानो ॥ दोहा—

वसु करमनको नाश कर, अविनाशी पदपाय ।
पूजों चरणसरोजकों, मनवांछितफलदाय ।२०।

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रमित्रधरकूटतैं नमिनाथजिनेन्द्रादिमुनि नौसौकोडाकोडी एकअरब पैंतालिसलाख सातहजार नौसौ व्यालिस सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्योऽर्घं निर्वपामीति०

नं० २६ पार्श्वनाथ । सुवर्णभद्रकूट ।

दोहा-सुवरणभद्र जु कूटपै, श्रीप्रभुपारसनाथ ।

अडिल्ल-जे नर परमसुभावनतैं पूजा करैं । हरि हलि चक्री होंय राज्य षटखँड करैं ॥ फेरि होंय धरणेंद्र इंद्रपदवी धरैं, नानाविधि सुख भोगि बहुरि शिवतिय वरैं ॥

अथाशीर्वाद (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

नोट—जिनको प्रत्येक अर्घवाली बड़ी पूजा करनेकी थिरता न हो उनको आगे लिखी पूजा करलेना चाहिये ।

१०६ । अथ सम्मेदशिखर लघुपूजा ।

श्रीजिन वीस जिनेशके, वीसों शिखर महान ।
और असंख्य मुनीश जहँ, पहुंचे शिव पदथान ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठ ठः । ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ॥

अथ अष्टक । गीतिका छंद ।

पदमद्रहको नीर निर्मल हेमझारीमैं भरों ।
तृषारोग निवारनेको, चरणतर धारा करों ॥
संमेदगढतैं मुनिअसंख्ये, करमहर शिवपुरगये ।
सो थान परम पवित्रपूजों, तासुफल पुनि संचये ॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

चंदन कपूर मिलाय केसर, नीरसों घसिलाइये।
जिनराज पापविनाश हमरे, भवातापमिटाइये सं०

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यःश्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्य: चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥

चंद्रके सम ल्याय तंदुल, कनकथारनमें भरों।
अक्षय सुपदके कारणै, जिनराजपदपूजा करों सं०

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥

कुंद कमलादिक चमेली गंधकर मधुकर फिरैं।
मदनवाणविनाशवेकों. प्रभुचरणआगेंधरैं। सं०।

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यःश्रीसम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्य पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नेवज मनोहर थालमें भर. हरषकर ले आवने।
करहुं पूजा भावसों. नर क्षुधारोग मिटावने। सं०

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्य श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्य नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा ॥

दीप ज्योति प्रकाश करकें. प्रभूके गुणगावने।
मोहतिमिर विनाश करके. ज्ञानभानु प्रकाशने ॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्य श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो दीप निर्वपामीति स्वाहा ॥

वरधूप सुंदर ले दशांगी. ज्वलनमांहिं सु खेइये।

वसुकर्मनाशनकेसु कारण. पूज प्रभुपद वेइये। सं०

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपद प्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्ध-क्षेत्रेभ्यः धूप निर्वपामीति स्वाहा ।

उतकृष्ट फल जगमाहिं जेते. ढूंढ करके लाइये।
घ्रो नेत्र रसना लगै सुंदर. फल अनूप चढाइये॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्री सम्मेदशिखरसिद्ध-क्षेत्रेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

वसुद्रव्ययुत शुभ अर्घ लेकर. मनप्रफुलित कीजिये। तुम दास यह वरदान मांगै, मोछलछमी दीजिये॥ सम्मेदगगढतें० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नितकरें जे नरनारि पूजा. भाव भक्ति सु लायकें। तिनको सुजस कहता. 'जवाहर' हरष मनमें धारकैं॥ ते हैं सुरेश नरेश खगपति. समझ पूजाफल यही। सम्मेदगिरिकी करहु पूजा. पाय हो शिवपुरमही ॥ १० ॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्य. पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अथाशीर्वाद । रोला छंद ।

परम शिखरसम्मेद सबहिको है सुख करता ।
वंदें जे नरनारि तिन्होंके अघ सब हरता ॥
नरक पशूगति टरै सुक्ख जगके बहु पावें ।
नरपति सुरपति होंय, फेरि शिवपुरको जावें ॥

इत्याशीर्वादः । पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

अथ उपदेश ।

दोहा--जे तीरथ वंदें नहीं, सुनें धर्म नहिं सार ।
ते भववनमें भ्रमहिंगे, कबहुं न पावें पार ॥१॥
नरभव उत्तम पायकें, श्रावककुल अवतार ।
पूजा जिनवरकी करें, ते उतरें भवपार ॥ २ ॥
सबविधिजोग जु पायके, शिखर न बंदें सार ।
रतन पदारथ पाय ते, दे समुद्रमें डार ॥ ३ ॥

नोट--हुंडावसर्पिणीकालदोषतें अबकी बार चार तीर्थंकर अन्य अन्य जगहसे मुक्तिधाम पधारे हैं । श्वेताम्बरोंने सम्मेदशिखरजी पर चार कूट उनके भी स्थापन कर दिये हैं, उनको अर्घ चढानेके लिये श्लोक व मन्त्र--

न० ११ आदिनाथ सर्वसिद्धवरकूट । ढाल कातिक ।

प्राणी हो आदीश्वर महाराजजी, अष्टापद शि-
खयान हो । पूजत सुर हर नर सकल, सो पावे ;

निर्वाण हो ।। प्राणी हम पूजत इनहीं सदा, ये नाशैं भवभव भीति हो । प्राणी पूजौं मन वच काय कर ।। १ ।।

ओं ह्रीं श्रीऋषभनाथजिनेंद्रादिमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीकैलाशगिरिसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

नं० १५ वासुपूज्य मंदारगिरि । सोरठा—

वासुपूज्य जिनराय, चम्पापुरतैं शिव गये ।
मनवचजोग लगाय, पूजों पदयुग अर्घ ले ।।२।।

ओं ह्रीं वासुपूज्यसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीचंपापुर सिद्धक्षेत्रेभ्योअर्घंनि०

नं० २५ नेमिनाथ उर्जयंतकूट ।

दोहा-नेमीश्वर तजि राजमति, लीनी दीक्षा जाय ।
सिद्ध भये गिरनारतैं, पूजों अर्घ बनाय ।।३।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीगिरिनारसिद्धक्षेत्रेभ्यः अर्घं

नं० २१ महावीरकूट । सुन्दरी छंद—

वर्द्धमान जिनेश्वर पूजिये । सकलपातक दूर सु कीजिये । गयहु पावापुरतैं मोक्षको, तिनहिं पूजत अर्घसँजोयके ।। ४ ।।

ओं ह्रीं श्रीमहावीर सिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्रेभ्य अर्घं०

नं० १ चौबीसगणधर प्रथम टोंक ।

दोहा—तीर्थंकर चौबीसके, गणनायक हैं जेह ।

तिनको पूजों अर्घ ले, मनवच धारि सनेह ।५।
ओं ह्रीं चतुर्विंशतिजिनगणधरचरणकमलेभ्यो अर्घं निर्वपामीति०

सिद्धक्षेत्र जे और हैं भरतक्षेत्रके ठांहि । अवर जु अतिशयक्षेत्र हैं, कहे जिनागम मांहिं ॥ तिनके नाम सु लेतही, पाप दूर होजाय । ते सब पूजों अर्घ ले, भवभवमें सुखदाय ॥ ६ ॥
ओं ह्रीं श्रीभरतक्षेत्रसम्बंधीसिद्धक्षेत्राऽतिशयसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं नि०

सोरठा ।

द्वीप अढाईमाहिं. सिद्धक्षेत्र जे और हैं ।
पूजों अर्घ चढाय. भवभवके अघनाश हैं ॥७॥
ओं ह्रीं ढाई द्वीपके विषै विद्यमान समस्त सिद्धक्षेत्रेभ्योऽर्घं निर्व०

अडिल्ल ।

पूजों तीस चौवीस परम सुखदायजू । भूत भविष्यत वर्तमान गुणगाय जू ॥ अरु विदेहके बीस नमों शिरनाय जू । भर्चों अर्घ बनाय सु विघन पलाय जू ॥ ८ ॥
ओं ह्रीं श्रीभूतभविष्यद्वर्त्तमानसंबंधिविंशच्चतुर्विंशतिजिनेभ्योविदेहक्षेत्रेशाश्वतविद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्योश्च अर्घं निर्वपामीति०

दोहा—कृत्याकृत्रिम जे कहे. तीनलोकके माय ।

तै सब पूजौं अर्घ ले, हाथ जोर शिरनाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीतीनलोकसंबंधीकृत्याकृत्रिमजिनालयस्थजिनबिंबेभ्यो...

अथ जयमाला । लोलतरंग छंद ।

मनमोहन तीरथ शुभ जानो, पावन परम सुक्षेत्र प्रमानो । उन्नत शिखर अनूपम सोहै, देखत ताहि सुरासुर मोहै ॥ दोहा-

तीरथ परम सुहावनो, शिखर समेद विशाल ।
कहत अल्पबुधि उक्तिसों, सुखदायक जयमाल ॥

चौपाई १५ मात्रा ।

सिद्धक्षेत्र तीरथ सुखदाइ, वंदत पाप दूर हुइ आइ । शिखरशीशपर कूट मनोग्य, कहे बीस अति शोभा योग्य ॥ १ ॥ प्रथम सिद्धवरकूट सुथान । अजितनाथको मुक्ति सुथान ॥ कूटतनो दरशन फल एह, कोटि बतीस उपास गिनेह ॥ २ ॥ दूजो धवलकूट है नाम । संभवप्रभु जहँतैं शिवधाम ॥ दरशकोटि प्रोषध-फल जान, लाख बियालिस कह्यो बखान ॥३॥ आनँदकूट महासुखदाय, जहँतैं अभिनंदन शिव

नाय। कूटतनो दरशन इमि जान. लाख उपास
तणो फलमान ॥ ४ ॥ अविचल कूट महासुख
वेश. मुक्ति गये जहँ सुमति जिनेश। कूटभाव
धरि पूजे कोय. एक कोटि प्रोषधफल होय।५।
मोहनकूट मनोहर जान. पद्मप्रभ जहँतैं निर्वान
कूट पूज फल लेहु सुजान. कोटि उपास कह्यो
भगवान ॥ ६ ॥ मनमोहन है कूट प्रभास. मुक्ति
गए जहँ नाथ सुपास। पूजे कूट महाफल होय
कोटि बतीस उपास जु सोय ॥ ७ ॥ चंद्रप्रभका
मुक्ति सुधाम. परम विशाल ललितघटनाम।
कूटतनो दरशन फलजान, प्रोषध सोलहलाख
बखान ॥ ८ ॥ सुप्रभ कूट महासुखदाय, जहँतैं
पुष्पदंत शिवपाय। पूजो कूट महाफल लेव.
कोडि उपास कह्यो जिनदेव ॥९॥ श्रीविद्युतवर
कूटमहान. मोक्ष गये शीतल धरि ध्यान। पूजै
त्रिविधजोग कर कोय. कोडि उपासतनो फल
होय ॥ १० ॥ संकुलकूट महाशुभ जान, श्रीश्रे-
यांस गये शिवथान। कूटतनो दर्शनफल सुन्यो,

कोडि उपास जिनेश्वर भन्यो ॥११॥ कूटसुवीर परम सुखदाय, विमल जिनेश जहां शिवपाय। मन वच दरश करै जो कोय, कोटि उपासतनो फल होय ॥ १२ ॥ कूट स्वयंभू सुभग सु नाम, गये अनंत अमरपुरधाम। यही कूटको दरशन करै, कोटि उपासतनो फल धरै ॥ १३ ॥ है सुदत्तवर कूट महान, जहँतैं धर्मनाथ निरवान। परम विशाल कूट है सोय, कोटि उपास दरश फल होय ॥ १४ ॥ कूट प्रभास परम शुभ कह्यो शांतिनाथ जहँतैं शिव लह्यो। कूटतनो दरशन है सोय, एक कोडि प्रोषधफल होय ॥ १५ ॥ परमज्ञानधर है शुभकूट, शिवपुर कुंथु गये अघछूट। जाकों पूजें जे करजोडि, फल उपवास कह्यो इक कोडि ॥ १६ ॥ नाटककूट महाशुभ जान, जहँतैं शिवपुर अर भगवान। दरशन करै कूटको जोय, छ्यानवकोटि वासफल होय ॥१७॥ संबलकूट मल्लिजिनराज, जहँतैं मोक्ष भये शुभ काज। कूटदरशफल कह्यो जिनेश, एककोडि

श्रोषध शुभ वेश ॥ १८ ॥ निर्जर कूट कह्यो सुख
दाय, मुनिसुव्रत जहँतैं शिव जाय। कूटतनो
अब दरशन सोय, एक कोडि प्रोषध फल होय
॥ १९ ॥ कूट मित्रधरतैं नामि मुक्त, पूजत पाय
सुरासुरयुक्त। कूटतनो फल है सुखकंद, कोटि
उपास कह्यो जिनचंद ॥२०॥ श्रीप्रभु पार्श्वनाथ
जिनराज, चहुंगतितैं छूटे महाराज। सुवरण
भद्र कूटको नाम. तासों मोक्ष गये सुखधाम
॥२१॥ तीनलोक हितकरण अनूप. वंदत ताहि
सुरासुर भूप। चिंतामणि सुरवृक्ष समान. ऋद्धि
सिद्धि मंगल सुखदान ॥२२॥ नवनिधि चित्रा-
वेल समान. जातैं सुक्ख अनूपम जान। पारस
और काम सुरधेनु. नानाविध आनँदको देन
॥२३॥ व्याधिविकार जाहिं सब भाज. मनचीते
पूरे हैं काज। भवदधिरोगविनाशक सोय. औ-
षधि जगमें अवर न कोय ॥ २४ ॥ निरमल
परम थान उत्कृष्ट, वंदत पाप भजै अरु दुष्ट।
जो नर ध्यावतपुण्य कमाय,जशगावत सबकर्म

नशाय ॥ २५ ॥ कटैं अनादिकालके पाप, भजे सकल छिनमें संताप। नरपति इंद्र फणेंद्र जु सवै, और खगेंद्र मृगेंद्र जु नवै ॥ २६ ॥ नित सुर सुरी करैं उच्चार, नाचत गावत विविधप्रकार बहुविध भक्ति करै मनलाय, विविधभांति वादित्र बजाय ॥ २७ ॥ द्रमद्रमद्रमता बजै मृदंग घनघन घंट बजै मुहचंग। झुनझुन झुनझुन झुनिया झुनै सरसरसर सारंगी धुनै ॥ २८ ॥ मुरली बीन बजै धुनि मिष्ट, पटहा तूर सुरान्वित पुष्ट। सब सुरगण थुति गावत सार, सुरगण नाचत बहुत प्रकार ॥ २९ ॥ झन नन नन ना नूपुर वान, तन नन नन ना तोरत तान। ताथेइ थेइ थेइ थेइ कर चाल. सुर नाचत नावत निज भाल ॥ ३० ॥ नाचत गावत नाना रंग. लेत जहां सुर आनँद संग। नितप्रति सुर जहँ वंदन जाय. नानाविधिके मंगल गाय ॥ ३१ ॥ अनहद धुनिकी मोद जु होय. भापति वृषकी अति ही होय। तातैं हमको सुख दे सोय. गिरवर वंदों

करधरि दोय ॥ ३२ ॥ मारुत मंद सुगंध चलेय. गंधोदक जहँ नित वर्षेय । जियको जातिविरोध न होय. गिरिवर वंदों करधरि दोय ॥ ३३॥ ज्ञान चरन तप साधन सोय. निज अनुभवको ध्यान जु होय । शिवमंदिरको द्वारो सोय. गिरिवर वंदों करधरि दोय॥ ३४॥ जो भवि वंदै एकहि बार नरक निगोद पशू गति टार । सुर शिव-पदको पावै सोय. गिरिवर वंदों कर धरि दोय ॥ ३५ ॥ जाकी महिमा अगम अपार. गणधर कहत न पावै पार । तुच्छबुद्धि मैं मतिकर हीन कही भक्तिवश केवल लीन ॥ ३६ ॥

घत्ता छन्द ।

श्रीसिधखेतं. अति सुखदेतं शीघ्रहि भवदधि पारकरं । अरिकर्म विनाशन शिवसुखभासन. जय गिरिवर जगतारवरं ॥ ३७ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

शिखर सु पूजैं जो सदा, मनवचतन हरखाय ।
दास जवाहर यों कही, सो शिवपुरको जाय ॥

जगचंद्रोपम चूड़ामणिसम परम धरम दाता ॥ २ ॥ करम तुम चूरण कर डारे, जय शिवकामिनिकन्त जिनेश्वर, सबहीके प्यारे ॥ प्रभू तुम अगणित बलधारी, अतुलअनंतचतुष्टय धारक सबको सुखकारी ॥ ३ ॥ प्रभू तुम तपलछमी धरता, धरम धुरंधर धीर जिनेश्वर, स्वर्ग मुक्ति करता । प्रभु तुम रत्नत्रयधारी, तारणतरण जिनेश्वर स्वामी सबको हितकारी ॥ ४ ॥ प्रभू तुम संशयमदहारी, निर्विकार निर्दोष जिनेश्वर, गुण अनन्तधारी । प्रभू तुम कामसुभट विजई, धर संयम व्रतपाल जिनेश्वर चारितदलसजई ॥ ५ ॥ प्रभू तुम मोह महा मारयो, क्रोधमानमायाको तजकर शिवपदको धारयो । प्रभू गुणसागर हो भारी, ज्ञानजिहाज बैठके गणधर पहुंचे नहिं पारी ॥ ६ ॥ प्रभू गुणकीरति बेलि बढी, यतन विना जगमंडपऊपर, आपुहितैं जु चढी । कुदेव यश अब जो नित चाहैं वे अपने घरहीके भीतर, यशको नहिं लाहैं ॥ ७ ॥ प्रभू तुम सबको सुखदाई, जनम जनमके पाप कटत हैं तुमरे गुण गाई । जगतमें बहु पदार्थ जानो, सुरतरु चिन्तामणि पारस है नवनिधिको मानो ॥ ८ ॥ अरे इक भव जानो भाई, जो नियोग इह जियको होई, किंचित सुखदाई । करूं मैं प्रभु चरणन सेवा, जनम जनम सुखदायक प्रभुजी तुमही हो देवा ॥ ९ ॥ तुम्ही हो कृपानाथ स्वामी, तुम बाधव जगतात दयानिधि अन्तरके जामी । प्रभू तुम सब सुखके दाता, जगजीवनको पार लगाकर देते सुखसाता ॥ १० ॥ प्रभू तुम गुणरत्नखानी, तुम पुनीत समदर्शी प्रभुजी तुमही सब जानी । प्रभू बिन तीन कालमाहीं, नहिं नहिं शरण जीवको कोई, या जगके माहीं ॥ ११ ॥ प्रभू तुम करुणानिधि बाधा, तुमसनमुख हम ठाढे

निशिदिन जोरैं जुग हाथा। होय नहिं जबलों निरवाना जग-निवास छूटे अघ नाहीं, दुखको जो दाना ॥ १२ ॥ प्रभू तुम चरणों जवासा; भव भव मिलै करत या अरजी है 'जवार' दासा। और नहिं मागत प्रभु तुमसों, है दयाल दीजै वरदाना खुशी होय हमसों ॥ १३ ॥

दोहा—त्रिभुवनपति अरजी सुनो, कृपानाथ गुणखान।
भवसागर तैं काढिये, शिवपद दे भगवान ॥ १ ॥

अडिल्ल—अथ वैसाख वदी नवमी शुभ जानिये। शुक्रवारके दिना समापत मानिये ॥ इक वसु नवको अंक एक अवफिर लिखो। संवत यही प्रमान सरस मनमें लखो ॥ २ ॥

दोहा—जे नर नारी भावसों, पूजैं श्रीजिनदेव। नानाविधि सुख भोगके, पावे शिव स्वयमेव ॥ ३ ॥ तिहँको इकदृष्टांतहै' सुनो भव्यजन लोय। श्रद्धातैं पूजा करैं, रत्नसमान जु होय ॥ ४ ॥ विन श्रद्धा पूजा करैं काच समान सुजान। रतन बडो है मोलको, थुर मोलो काच समान ॥ ५ ॥ वहुत करी तो क्या भई, भाव न मनमें लाय। श्रद्धासे थोरी करै, पावै पद सुखदाय ॥ ६ ॥ श्रद्धासे थोरी करौ, लेहु वहुतकर मान। प्रापति होवै पुण्यकी, पावै पद निरवान ॥ ७ ॥ तुच्छ वुद्धि मेरी सही, पंडित करो विचार। भूल चूक अब होय जो, लीज्यो चतुर सुधार ॥ ८ ॥ समाप्त।

१११। श्रीगिरनारक्षेत्र पूजा।

दोहा—वंदौं नेमि जिनेश पद, नेमि-धर्म-दातार
नेम धुरंधर परम गुरु, भविजन सुख कर्तार

जिनवाणीको प्रणमिकर गुरु गणधर उरधार॥
सिद्धक्षेत्र पूजा रचौं, सब जीवन हितकार।
उर्जयंत गिरिनाम तस, कह्यो जगत विख्यात।
गिरिनारी तासों कहत, देखत मन हर्षात ॥३॥

द्रुतविलंबित तथा सुन्दरी छंद।

गिरिसुउन्नत सुभगाकार है। पंचकूट उत्तंग सुधार है॥ वन मनोहर शिला सुहावनी। लखत सुंदर मनको भावनी। अवर कूट अनेक बने तहां। सिद्ध थान सु अति सुंदर जहां॥ देखि भविजन मन हर्षावते। सकल जन वंदनको आवते॥ ५॥

त्रिभंगी छंद।

तहँ नेमकुमारा व्रत धारा, कर्म विदारा शिव पाई। मुनि कोडि बहत्तर सात शतक धर तागिरिऊपर सुखदाई॥ है शिवपुरवासी गुणके राशी विधिथिति नाशी ऋद्धिधरा। तिनके गुणगाऊं पूज रचाऊं मन हर्षाऊं सिद्धिकरा॥६॥

दोहा—ऐसे क्षेत्र महान तिहिं, पूजों मनबचकाय।
थापना त्रयबार कर- तिष्ठ तिष्ठ इत आय॥

ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्री गिरनारसिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अष्टक कवित्त।

लेकर नीर सुक्षीरसमान महा सुखदान सुप्रासुक लाई। दे त्रय धार जजों चरणा हरना मम जन्म जरा दुखदाई॥ नेमिपती तज राजमती भये बालयती तहँतें शिवपाई॥ कोडि वहत्तरि सातसौ सिद्ध मुनीश भये सु जजों हरषाई॥१॥

ओं ह्रीं श्रीगिरिनारसिद्धक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा॥१॥

चंदनगारि मिलाय सुगंध सु, ल्याय कटोरीमें धरना। मोहमहातममेटनकाज सु चर्चतु हों तुम्हरे चरना॥ नेम०॥ चंदनं॥ अक्षत उज्वल ल्याय धरों, तहँ पुंज करो मनको हर्षाई। देहु अखयपद प्रभु करुणाकर, फेर न या भवबास कराई। नेमि०॥ अक्षतान्॥ फूल गुलाव चमेली वेल कदंब सु चंपक वीन सु ल्याई। प्राशुकपुष्प लवंग चढाय सु गाय प्रभू गुणकाम नशाई॥ नेम०॥ पुष्पं॥ नेवज नव्य करों भरथाल सुकंचन भा

जनमें धर भाई। मिष्ट मनोहर क्षेपत हों यह रोग क्षुधा हरियो जिनराई ॥ नेम० ॥ नैवेद्यं ॥ धूप दशांग सुगंधमई कर खेवहु अग्निमझार सुहाई। शीघ्रहिं अर्ज सुनो जिनजी मम कर्म महावन देउ जराई ॥नेम०॥धूपं॥ ले फल सार सुंगधमई रसनाहृद नेत्रनको सुखदाई। क्षेपत हों तुम्हरे चरणा प्रभु देहु हमैं शिवकी ठकुराई नेम० ॥ फलं ॥ ले वसु द्रव्यसु अर्घ करों धर थाल सुमध्य महा हरषाई। पूजत हों तुमरे चरणा हरिये वसुकर्मबली दुखदाई। नेम०॥ अर्घं॥ दोहा—पूजत हों वसुद्रव्य ले, सिद्धक्षेत्र सुखदाय निजहितहेतु सुहावनो, पूरण अर्घ चढ़ाय ॥ पूर्णार्घं ॥ १० ॥

पंच कल्याणक अर्घ। छंद पाइता।

कार्तिक सुदिकी छठि जानो। गर्भागम तादिन मानो ॥ उत इंद्र जजैं उस थानी। इत पूजत हम हरषानी ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लाषष्ट्यां गर्भमंगल प्राप्ताय नेमिनाथजिनेंद्रायअर्घं

श्रावणसुदि छठि सुखकारी। तब जन्म महो-

त्सव धारी । सुरराज सुमेर न्हवाई । हम पूजत इत सुखपाई ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लाषष्ठ्याजन्ममंगलमंडितायनेमिनाथजिनें० अर्घं

सित सावनकी छठि प्यारी । तादिन प्रभु दीक्षा धारी ॥ तपघोर वीर तहँ करना । हम पूजत तिनके चरणा ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लपष्ठीदिने दीक्षामंगलप्राप्तायनेमिनाथजिनें० अर्घं

एकम सुदि आश्विन भाषा । तब केवल ज्ञान प्रकाशा ॥ हरि समवसरण तब कीना । हम पूजत इत सुख लीना ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं आश्विनशुक्लाप्रतिपदि केवलज्ञानप्राप्तायनेमिनाथजिनें० अर्घं

सित अष्टमि मास अषाढा । तब योग प्रभूने छाडा । जिन लई मोक्ष ठकुराई । इत पूजत चरणा भाई ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्या मोक्षमंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनें० अर्घं

अडिल्ल--कोडि बहत्तरि सत सैकडा जानिये । मुनिवर मुक्ति गये तहँतैं सु प्रमाणिये ॥ पूजों तिनके चरण सु ननबचकायकैं । वसुविध द्रव्यमिलायसुगायबजायकैं ॥ पूर्णार्घं० ॥

जयमाला । दोहा ।

सिद्धक्षेत्र गिरनार शुभ, सब जीवन सुखदाय।
कहों तासु जयमालिका, सुनतहि पाप नशाय॥

पद्धरी छंद ।

जय सिद्धक्षेत्र तीरथ महान। गिरिनारि सुगिरि उन्नत बखान ॥ तहं झूनागढ़ है नगर सार। सौराष्ट्रदेशके मधिविथार ॥२॥ तिस झूनागढ से चले सोइ। समभूमि कोस वर तीन होइ ॥ दरवाजेसे चल कोस आध। इक नदी बहत है जल अगाध ॥३॥ पर्वत उत्तरदक्षिण सु दोय। मधि बहत नदी उज्वल सु तोय॥ ता नदीमध्य कइ कुंड जान। दोनों तट मंदिर बने मान ॥४॥ तहं वैरागी वैष्णव रहाय। भिक्षाकारण तीरथ कराय॥ इक कोस तहां यह मच्यो ख्याल। आगें इक वरनदि बहत नाल ॥ ५ ॥ तहं श्रावक-जन करते सनान। धो द्रव्य चलत आगें सुजान ॥ फिर मृगीकुंड इक नाम जान। तहँ वैरागिनके बने थान ॥ ६ ॥ वैष्णव तीरथ जहँ र-

गोइ। वैष्णव पूजत आनंद होइ॥ आगैं
चल डेढ सु कोस जाव। फिर छोटे पर्वतको च-
ढाव॥ ७॥ तहँ तीन कुंड सोहैं महान। श्री-
जिनके युग मंदिर वखान॥ मंदिर दिगंवरी
दोय जान। श्वेतांवरके वहुते प्रमान॥८॥ जहँ
वनी धर्मशाला सु जोय। जलकुंड तहां निर्मल
सु तोय॥ तहँ श्वेतांवरगण दिशां जाय। ताकुं-
डमाहिं नितही नहाय॥ ९॥ फिर आगें पर्वत
पर चढाउ। चढि प्रथम कूटको चले जाउ॥
तहँ दर्शन कर आगें सु जाय। तहँ दुतिय टोंक
के दर्श पाय॥१०॥ तहं नेमनाथके चरण जान
फिर है उतार भारी महान॥ तहं चढकर पंचम
टोंक जाय। अति कठिन चढाव तहां लखाय
॥११॥ श्रीनेमनाथका मुक्ति थान। देखत नय-
नों अति हर्षमान॥ इक विंव चरनयुग तहां
जान। भवि करत वंदना हर्ष ठान॥१२॥ कोउ
करते जय जय भक्ति लाइ। कोऊ थुति पढ़ते
तहँ सुनाय॥ तुम त्रिभुवनपति त्रैलोक्यपाल।

मम दुःख दूर कीजे दयाल ॥ १३ ॥ तुम राज-
ऋद्धि भुगती न कोइ। यह अथिररूप संसार
जोइ ॥ तज मातपिता घर कुटुम द्वार। तज
राजमतीसी सती नार ॥ १४ ॥ द्वादशभावन
भाई निदान। पशुबंदि छोड दे अभय दान।
शेसावनमें दीक्षा सुधार। तप करके कर्म किये
सुछार ॥१५॥ ताही बन केवल ऋद्धि पाय।
इंद्रादिक पूजे चरण आय॥ तहँ समवसरण रचि-
यो विशाल। मणिपंच वर्णकर अति रसाल ।१६।
तहँ वेदी कोट सभा अनूप। दरवाजे भूमि बनी
सुरूप॥ वसुप्रातिहार्य छत्रादि सार। वर द्वादश
सभा बनी अपार॥ १७॥ करके विहार देशों
मझार। भवि जीव करे भवसिंधु पार॥ पुन
टोंक पंचमीको सुजाय। शिव नाथ लह्यो आनंद
पाय॥१८॥ सो पूजनीक वह थान जान। वंदत
जन तिनके पाप हान॥ तहँतें सु बहत्तर कोडि
और। मुनि सातशतक सब कहे जोर॥१९॥
इस पर्वतसों सब मोक्ष पाय। सब भूमि सु पूजन

योग्य थाय ॥ तहँ देश देशके भव्य आय। वंदन कर वहु आनंद पाय ॥ २० ॥ पूजन कर कीने पाप नाश। वहु पुण्यवंध कीनो प्रकाश ॥ यह ऐसो क्षेत्र महान जान। हम करी वंदना हर्ष ठान ॥ २१ ॥ उनईस शतक उनतीस जान। संवत अष्टमि सित फाग मान ॥ सब संग सहित वंदन कराय। पूजा कीनी आनंद पाय ॥२२॥ अव दुःख दूर कीजे दयाल। कहै 'चंद्र' कृपा कीजे कृपाल ॥ मैं अल्पवुद्धि जयमाल गाय। भवि जीव शुद्ध लीज्यो वनाय ॥ २३ ॥

घत्ता—तुम दयाविशाला सब क्षितिपाला, तुमगु-णमाला कंठ धरी। ते भव्य विशाला तज जग-जाला, नावत भाला मुक्तिवरी ॥ २४ ॥

ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा। समाप्त

११२। श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र पूजा।

उत्सव किय पनवार जहँ, सुरगणयुत हरि आय।
जजों सुथल वसुपूज्यसुत, चंपापुर हर्षाय ॥१॥

ओं ह्रीं श्री चंपापुर सिद्धक्षेत्र अत्रावतरावतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं श्री चंपापुर सिद्धक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं श्री चंपापुर सिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक। चाल नंदीश्वरपूजनकी।

सम अमिय विगतत्रस वारि. लै हिम कुंभ भरा
लख सुखद त्रिगदहरतार, दे त्रय धार भरा॥
श्रीवासुपूज्य जिनराय. निर्वृतिथान प्रिया।१।
चंपापुर थल सुखदाय, पूजों हर्ष हिया॥

ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं॥

कश्मीरी केशर सार. अति ही पवित्र खरी। शीतल चंदनसँग सार लै भव तापहरी॥ श्री० ॥ चंदनं॥ मणिद्युतिसम खंडविहीन, तंदुल लै नीके। सौरभ युत नव वर चीन, शालि महानीके ॥ श्रीवासुपूज्य० ॥ अक्षतान् ॥ ३ ॥ अलि लुभन सुभन दृग घ्राण, सुमन जु सुरद्रुमके। लै वाहिम अर्जुनवान, सुमन दमन झुमके॥ श्रीवासुपूज्य० ॥ पुष्पं॥ ४॥ रस पुरित तुरित पकवान. पक्व यथोक्त घृती। क्षुधगदमदमद-मन जान लै विध युक्तकृती॥ श्रीवासुपूज्य०॥ नैवेद्य ॥ ५ ॥ तमअज्ञमनाशक सूर, शिवमग-

परकाशी। लै रत्नद्वीप द्युतिपूर, अनुपम सुख राशी॥ श्रीवासुपूज्य जिन०॥ दीपं॥ ६॥ वर परिमल द्रव्य अनूप, सोध पवित्र करी। तस चूरण कर कर धूप, लै विधिकुंज हरी॥ श्री वासुपूज्य०॥ धूपं॥७॥ फल पक्व मधुररसवान, प्रासुक बहुविधके। लखि सुखद रसनदृगघ्रान, लै भद पद सिधके॥ श्रीवासु०॥ फलं॥ ८॥ जलफलवसु द्रव्य मिलाय, लै भर हिमथारी॥ वसुअंग धरापर ल्याय, प्रमुदित चितधारी।श्री· वासुपूज्य०॥ अर्घं॥

अथ जयमाला।

दोहा-भये द्वादशम तीर्थपति, चंपापुर निर्वान। तिनगुणकी जयमाल कछु,कहों श्रवण सुखदान॥

पद्धरि छंद।

जय जय श्रीचंपापुर सुधाम। जहँ राजत नृप वसुपूज नाम॥ जय पौन पल्यसै धर्महीन। भव भ्रमन दुःखमय लख प्रवीन।१। उर करुणाधर सो तम विडार। उपजे किरणावलिधर अपार॥

श्री वासुपूज्य तिनके जु बाल। द्वादशम तीर्थ-
कर्त्ता विशाल॥२॥ भवभोग देहतैं विरत होय।
वय बालमाहिं ही नाथ सोय॥ सिद्धन नमि
महाव्रत भार लीन। तप द्वादशविध उग्रोग्र
कीन॥ ३ ॥ तहँ मोक्ष ससत्रय आयु येह। दश
प्रकृति पूर्व ही क्षय करेह॥ श्रेणीजु क्षपक आ-
रूढ होय। गुण नवमभाग नवमाहिं सोय॥४॥
सोलह वसु इक इक षट इकेय। इक इक इक
इम इन क्रम सहेय॥ पुनि दशमथान इक लोभ
टार। द्वादशमथान सोलह विडार॥ ५ ॥ है
अनँत चतुष्टय युक्त स्वाम। पायो सब सुखद
सयोग ठाम॥ तहँ काल त्रिगोचर सर्व ज्ञेय।
युगपत हि समय इकमहि लखेय॥ ६ ॥ कछु
काल द्विविध वृष अमिय वृष्टि। कर पोषे भवि
भुवि धान्यसृष्टि॥ इक मास आयु अवशेष जान॥
जिन योगनकी सुभवृत्ति हान॥७॥ ताहीथल
तृतिशितध्यान ध्याय। चतुदशमथान निवसे
जिनाय॥ तहँ दुचरम समयमझार ईश। प्रकृती

शु बहत्तर तिनहि पीस ॥८॥ तेन   तन
समयमझार। करके श्रीजगतेश्वर प्रहार॥ अष्टमि
अवनी इक समयमद्ध। निवसे पाकर निज
अचल रिद्ध ॥९॥ युत गुण वसु प्रमुख अमित
गुणेश। ह्वै रहे सदा ही इमहि वेश॥ तवहीतैं
सो थानक पवित्र। त्रैलोक्यपूज्य गायो विचित्र
॥१०॥ मैं तसु रज निज मस्तक लगाय। वंदौं
पुन पुन भुवि शीश नाय॥ ताही पद वांछा
उरमझार। धर अन्य चाहबुद्धी विडार ॥११॥
दोहा--श्रीचंपापुर जो पुरुष, पूजै मन वच काय।
वर्णि 'दौल' सो पाय ही, सुख संपति अधिकाय।

इत्याशीर्वादः।

११३। श्रीपावापुर-सिद्धक्षेत्र-पूजा।

जिहि पावापुर छित अघति हत सन्मति जगदीश
भये सिद्ध शुभथान सो, जजों नाय निज शीश॥

ओं ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीपावापुर सिद्धक्षेत्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्

अथ अष्टक । गीताछंद ।

शुचि सलिल शीतौ कलिलरीतौ श्रमन चीतो लै जिसो ॥ भर कनक झारी त्रिगद हारी दै त्रिधारी जिततृषो ॥ वर पद्मवन भर पद्मसरवर बहिर पावाग्राम ही । शिवधाम सन्मत स्वामि पायो, जजों सो सुखदा मही ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो वीरनाथजिनेन्द्रस्य जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भव भ्रमन भ्रमत अशर्म तपकी, तपन कर तप ताइयो । तसु बलयकंदन मलय-चंदन, उदक सँग घिस ल्याइयो ॥ वरपद्म० ॥चंदनं०॥तंदुल नवीन अखंड लीने, ले महीने ऊजरे । मणिकुंद इंदु तुषार द्युति-जित, कनरकाबीमें धरे॥ वर० ॥ अक्षतान् ॥ मकरंदलोभन सुमन शोभन सुरभि चोभन लेय जी । मद समर हरवर अमर तरुके, घ्रान-दृग हरखेय जी ॥वरपद्म०॥पुष्पं०॥ नैवेद्य पावन छुध मिटावन सेव्य भावन युत किया। रस मिष्ट पूरति इष्ट सूरति लेयकर प्रभु

हित हिया ॥ वरपद्म० ॥ नैवेद्यं० ॥ तमअघ नाशक स्वपरभाशक ज्ञेय परकाशक सही। हिमपात्रमें धर मौल्यविन वर द्योतधर मणि दीपही ॥वर०॥दीपं॥ आमोदकारी वस्तुसारी विध हुचारी-जारनी। तसु तूप कर कर धूप ले दश दिश-सुरभि-विस्तारनी ॥वरपद्म०॥धूपं॥ फल भक्ष पक्ष सुचक्ष्य सोहन, सुक्ष जनमन मोहने वर सुरस पूरित त्वरित मधुरत लेयकर अति सोहने ॥ वरपद्म० ॥ फलं ॥ जल गंध आदि मिलाय वसुविध थारस्वर्ण भरायकें। मन प्रमुद भाव उपाय कर ले आय अर्घ बनायकें ॥ वरपद्म० ॥ अर्घं ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—चरम तीर्थंकरतार श्री-वर्द्धमान जगपाल।
कलमलदलविधविकल ह्वै, गाऊं तिन जयमाल॥

पद्धरि छंद।

जयजय सुवीर जिन मुक्तिथान पावापुरवनमध्य शोभवान ॥ जे सित अषाड छट स्वर्गधाम। तजें पुष्पोत्तर सुविमान ठाम ॥ १ ॥ कुंडलपुर

सिद्धारथ नृपेश। आये त्रिशला जननी उरेश॥ सित चैत्र त्रयोदशि युत त्रिज्ञान। जनमे तम अज्ञ-निवार भान ॥ २ ॥ पूर्वाह्ण धवल चउदिश दिनेश। किय नह्वन कनकगिरि-शिर सुरेश ॥ वय वर्ष तीस पद कुमरकाल। सुख दिव्य भोग भुगतेविशाल ॥३॥ मारगसिर अलि दशमी पवित्र। चढ चंद्रप्रभा शिविका विचित्र ॥ चलि पुरसों सिद्धन शीशनाय। धार्यो संजम वर शर्मदाय ।४। गतवर्ष दुदश कर तप-विधान। दिन शित वैशाख दशैं महान ॥ रिजुकूला सरिता तट स्व सोध। उपजायो जिनवर चरम बोध ॥ ५ ॥ तब ही हरि आज्ञा शिर चढाय। रचि समवसरण वर धनदराय ॥ चउसंघ प्रभृति गौतम गनेश। युत तीस वरष विहरे जिनेश॥ ॥ ६ ॥ भविजीवदेशना विविध देत। आये वर पावानगर खेत ॥ कार्तिक अलि अंतिम दिवस ईश। कर योग निरोध अघातिपीस ॥ ७ ॥ है अकल अमल इक समयमाहिं। पंचम गति

श्रीजिनाह ॥ तब सुरपति जिनरवि अस्त
। आये तुरंत चढि निज विमान ॥ ८ ॥
कर वपु अरचा थुति विविध भाँत। लै विविध
द्रव्य परिमल विख्यात ॥ तब ही अगनींद्र
नवाय शीश। संस्कार देहकी त्रिजगदीश ।९।
कर भस्म वंदना निज महीय। निवसे प्रभु गुन
चितवन स्वहीय। पुनि नर मुनि गनपति आय
आय। बंदी सो रज शिर नाय नाय ।१०। तब
हीसों सो दिन पूज्य मान। पूजत जिनगृह जन
हर्ष मान ॥ मैं पुन पुन तिस भुवि शीशधार।
बंदौं तिन गुणधर उर मझार ॥ ११ ॥ तिनही
का अब भी तीर्थ एह। बरतत दायक अति
शर्म गेह ॥ अरु दुखमकाल अवसान ताहि।
वर्तैगो भवतिथिहर सदाहि ॥ १२ ॥

कुसुमलता छंद।

श्रीसन्मति जिन अंघ्रिपद्म युगजजैं भव्य जो मन
वच काय। ताके जन्म जन्म संचित अघ जावहिं
इक छिन माहिं पलाय ॥ धनधान्यादिक शर्म

इंद्रपद लहै सो शर्म अतीन्द्री थाय। अजर अमर अविनाशी शिवथल वर्णों दौल रहै शिर नाय॥ १३॥

ओं ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

६। छठा अध्याय।

आरती-संग्रह।

११४ पंचपरमेष्ठी आदिकी आरती।

इहविधि मंगल आरति कीजै, पंच परमपद भज सुख लीजै॥टेक॥ पहली आरती श्रीजिनराजा। भव-दधिपारउतारजिहाजा॥ इहविध० ॥ १॥ दूसरि आरति सिद्धनकेरी। सुमरन करत मिटै भवफेरी॥ इहविध० ॥ २॥ तीजी आरति सूर मुनिंदा। जनममरनदुख दूर करिंदा॥ इहविध० ॥ ३॥ चौथी आरति श्रीउवझाया। दर्शन देखत पाप पलाया॥ ४॥ पांचमि आरति साधु तिहारी। कुमति-विनाशन शिव-अधिकारी॥ इहविध०॥ ५॥ छट्ठी ग्यारहप्रतिमा धारी। श्रावक वंदों आनँदकारी॥

इहविध० ॥ ६ ॥ सातमि आरति श्रीजिनवानी 'द्यानत' सुरगमुकति सुखदानी ॥ इहविध० ।७

११५ । आरती श्रीजिनराजकी ।

आरति श्रीजिनराज तिहारी, करमदलन संतन हितकारी ॥ टेक ॥ सुरनरअसुर करत तुम सेवा । तुमही सब देवनके देवा ॥ आरति श्री० ॥ १ ॥ पंचमहाव्रत दुद्धर धारे । रागरोष परिणाम विदारे ॥ आरति श्री० ॥२॥ भवभय भीत शरन जे आये । ते परमारथपंथ लगाये ॥ आरति श्री० ॥ ३ ॥ जो तुम नाथ जपै मन माहीं । जनममरनभय ताको नाहीं ॥ आरति श्री० ॥ ४ ॥ समवसरनसंपूरन शोभा । जीते क्रोधमानछललोभा ॥ आरति श्री० ॥५॥ तुम गुण हम कैसे करि गावैं । गणधर कहत पार नहिं पावैं ॥ आरति०॥६॥ करुणासागर करुणा कीजे । 'द्यानत' सेवकको सुख दीजे ॥ आ० ॥

११६ आरती श्रीमुनिराजकी ।

आरति कीजै श्रीमुनिराजकी, अधमउधारन

आतमकाजकी ॥ आरति कीजै० ॥ टेक ॥ जा लच्छीके सब अभिलाखी । सो साधन करदमवत नाखी ॥ आरति कीजै० ।१। सब जग जीत लियो जिन नारी । सो साधन नागनिवत छारी ॥ आरति० ॥ २ ॥ विषयन सब जगजिय वश कीने । ते साधन विषवत तज दीने ॥ आरति० ॥ ३ ॥ भुविको राज चहत सब प्रानी । जीरन तृणवत त्यागत ध्यानी ॥ आरति० ॥ ४ ॥ शत्रु मित्र दुखसुख सम मानै । लाभ अलाभ बराबर जानै ॥ आरति० ॥ ५ ॥ छहोंकायपीहरव्रत धारैं सबको आप समान निहारैं ॥ आरति० ॥ ६ ॥ इह आरती पढै जो गावै । 'द्यानत' सुरगमुकति सुख पावै ॥ आरति कीजै० ॥ ७ ॥

११७ निश्चय आरती ।

इहविध आरति करौं प्रभु तेरी । अमल अबाधित निज गुणकेरी ॥ टेक ॥ अचल अखंड अतुल अविनाशी । लोकालोक सकल परकाशी ॥ इहविध० ॥ १ ॥ ज्ञानदरससुखबल गुणधारी ।

परमातम अविकल अविकारी ॥इहविध०॥२॥ क्रोधआदि रागादि न तेरे। जनम जरामृत कर्म न नेरे ॥इहविध०॥३॥ अवपु अबंध करणसुख-नासी ॥ अभय अनाकुल शिवपदवासी ॥इह० ॥४॥ रूप न रेख न भेख न कोई। चिन्मूरति प्रभु तुम ही होई ॥इहविध०॥५॥ अलख अनादि अनंत अरोगी। सिद्ध विशुद्ध सुआतमभोगी इहविध० ॥६॥ गुन अनंत किम वचन बतावें। दीपचंद भवि भावन भावैं ॥ इहविध० ॥ ७ ॥

११८ आत्माकी आरती

करौं आरती आतम देवा, गुणपरजाय अनंत अभेवा ॥ करौं० ॥ टेक ॥ जामें सब जग जो जगमाहीं। वसत जगतमें जगसम नाहीं ॥करौं० ॥ १ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ध्यावें। साधु सकल जिहँको गुण गावैं। करौं ॥२॥ विन जाने जिय चिरभव डोले। जिहँ जाने ते शिवपट खोले ॥ करौं० ॥ ३ ॥ व्रती अविरती विधव्योहारा। सो तिहूँकालकरमसों न्यारा ॥ करौं० ॥ ४ ॥

'द्यानत' की अभिलाष प्रमानौं ॥ ७ ॥

१२० । आरती निश्चयआत्माकी ।

चौपाई ।

मंगलिआरती आतमराम । तनमंदिर मन उत्तम ठान ॥ मंगल० ॥ टेक ॥ समरसजलचंदन आनंद । तंदुल तत्त्वस्वरूप अमंद ॥ मंगल० ॥ ॥ १ ॥ समयसारफूलनकी माल । अनुभव-सुख नेवज भरि थाल ॥ मंगल० ॥ २ ॥ दीपकज्ञान ध्यानकी धूप । निरमलभाव महाफलरूप ॥ मं० ॥ ३ ॥ सुगुण भविकजन इकरँगलीन । निहचै नवधा भक्ति प्रवीन ॥ मंगल० ॥ ४ ॥ धुनि उतसाह सु अनहद गान । परम समाधिनिरत परधान ॥ मंगल० ॥ ५ ॥ बाहिज आतमभाव बहावै । अंतर ह्वै परमातम ध्यावै ॥ मंगल० ॥ ॥ ६ ॥ साहब सेवकभेद मिटाय । 'द्यानत' एक मेक होजाय । मंगल० ॥ ७ ॥

उपर्युक्त आरतियोंमेंसे इच्छानुसार एक या दो आरती बोलकर नीचे लिखा श्लोक, दोहा और मंत्र पढ़कर आरतीको मस्तकपर चढ़ावे ।

ज्ञानानंदमयी सदा, जयवंतो जिनभूप ॥ १ ॥

छंद चाल । (१४ मात्रा)

सफली मम लोचनद्वंद । देखत तुमको जिन-चंद ॥ मम तन मन शीतल एम । अमृतरस सींचत जेम ॥ २ ॥ तुम बोध अमोघ अपारा । दर्शन पुनि सर्व निहारा ॥ आनंद अतिंद्रिय राजै ॥ बल अतुल स्वरूप न त्याजै ॥ ३ ॥ इत्यादिक स्वगुन अनंता । अंतर्लक्ष्मी भगवंता ॥ बाहिज विभूति बहु सोहै । बरनन समर्थ कवि को है ॥ ४ ॥ तुम वृच्छ अशोक सुस्वच्छ । सब शोकहरनको दच्छ ॥ तहँ चंचरीक गुंजारैं । मानो तुव स्तोत्र उचारैं ॥ ५ ॥ शुभरत्न-मयूख विचित्र । सिंहासन शोभ पवित्र ॥ तहँ वीतराग छवि सोहै । तुम अंतरीक्ष मनमोहै ॥ ६ ॥ वर कुन्दकुन्द-अवदात । चामरव्रज सर्व सुहात ॥ तुम ऊपर मघवा ढारैं । धरि भक्तिभाव अघ टारैं ॥ ७ ॥ मुक्ताफल माल समेत । तुम ऊर्ध्व छत्रत्रयमेत ॥ मानो तारान्वित चंद । त्रयमूर्ति

धरी दुतिवृंद ॥८॥ शुभ दिव्य पटह बहु बाजैं। अतिशयजुत अधिक विराजैं॥ तुमरो जस घोकैं मानों। त्रैलोक्यनाथ यह जानों॥९॥ हरिचंदन सुमन सुहाये। दशदिशि सुगंध महकाये॥ अलिपुंज विगुंजत जामैं। शुभ वृष्टि होत तुम सामैं॥१०॥ भामंडलदीप्ति अखंड। छिप जात कोटि मार्तंड॥ जग-लोचनको सुखकारी। मिथ्यातमपटल निवारी॥११॥ तुमरी दिव्यध्वनि गाजे। विन इच्छा भविहितकाजे॥ जीवादिक तत्त्व प्रकाशी। भ्रमतमहर सूर्यप्रकाशी॥१२॥ इत्यादि विभूति अनंत। बाहिज अतिशय अरहंत॥ देखत ममभ्रमतम भागा। हित आहित ज्ञान उर जागा॥ १३ ॥ तुम सब लायक उपगारी। मैं दीन दुखी संसारी॥ तातैं सुनिये यह अरजी। तुम शरन लियो जिनवरजी॥ १४ ॥ मैं जीवद्रव्य विन अंग। लाग्यो अनादि विधि संग॥ तस निमित पाय दुख पाये। हम मिथ्यातादि महाये॥१५॥ निजगुन कबहूं नहिं भाये। सब

परपदार्थ अपनाये ॥ राते अराति करी सुखदुख
में ॥ ह्वैकरि निजधर्मविमुख मैं ॥१६॥ परचाह
दाह नित दाह्यो । नहिं शांतिसुधा अवगाह्यो
प्रभु नारकनरस्वरगतमैं । चिर भ्रमत भयौ भ्रम-
घतमैं ॥ १७ ॥ कीने बहु जामन मरना । नहिं
पायौ सांचौ शरना ॥ अब भाग उदय मो आयौ।
तुम दर्शन निर्मल पायौ ॥ १८ ॥ अति शांत
भयो उर मेरो । बाढ्यो उछाह शिवकेरो ॥ पर
विषयरहित आनंद । निज रस चाख्यो निरद्वंद
॥ १९ ॥ मुझ काजतने कारन हो। तुम देव
तरन तारन हो ॥ तातैं ऐसी अब कीज्यौ। तुम
चरन भक्ति मोहि दीज्यो ॥ २० ॥ दृगज्ञान
चरन परिपूर । पाऊं निश्चय भवचूर ॥ दुखदा-
यक विषय कषाय । इनमें परनति नहिं जाय
॥ २१ ॥ सुरराज समाज न चाहौं । आतम
समाधि अवगाहौं ॥ अरु इच्छा हो मनमानी ।
पूरौ सब केवलज्ञानी ॥ २२ ॥ दोहा—
गनपति पार न पावही, तुमगुनजलधि विशाल।

'भागचंद' तुव भक्ति ही, करै हमें वाचाल ॥२३॥

१२३। हरिगीतिका (२८ मात्रा)

तुम परमपावन देव जिन अरि,-रजरहस्य विनाशनं। तुम ज्ञान-दृग जलवीच त्रिभुवन कमलवत प्रतिभासनं ॥ आनंद निजज अनंत अन्य, अचिंत संतत परनये। बल अतुलकलित स्वभावतैं नहिं, खलितगुन अमिलित थये ॥ सब रागरुषहन परम श्रवन, स्वभावघननिर्मल दशा। इच्छारहित भविहित खिरत वच,सुनत ही भ्रमतमनशां। एकांतगहनसुदहन स्यात्पद वहनमय निजपर दया। जाके प्रसाद विषाद विन मुनिजन सपदि शिवपद लहा ॥ २ ॥ भूषनवसनसुमनादिविनतन, ध्यानमयमुद्रा दिपै। नासाग्रनयन सुपलक हलय न, तेज लखि खगगन छिपै ॥ पुनि वदननिरखत प्रशमजल,वरखत सुहरखतउर धरा। बुधि स्वपर परखत पुन्य आकर, कलिकलिल दरखत जरा ॥ ३ ॥ इत्यादि बहिरंतर असाधरन, सुविभव निधान

नी। इंद्रादिवंदपदारविंद, अनिंद तुम भगवान
जी॥ मैं चिरदुखी परचाहतैं, तवधर्म नियत न
उर धरयो॥ परदेव सेवकरी वहुत, नहिं काज
एकहु तहँ सरयो॥ ४॥ अव भागचंद उदय
भयो मैं शरन आयो तुम-तनी। इक दीजिये
वरदान तुम जस, स्वपददायक वुधमनी॥ पर
माहिं इष्ट-अनिष्ट-मति-तजि, मगन निजगुनमें
रहौं। दृग-ज्ञान-चरन समस्त पाऊं, 'भागचंद'
न पर चहौं॥ ५॥

(१२४)

त्रिभुवनगुरुस्वामीजी, करुणानिधिनामीजी
सुनि अंतरजामी, मेरी वीनतीजी॥ १॥ मैं
दास तिहाराजी, दुखिया वहु भाराजी। दुख
मेटनहारा तुम जादौंपतीजी॥ २॥ भरम्यो
संसाराजी, चिरविपति-भँडाराजी। कहिं सार
न सार, चहूँगति डोलियाजी॥ ३॥ दुखमेरु
समानाजी, सुख सरसों-दानाजी। अव जान
धरि ज्ञानतराजू तोलियाजी॥ ४॥ थावर-तन

पायाजी, त्रस नाम धरायाजी । कृमि कुंथु कहा-
या, मरि भँवरा हुवाजी ॥ पशुकाया सारीजी,
नानाविधधारीजी । जलचारी थलचारी, उडन
पखेरुवाजी ॥६॥ नरकनके माहींजी, दुखओर
न कहींजी । अग्नि घोर जहां है, सरिता खार
कीजी ॥ ७ ॥ पुनि असुर संहारैजी, निज वैर
विचारैजी । मिल बांधै अरु मारै, निरदय नार
कीजी ॥८॥ मानुष अवतारैजी, रह्यो गरभ मझा-
रैजी । रटि रोयो जनमत, बिरियां मैं घनोजी
॥९॥ जोबन तन रोगीजी, कै विरह वियोगी
जी । फिर भोगी बहुबिध, विरधपनाकी वेदना
जी ॥१०॥ सुरपदवी पाईजी, रंभा उरलाईजी ।
तहां देखि पराई, संपति झूरियोजी ॥११॥ माला
मुरझानीजी, जब आरति ठानीजी । थिति पूरन
जानी, मरत विसूरियोजी ॥१२॥ यों दुख भव
केरा जी, भुगते बहुतेराजी । प्रभु ! मेरे कहते
पार न है कहींजी ॥ १३ ॥ मिथ्यामदमाताजी
चाही नित साताजी । सुखदाता जगत्राता, तुम

जाने नहींजी ॥१४॥ प्रभु भागनि पायेजी गुन
श्रवण सुहायेजी । तकि आया सब सेवककी
विपदा हरोजी ॥ १५ ॥ भववास बसेराजी. फि
होय न फेराजी । सुख पावै जन तेरा. स्वामी सो
करोजी ॥ १६ ॥ तुम शरन सहाईजी. तुम स
ज्जन भाईजी । तुम माई तुम्हीं बाप दया मुझ
लीजियेजी ॥ १७ ॥ भूधर करजोरै जी ठाढ़ा
प्रभु ओरै जी । निजदास निहारो. निरभय की
जियेजी ॥ १८ ॥

१२० । ढाल—परमादी ।

अहो जगतगुरु एक. सुनियो अरज हमारी।
तुम हो दीनदयाल मैं दुखिया संसारी ॥ १ ॥
इस भववनमें वादि. काल अनादि गमायो।
भ्रम्यो चहूंगतिमांहि. सुख नहिं दुख बहु पायो
॥२॥ कर्म महारिपु जोर. एक न कान करैजी।
मनमाने दुख देहि काहूसों न डरैजी ॥३॥ कबहूं
इतर निगोद कबहूं नर्क दिखावै। सुरनर
पशुगतिमांहि बहुविधि नाच नचावै ॥ ४ ॥

इनको परसंग भवभवमाहिं बुराजा जे दुख देखे देव तुमसों नाहि दुरोजी ॥५॥ एक जनमकी बात कहि न सकों सुनि स्वामी। तुम अनंत परजाय जानतु अंतरजामी ॥ ६ ॥ मैं तो एक अनाथ ये मिल दुष्ट घनेरे। कियो बहुत बेहाल सुनियो साहिब मेरे ॥७॥ ज्ञान महानिधि लूटि रंक निबलकरि डार्‌यो। इनही तुम मुझ मांहिं हे जिन अंतर पार्‌यो ॥८॥ पाप पुन्य मयि दोय पायनि बेड़ी डारी। तनकाराग्रहमाहिं मोहि दियो दुख भारी ॥९॥ इनको नेक विगार मैं कछु नाहिं कियोजी। विनकारन जगवंद्य बहुविध वैर लियोजी ॥ १० ॥ अब आयौ तुम पास सुन जिन सुजस तिहारो। नीतिनिपुन जगराय, कीजे न्याव हमारो ॥११॥ दुष्टन देहु निकाल साधनकौं रखि लीजै। विनवै "भूधरदास" हे प्रभु ढील न कीजै ॥ १२ ॥

१२६ । चौपाई ।

प्रभु इस जग समरथ ना कोय। जासौं तुम

जस वर्णन होय ॥ चार ज्ञानधारी मुनि थकें।
सो मतिमंद कहा कहि सकें॥ १ ॥ यह उर जा
नत निश्चय कीन। जिनमहिमा वर्णन हम हीन॥
पर तुम भक्तिथकी वाचाल। तिस वस हो. गाऊं
गुणमाल ॥ २ ॥ जय तीर्थंकर त्रिभुवनधनी।
जय चंद्रोपम चूडामनी ॥ जय जय परम धरम
दातार। कर्मकुलाचल-चूरनहार ॥ ३ ॥ जय
शिवकामिनिकंत महंत। अतुल अनंत चतुष्टय-
वंत ॥ जय जय आश-भरन वडभाग। तपल
छमीके सुभग सुहाग ॥ ४ ॥ जयजय धर्मध्वजा
धर धीर। स्वर्ग-मोक्षदाता वर वीर ॥ जय रत्न
त्रय रतनकरंड। जय जिन तारन-तरन तरंड
॥ ५ ॥ जय जय समवसरनशृंगार। जय संश-
यवन-दहन-तुपार॥ जयजय निर्विकार निर्दोष।
जय अनंतगुणमाणिककोष ॥ ६ ॥ जय जय
ब्रह्मचर्य दल साज। कामसुभटविजयी भटराज॥
जय जय मोहमहातरु करी। जय जय मद कुंजर
केहरी ॥ ७ ॥ क्रोधमहानलमेघ प्रचंड। मान

महीधर दामिनिदंड ॥ मायाबेलि धनंजय-दाह लोभसलिलशोषण-दिननाह ॥ ८ ॥ तुम गुण-सागर अगम अपार। ज्ञान-जहाज न पहुंचै पार ॥ तट ही तट पर डोलै सोय। कारज सिद्ध तहां नहिं होय ॥९॥ तुम्हरी कीर्तिबेल बहु बढी। यत्न विना जगमंडप चढी ॥ और कुदेव सुयस निज चहैं। प्रभु अपने थल ही यश लहैं ॥ १० ॥ जगत जीव घूमैं विन ज्ञान। कीनौं मोहमहा विषपान ॥ तुम सेवा विषनाशक जरी। यह मुनिजन मिलि निश्चय करी ॥११॥ जन्म-लता मिथ्यामत मूल। जन्म मरण लागैं तहँ फूल ॥ सो कबहूँ विन भक्ति कुठार। कटै नहीं दुखफलदातार ॥१२॥ कल्पतरूवर चित्राबेलि। कामपोरषा नवनिधि मेलि ॥ चिंतामणि पारस पाषान। पुण्य पदारथ और महान ॥१३॥ ये सब एक जन्म संजोग। किंचित सुखदातार नियोग ॥ त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव। जन्म जन्म सुखदायक देव ॥ १४ ॥ तुम जगबांधव

तुम जगतात। अशरण शरण विरद विख्यात॥
तुम सब जीवनके रखवाल। तुम दाता तुम प-
रम दयाल ॥१५॥ तुम पुनीत तुम पुरुष प्रमान
तुम समदर्शी तुम सब-ज्ञान॥ जय जिन यज्ञ
पुरुष परमेश। तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥१६॥
तुम जगभर्ता तुम जगजान। स्वामि स्वयंभू
तुम अमलान॥ तुम विन तीन काल तिहुँ लोय।
नाहीं शरण जीवको कोय॥ १७॥ यातैं अब
करुणानिधि नाथ। तुम सन्मुख हम जोडैं हाथ॥
जबलौं निकट होय निर्वांन। जगनिवास छूटे
दुखदान ॥१८॥ तबलौं तुम चरणांबुज वास।
हम उर होउ यही अरदास॥ और न कछु वांछा
भगवान। हो दयाल दीजे वरदान॥ १९॥

(१२७) शैर

हे दीनबंधु श्रीपति करुणानिधानजी। यह
मेरी विथा क्यों न हरो बार क्या लगी॥टेक॥
मालिक हो दो जहानके जिनराज आपही।

ऐनो हुनर हमारो कुछ तुमसे छिपा नहीं ॥ बे-
जानमें गुनाह मुझसे बन गया सही । कंकरीके
चोरको कटार मारिये नहीं ॥ हो० ॥ १ ॥ दु-
खदर्द दिलका आपसे जिसने कहा सही । मु-
श्किल कहर बहरसे लिया है मुजा गही ॥ जस
वेद औ पुरानमें प्रमान है यही । आनंदकंद
श्रीजिनंद देव है तुही ॥ हो० ॥ २ ॥ हाथीपै
चढी जाती थी सुलोचना सती । गंगामें ग्राहने
गही गजराजकी गती ॥ उस वक्तमें पुकार
किया था तुम्हें सती । भय टारकें उबार लिया
है कृपापती ॥ हो० ॥ ३ ॥ पावक प्रचंड कुंडमें
उमंड जब रहा । सीतासे शपथ लेनेको तब
रामने कहा ॥ तुम ध्यानधार जानकी पग धार-
ती तहां । तत्काल ही सर स्वच्छ हुआ कौंल ल-
हलहा ॥ हो० ॥ ४ ॥ जब चीर द्रौपदीका दुःशास-
नै था गहा । सबही सभाके लोग थे कहते हहा
हहा ॥ इस वक्त भीर पीरमें तुमने करी सहा ।
परदा ढका सतीका सुजस जक्तमें रहा ॥ हो०

॥५॥ श्रीपालको सागरविषै जब सेठ गिराया। उनकी रमणीसे रमनेको आया वो बेहया॥ उस वक्तके संकटमें सती तुमको जो ध्याया। दुख-दंदफंद सेठके आनंद बढाया॥ हो०॥६॥ हरिषेनकी माताको जहां सौत सताया। रथ जैनका तेरा चलै पीछें यों बताया॥ उस वक्तके अनशनमें सती तुमको जो ध्याया। चक्रीस हो सुत उसकेने रथजैन चलाया॥ हो०॥७॥ सम्यक्तशुद्ध शीलवति चंदना सती। जिसके नगीच लगती थी जाहिर रती रती। बेरीमें परी थी तुम्हें जब ध्यावती हती। तब वीर धीरने हरी दुखदंदकी गती॥ हो०॥८॥ जब अंजना सतीको हुआ गर्भ उजारा। तब सासने कलंक लगाकर घरसे निकारा॥ बनवर्गके उपसर्गमें तब तुमको चितारा। प्रभुभक्त व्यक्त जानिके भय देव निवारा॥ हो०॥९॥ सोमासे कहा जो तु सती शील विशाला। तो कुंभतें निकाल भला नाग जु काला॥ उस वक्त तुम्हें ध्यायके

सति हाथ जब डाला। तत्काल ही वह नाग हुआ फूलकी माला ॥ हो० ॥ १० ॥ जब कुष्ट रोग था हुआ श्रीपालराजको। मैना सती तब आपको पूजा इलाजको ॥ तत्काल ही सुंदर कि-या श्रीपाल राजको। वह राजरोग भाग गया मुक्तराजको ॥ हो० ॥ ११ ॥ जब सेठ सुदर्शन-को मृषा दोष लगाया। रानीके कहे भूपने सू-लीपै चढाया ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने निज ध्या-नमें ध्याया। सूलीसे उतारुस्को सिंहासनपै बि-ठाया ॥ हो० ॥ १२ ॥ जब सेठ सुधन्नाजीको वापीमें गिराया। ऊपरसे दुष्ट फिर उसे वह मा-रने आया ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने दिल अपने-में ध्याया। तत्कालही जंजालसे तब उस्को बचाया ॥ हो० ॥ १३ ॥ इक सेठके घरमें किया दारिद्रने डेरा। भोजनका ठिकाना भि न था साँझ सवेरा ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने जब ध्यान में घेरा। घर उसकेमें तब कर दिया लक्ष्मीका बसेरा ॥ हो० ॥ १४ ॥ बलि वादमें मुनिराज

धों जब पार ना पाया । तब रातको तलवार ले
शठ मारने आया । मुनिराजने निजध्यानमें
मन लीन लगाया । उस वक्त हो प्रत्यक्ष तहां
देव बचाया ॥ हो० ॥ १५ ॥ जब रामने हनुमंत
को गढ़लंक पठाया । सीताकी खबर लेनेको सह
सैन्य सिधाया ॥ मग बीच दो मुनिराजको लख
आगमें काया । झट वारि मूसलधारमें उपसर्ग
बुझाया ॥ हो० ॥ १६ ॥ जिननाथहीको माथ
नवाता था उदारा । घेरेमें पडा था वह कुलिश
करण विचारा ॥ उसवक्त तुम्हें प्रेमसे संकटमें
चितारा । रघुवीरने सब पीर तहां तुरत निवारा
॥ हो० ॥ १७ ॥ रणपाल कुंवरके पडीथी पांवमें
बेरी । उसवक्त तुम्हें ध्यानमें ध्याया था सबेरी ॥
तत्काल हो सुकुमालकी सब झड़ पडी बेरी ।
तुम राजकुँवरकी सभी दुखदंद निवेरी ॥हो०॥
॥ १८ ॥ जब सेठके नंदनको डसा नाग जु
कारा । उसवक्त तुम्हें पीरमें धरधीर पुकारा ॥
ततकाल हो उस बालका विष भूरि उतारा ॥

यह जाग उठा सोके मानों सेज सकारा ॥हो०॥
॥१९॥ मुनि मानतुंगको दई जब भूपने पीरा।
तालेमें किया बंद भरी लोहजँजीरा ॥ मुनिईश
ने आदीशकी थुति की है गंभीरा। चक्रेश्वरी
तब आनिके झट दूर की पीरा ॥ हो० ॥ २० ॥
शिवकोटिने हट था किया सामंतभद्रसों ॥शिव
पिंडकी बंदन करौं शंकों अभद्रसों ॥ उस वक्त
स्वयंभू रचा गुरु भावभद्रसों। जिनचंद्रकी
प्रतिमा तहां प्रगटी सुभद्रसों ॥ हो० ॥ २१ ॥
सूवेने तुम्हें आनिके फल आम चढाया। मेंडक
ले चला फूल भरा भक्तिका भाया ॥ तुम दोनों
को अभिराम स्वर्गधाम बसाया हम आपसे
दातारको लख आज ही पाया ॥ हो० ॥२२॥
कपि स्वान सिंह नेवला अज बैल विचारे। तिर्यंच
जिन्हें रंच न था बोध चितारे॥ इत्यादिको सुर
धाम दे शिवधाममें धारे। हम आपसे दातारको
प्रभु आज निहारे ॥ हो० ॥ २३ ॥ तुम ही
अनंत जंतुका भय भीर निवारा। वेदोपुराणमें

गुरू गणधरने उचारा। हम आपकी सरनागतीमें आके पुकारा। तुम हो प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष इच्छिताकारा ॥हो०॥२४॥ प्रभु भक्त व्यक्त भक्त जक्त मुक्तके दानी। आनंद कंद वृंदको हो मुक्तके दानी ॥ मोहि दीन जान दीनबंधु पातक भानी। संसार विषम खार तार अंतर जामी ॥॥ हो०॥२५॥ करुणानिधान बानकी अब क्यों न निहारो। दानी अनंतदानके दाता हो सँभारो। वृषचंदनंद वृंदका उपसर्ग निवारो। संसार विषम खारसे प्रभु पार उतारो॥ हो दीन बंधु श्रीपति करुणानिधानजी। अब मेरी विथा क्यों ना हरो बार क्या लगी ॥ २६ ॥

(१२८)

दोहा—जासुधर्मपरभावसों, संकट कटत अनत।
मंगलमूरति देव सो, जैवंतौ अरहंत ॥ १ ॥
हे करुणानिधि सुजनको, कष्टविषें लखिलेत।
ताजि विलंब दुखनष्ट किय, अब विलंब किहहेत।

तब विलंब नहिं कियो, दियो नमिको रजताचल। तब विलंब नहिं कियो मेघवाहन लंकाथल॥ तब विलंब नहिं कियो, शेठसुत दारिद भंजे। तब विलंब नहिं कियो, नागजुग सुरपद रंजे॥ इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियवरन। प्रभु मोर दुःख नाशनविषै, अब विलंब कारन कवन॥३॥ तब विलंब नहिंकियो, सिया पावक जल कीन्हौं। तब विलंब नहिं कियो, चंदना शृंखल छीन्हौं। तब विलंब नहिं कियो, चीर द्रौपदिको बाढ्यो। तब विलंब नहिं कियो सुलोचन गंगा काढ्यो॥ इमि०। प्रभु०॥ ४॥ तब विलंब नहिं कियो, सांप किय कुसुम सुमाला। तब विलंब नहिं कियो, उर्मिला सुरथ निकाला॥ तब विलंब नहिं कियो शीलबल फाटक खुल्ले। तब विलंब नहिं कियो अंजना वन मन फुल्ले। इमि०। प्रभु०॥ ५॥ तब विलंब नहिं कियो शेठ सिंहासन दीन्हौं। तब

विलंब नहिं कियो, सिंधु श्रीपाल कढीन्हौं ॥
तब विलंब नहिं कियो, प्रतिज्ञा वज्रकर्ण पल।
तब विलंब नहिं कियो, सुधन्ना काढि वापि थल
॥ इमि० । प्रभु० ॥ ६ ॥ तव विलंब नहिं कियो,
कंस भय त्रिजुग उवारे । तब विलंब नहिं कियो,
कृष्णसुत शिलाउधारे ॥ तब विलंब नहिं कियो
खड्ग मुनिराज बचायो । तब विलंब नहिं कियो
नीरमातंग उचायो ॥ इमि० । प्रभु० ॥ ७ ॥ तब
विलंब नहिं कियो, शेठ सुत निरविष कीन्हौं ।
तब विलंब नहिं कियो, मानतुँगबंध हरीन्हौं ॥
तब विलंब नहिं कियो, वादिमुनिकोढ़ मिटायो ।
तब विलंब नहिं कियो, कुमुद निजपास
कटायौ ॥ इमि० । प्रभु० ॥ ८ ॥ तब विलंब
नहिं कियो अंजना चोर उवारयो । तव
विलंब नहिं कियो पूरवा भील सुधारयो ॥
तब विलंब नहिं कियो, गृद्धपक्षी सुंदर
तन । तब विलंब नहिं कियो, भेक दिय सुर
अद्भुत धन ॥ इमि० । प्रभु० ॥९॥ इहविधि दुख

निरवार, सारसुख प्रापतिं कीन्हौं। अपनो दास निहारि, भक्तवत्सल गुन चीन्हौं ॥ अब विलंब किहिं हेत, कृपाकर इहां लगाई। कहा सुनो अरदास नाहिं, त्रिभुवनके राई॥ जनवृंद सु मन वचतन अबै, गही नाथ तुम पदशरन। सुधि ले दयाल मम हालपै, कर मंगल मंगलकरन॥

(१२९)

सहज शुद्ध ज्ञायक सकल, सकल गुननिकरयुक्त। निर्विकार निर्दुंदमय, बन्दों जिन विधियुक्त ।१।

पद्धरि छंद।

जय त्रिभुवननायक त्रिजगईस। जय करणकुरंगनको मृगीस॥ जय मोहशैलविध्वंसकार। जय जगतशिरोमणि स्वच्छवार॥ २॥ जय अनुपम अद्भुत सुगुणधार। जय धर्मपोत जगजियउवार॥ जय चरण शुद्ध अवलंब लंब। जय बोधशुद्ध प्रतिविंब विंब॥ ३॥ जय एनमुक्त तुम उक्त उक्त। जय क्रांतिभार अति युक्त युक्त॥ विधि नष्ट अष्ट, गुणअष्टपुष्ट। जय जंतु-

पुष्ट अति सुष्ट सुष्ट ॥ ४ ॥ जय मानमदोद्धत-करी तंग। जय मीनकेतुमद किमपि भंग। जय कर्म भर्म भान्यौ प्रवीन। जय मर्मज्ञान-ज्ञाता कहीन ॥ ५ ॥ जय सुद्धातम प्रतिबोध बोध। जय आस्रवभाव विरोधरोध ॥ जय प्रबलजाल-जग चूरचूर। जय आस जगतकी पूर पूर ॥ ६ ॥ जय भूलघूलनासनसमीर। जय स्वातमरसफ-लभोगकीर ॥ जय विदितसकत्त्वार्थअर्थ। जय सु-गतिगमन चितांचित व्यर्थ ॥७॥ जय लब्धिनवौ-पूरित पुनीत। जय ज्ञानांबुधभाषक सुनीत ॥ जय अनँतचतुष्टय इष्ट अंग। जय चतुक चमूविधि संगभंग ॥ ८ ॥ जय समवसरनलक्ष्मीनिवास। जय प्रातिहार्यवसुजुत विभास ॥ जय कल्पबेल बांछक सदैन। जय चिंतामणिमणिचिंतलैन ॥९॥ जय जगभूरुहनासनकुठार। जय भविजनचात-कवारिधार ॥जय मलिनकलिलकालिमपखाल। जय मुखअरविंदअधरप्रवाल ॥ १० ॥ जय पुर हूत सुरनरनागईस। जय नायमाथ ध्यावत

मुनीस ॥ जय आनँदकंद उदोत सूर । जय तार
णतरणतरंड भूर ॥ ११ ॥ जय सबविधिलायक
तुम दयाल । जय मोहनमूरति सृष्टिपाल ॥
जय जीवनमूलसुमूलमंत्र । जय अधमउधारक
भूमि तंत्र ॥ १२ ॥ जय तापलसजगइंदुअंस ।
जय आरतरुद्रउडाय वंस ॥ जय जग अनाथ
तुम नाथ कीन । जय अमल अचलचिद्रूपचीन ॥
॥ १३ ॥ नंहिं चाह नाथ कछु और मोय । हे
दीनदयाल कृपाल होय ॥ करजोर जुगल विन-
ती विथार । संसारखारदुखवारतार ॥ १४ ॥
दोहा—दुख भंजन रंजन भविक, अंजन मंजन
त्यागि । गंजनगर्भअरीनके, नमैं 'चंद' पदलागि

१३० । पुकारपच्चीसी ।

दोहा—जे या भव संसारमें, भुगतैं दुःख अपार ।
तिन पुकारपच्चीसिका, करौं कवित इक ढार ॥

तेईसा छंद ।

श्रीजिनराज गरीब निवाज सुधारन काज
सबै सुखदाई । दीनदयाल बडे प्रतिपाल दया

गुणमाल सदा शिर नाई ॥ दुर्गति टारन पाप
निवारन हो भवितारनको भवताई । बारहिंवार
पुकारतु हों जनकी विनती सुनिये जिनराई ।१।
जन्मजरामरणो त्रय दोष लगे हमको प्रभु काल
अनाई । तासु नसावनको तुम नाम सुन्यो
हम वैद्य महासुखदाई ॥ सो त्रय दोष निवारन
को तुम्हरेपद सेवतु हौं चितल्याई । बारहि।२।
जो इक द्वै भवको दुख होय तो राख रहों मनको
समुझाई । यह चिरकाल कुहाल भयो अबलों
कहुँ अंत पर्यो न दिखाई ॥ मोपर या जगमांहि
कलेश परे दुख घोर सहे नहिं जाई । बारहिवार०
॥ ३ ॥ देख दुखीपर होत दयाल सु है इक
ग्रामपती शिरनाई । हो तुम नाथ त्रिलोकपती
तुमसे हम अर्ज करैं शिरनाई ॥ मो दुख दूर
करो भवके वसु कर्मनतैं प्रभु लेहु छुडाई ॥बार०
॥ ४ ॥ कर्म बडे रिपु हैं हमरे हमरी बहु हीन
दशा कर पाई । दुःख अनंत दिये हमको इर
भांतिन भांतिन दोष लगाई ॥ मैं इन वैरिनके

वश है करिके भटक्यो सु कह्यो नाहिं जाइ।
बारहिं० ॥५॥ मैं इस ही भव काननमैं भटक्यो
चिरकाल सुहाल गमाई। किंचित ही तिलसे
सुखको वहु भांति उपाय करे ललचाई॥ चार
गतैं चिर में भटक्यो जँहँ मेरु समान महा
दुखदाई। बारहिं० ॥६॥ नित्य निगोद अनादि
रह्यो त्रसके तनकी जहँ दुर्लभताई। ज्यों क्रम
सों निकस्यो तिहँतैं त्यों इतर निगोद रह्यो चिर
छाई॥ सूक्षम बादर नाम भयो जबही इहभाँति
धरी परजाई। बारहिं० ॥७॥ जवही पृथिवी
जल तेज भयो पुनि मारुत होय वनस्पतिकाई।
देह अघात धरी जब सूक्षम घातत बादर
दीरघताई ॥ एक उदै परतेक भयो साधा-
रण एक निगोद बसाई। बारहिं० ॥८॥
इंद्रिय एक रही चिर, मैं कब लब्धि उदै खउप-
शमताई। बे त्रय चार धरी जब इंद्रिय देह उदय
विकलत्रय आई॥ पंचन आदि किधौं पर्यंत
धरी इन इंद्रियके त्रसकाई। बारहिं० ॥९॥

काय धरी पशुकी बहुबार भई जलजंतुनकी परजाई। जो पलमांहि अकाश रह्यो चिर होय पखेरू पंख लगाई॥ मैं जितनी परजाय धरीं तिनके वरणे कहुँ पार न पाई। वारहि०।१०।नर्क मझार लियो अवतार पर्‍यो दुखभार न कोई सहाई। जो तियके सुख हेत किये अघ ते सव नरकनमें सुधि आई॥ ते तियके तनकी पुतली हमरे हियरा करि लाल भिराई॥वारहि०॥११॥रत्नप्रभा सु मही जहँ है अरु शर्कअ रेत उन्हार बताई। पंकप्रभा जु धुआंवत है तमसी सु प्रभासु महातमताई॥ जोजन लाख जु आयसपिंड तहां इकही छिनमें गलजाई॥ बारहि०॥१२॥ जे अघ घात महा–दुखदायक मैं विषयारसके फल पाई। काटत हैं जबही निर्दय तबही सरिता महि देत बहाई॥ देवअदेवकुमार जहां विच पूरव वैर चितावत जाई॥ बारहि० ॥१३॥ जो नरदेह मिली क्रमसों करि गर्भ कुवास महा दुख पाई। जे नवमास कलेश सहे मलमूत्र अहार

सहा जयताई ॥ ये दुख देखि जबै निकस्यो पुनि रोवत बालपने दुखदाई । बारहि० ॥१४॥ यौवनमें तनरोग भयो कबहूं विरहानल व्याकुलताई । मानविषै रसभोग चख्यो उन्मत्त भयो सुख मानत नाहीं । आय गयो छिनमें विरधापन यह नरभव इहभांति गमाई ॥बारहि०॥१५॥ देव भयो सुरलोकविषै नव मोहि रह्यो परियां उर लाई । पाय विभूति बड़े सुरकी परसंपति देखत झूरत जाई ॥ माल जबै मुरझाय रही थिति पूरण जानि तबै बिललाई ॥ बारहि० ॥१६॥ जे दुख मैं भुगते भवके तिनके वरणे कहुं पार न पाई । काल अनादिन आदि भयो तहं मैं दुखभाजन हो अधमाई ॥ सो दुख जानत हो तुमही जब ही इहभांति धरी पर्यायी । बारहि० ॥ १७ ॥ कर्म अकाज करै हमरे हमको चिरकाल भये दुखदाई । मैं न बिगाड़ कियो इनको बिनकारण बाप भये अरि आई ॥ मात पिता नमता जगके तुम छांड़ि बिगाड़ करो मत जाई । बारहि० ॥

॥१८॥ सो तुमसों सब दुःख कहों प्रभु जानत हो तुम पीर पराई। मैं इनको सत्संग कियो दिन हूं दिन आवत मोहि बुराई॥ ज्ञानमहानिधि लूट लियो इन रंक कियो इहभांति हराई। बा-रहि० ॥ १९ ॥ मैं प्रभु एक सरूप सह्यो सब यह इन दुष्टनकी कुटिलाई। पाप रु पुन्य दुहूं निज मारगमें हमको यह फाँसि लगाई। मोहि थकाय दियो जगसों विरहानल देह दहै न बुझाई॥ बारहि०॥२०॥ यह विनती सुन सेवककी निज मारगमें प्रभु लेहु लगाई॥ मैं तुव दास रह्यो तुमरे सँग लाज करो शरणागति आई॥ मैं तुव दास उदास भयो तुमरी गुणमाल सदा उर लाई॥ बारहि० ॥ २१ ॥ देर करो मत श्रीकरुणानिधि जू पतिराखनहार निकाई। योग जुरे क्रमसों प्रभुजी यह न्याय हजूर भयो तुम आई॥ आन रह्यो शरणागति हों तुमरी सुनके तिहुँलोक बड़ाई॥ बारहिबार० ॥२२ ॥ मैं प्रभुजी तुम्ह-री समहू इन अंतर पार कियो दुसराई। न्याय

न अंत करयो हमरो न मिली हमको तुमसी ठकुराई ॥ संतन राखि करो अपने ढिग दुष्टनि देहु निकास बहाई । बारहि० ॥ २३ ॥ दुष्टनकी जु कुसंगतिमें हमको कछु जान परी न निकाई । सेवक साहबको दुविधा न रहै प्रभुजी करिये जु भलाई ॥ फेर नमों जु करों अरजी जस । जाहर जान परै जगताई ॥ बारहि० ॥ २४ ॥ यह विनती प्रभुके शरणागति जे नर चित्त लगाय करेंगे । जे जगमें अपराध करै अघ ते क्षणमात्रभरेमें हरेंगे ॥ जे गति नीच निवास सदा अवतार सुधी स्वरलोक धरेंगे । देवीदास कहै क्रमसों पुनि ते भवसागर पार तरेंगे ।२५।

आठवां अध्याय भावना संग्रह ।

१३१ बारहभावना भगोतीदासकृत

चौपाई ।

पंच परमपद वंदन करों । मनवचभाव-सहित उर धरों ॥ बारहभावन पावन जान । भाऊं आतम गुण पहिचान ॥ १ ॥ थिर नहिं

दीसै नयनों वस्त । देहादिक अरु रूप समस्त ॥ थिर विन नेह कौनसों करों । अथिर देख ममता परिहरों ॥ २ ॥ अशरण तोहि शरण नहिं कोय । तीनलोकमें दृगधर जोय ॥ कोइ न तेरा राखनहार । कर्मनवश चेतन निरधार ॥ ३ ॥ अरु संसारभावना एह । परद्रव्यनसों करै जु नेह ॥ तू चेतन वे जड सरवंग । तातें तजहु परायो संग ॥ ४ ॥ जीव अकेला फिरै त्रिकाल । ऊरध मध्यभुवन पाताल ॥ दूजा कोइ न तेरे साथ । सदा अकेलो भ्रमै अनाथ ॥ ॥ ५ ॥ भिन्न सदा पुदगलतैं रहै । भर्मबुद्धितैं जडता गहै ॥ वे रूपी पुदगलके खंध । तू चिनमूरति सदा अबंध ॥ ६ ॥ अशुचि देख देहादिक अंग । कौन कुवस्तु लगी तो संग ॥ अस्थी मांस रुधिरगदगेह । मल मूत्रनि लखि तजहु सनेह ॥७॥ आस्रव परसों करैं जु प्रीत । तातें बंध बढहि विपरीत ॥ पुदगल तोहि अपनपो नाहिं । तू चेतन वे जड सब आँहि ॥८॥ संवर

परको रोकन भाव। सुख होवेको यही उपाव। आवें नहीं नये जहँ कर्म। पिछले रुकि प्रगटे निज धर्म ॥ ९ ॥ थिति पूरी है खिर खिर जाहिं। निर्जर भाव अधिक अधिकाहिं। निर्मल होय चिदानँद आप। मिटे सहस परसंग मिलाप ॥ १० ॥ लोकमांहि तेरो कछु नाहिं। लोक अन्य तू अन्य लखाहिं ॥ वह सब षटद्रव्यनको धाम। तू चिन्मूरति आतमराम ॥ ११ ॥ दुर्लभ परको रोकन भाव। सो तो दुर्लभ है सुनु राव। जो तेरो है ज्ञान अनंत। सो नहिं दुर्लभ सुनो महंत ॥ १२ ॥ धर्मस्वभाव आपही जान। आप स्वभाव धर्म सोइ मान। जब वह धर्म प्रगट तोहि होय। तब परमातम पद लख सोय ॥ येही बारह भावन सार। तीर्थंकर भावहिं निरधार ॥ है वैराग्य महाव्रत लेहि, तब भवभ्रमण जलांजुलि देहि ॥ १४ ॥ भैया भावहु भाव अनूप। भावत होहु तुरत शिवभूप ॥ सुख अनंत विलसो निश दीश। इम भाख्यो स्वामी जगदीश

इति बारहभावना भैया भगवतीदासकृत सम्पूर्ण ॥

१३२। बारहभावना भूधरदासकृत।

दोहा—

राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार।
मरना सबको एकदिन, अपनी अपनी बार॥

अपनी अपनी बार सर्व प्राणी जु अवशि मर जावै।
अन्य समस्त पदारथ जगमैं कोऊ थिर न रहावै॥
है परवस्तु मोहवश मनमैं रागरु द्वेष बढावै।
तातैं परमैं रागरोष तज जो उत्तम पद पावै॥ १॥

दलबलदेई देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरियां जीवको, कोई न राखनहार॥

कोइ न राखनहार जीवके जब अंतिम दिन आवै।
औषध यत्र मत्रकी शरना गहे भि कोइ न बचावै॥
रत्नत्रय धर्म हि इक सरना यही सवे जन गावै।
तातैं सबकी सरन छार गहु धर्म मुक्तिपद पावै॥ २॥

दामविना निर्धन दुखी. तृष्णावश धनवान।
कहूं न सुख संसारमें, सब जग देख्यो छान॥

सब जग देख्यो छान, सबहि प्राणी अति दुःख जु पावै।
कर्म बली नट चारु गतिमैं, बहु विध नाच नचावै॥
मद विन तन पावै तो धन नहिं धन पा तुरत नसावै।
तातैं भवतन-भोग-राग तज शिवमग लहि शिव जावै॥ ३॥

आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय।
यूं कबहूं इस जीवको, साथी सगा न कोय॥

साथी सगा न कोइ मरनकर जब परभवमें जावे ।
मात पिता सुत दारा प्रिय जन कोइ न साथी आवे ॥
पुण्य पाप या धर्म हि साथी, तन धन यहीं रहावे ।
सुख दुख सबही इकला भुगते इकला चहुंगति धावे ॥ ४ ॥

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय ।
घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥

पर हैं परिजन लोय होय नहिं वस्तु जाति कुल धारा ।
मोहकर्मवश परको अपने समझै सोइ गँवारा ॥
तू है दर्शन ज्ञानमयी चैतन्य आतमा न्यारा ।
तातैं पर जड त्याग आप गहि जो होवे निस्तारा ॥ ५ ॥

दिपे चामचादरमढी, हाड पींजरा देह ।
भीतर यां सम जगतमें, अवर नहीं घिनगेह ॥

अवर नहीं घिनगेह देहसम अशुचि पदारथ कोई ।
अस्थिमांसमलमूत्र अशुचि सब याही तनतैं होई ।
चंदन केशर आदि वस्तु तन परसत शुचिता खोवे ।
ऐसे तनमें राचि रह्यो तब कैसे शिवमग जोवै ॥ ६ ॥

सोरठा ।

मोहनींदके जोर, जगवासी घूमें सदा ।
कर्मचोर चहुंओर, सरबस लूटैं सुध नहीं ॥

गीता ।

नहीं सुख या जीवको यह कर्म आस्रव नित करे ।
मन वचन तनके योगतैं नित शुभ अशुभ कर्महि धरे ॥
तिन करमके बंधन भये तिन उदयतैं सुख दुख लहो ।
तातैं मिथ्यात प्रमाद आदिक तजहु जातैं शिव गहो ॥ ७ ॥

सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमे।
तब कछु बनहि उपाय, कर्मचोर आवत रुके॥
रुके तब ही कर्म आस्रव किये संवर चावसों॥
दश महाव्रत पन समिति गुप्ती तीन दश वृष भावसों॥
परिग्रह सहन अरु भावना चित चितवे नित ही सही।
तातें जु होवे कर्म संवर यही जिनधुनिमें कही॥ ८॥

दोहा।

ज्ञानदीपतपतेल घर, धर शोधे भ्रम छोर।
याविध विन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर॥
पैठे पूरब चोर कर्म सब रहे देह घरमाहीं।
द्वादश विध तप अग्नि जलाये कर्मचोर जल जांहीं॥
उदय भोग सविपाक निर्जरा पके आम तरु डाली।
उपसों है अविपाक पकावै पालविषै जिम माली॥ ९॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इंद्री-विजय, धार निर्जरा सार॥
धार निर्जरा सार सार संवर पूर्वक जो हो है।
वही निर्जरा सार कही अविपाक निर्जरा सो है॥
उदय भये फल देय निर्जरै सो सविपाक कहावै।
तासों जियका काज न सरि है सो सब व्यर्थ हि जावै॥ १०॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामे जीव अनादितैं, भरमत हैं विन ज्ञान॥
भरमत हैं विन ज्ञान लोकमें कभी न हित उपजाया।
पंच परावर्तन करते करते सम्यग्ज्ञान न पाया॥

अब तू मोहकर्मको हरकर तज सब जगकी आसा।
जिनपद ध्याय लोकशिर ऊपर करले निज थिर बासा ॥ ११ ॥

धनकनकंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान ॥

एक जथारथ ज्ञान सु दुर्लभ है जगमैं अधिकाना।
थावर त्रस दुर्लभ निगोदतैं नरतन संगति पाना ॥
कुल श्रावक रत्नत्रय दुर्लभ अरु पञ्चम गुन थाना।
सबतैं दुर्लभ आतम ज्ञान सु जो जगमांहिं प्रधाना ॥ १२ ॥

जाचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंतारैन।
विन जाचे विन चिंतये धर्म सकल सुख दैन ॥

धर्म सकल सुखदैन रैन दिन भवि जीवन मन भाता।
षट् दर्शन ईसा मूसा महमदका मत न सुहाता ॥
वीतराग सर्वज्ञ देव गुरु धर्म अहिंसा जानो।
अनेकांत सिद्धांत सप्त तत्वनको कर सरधानो ॥ १३ ॥

दोहा—भूधर कविकृत भावना, द्वादश जगपरधान।
तापर इक अल्पज्ञने छंद रचे हित जान ॥ १४ ॥

इति बारह भावना भूधरदासकृत।

१३३। बारहभावना बुधजनकृत।

गीता छंद।

जेती जगतमैं वस्तु तेती अथिर परणमती सदा।
परणमनराखन नाहिं समरथ इंद्र चक्री मुनि कदा ॥ सुतनारि यौवन और तन धन जान दा-

मिनि दमकसा। ममता न कीजे धारि समता· यानि जलमें नमकसा ॥१॥ चेतन अचेतन स· ब परिग्रह हुआ अपनी थिति लहैं। सो रहैं आ प करार माफिक अधिक राखे ना रहैं॥ अ· शरण काकी लेयगा जब इंद्र नाहीं रहत हैं। शरण तो इक धर्म आतम जाहि मुनिजन गह· त हैं ॥ २ ॥ सुर नर नरक पशु सकल हेरे कर्म चेरे बन रहे। सुख शासता नहिं भासता सब विपतिमें अतिसन रहे ॥ दुख मानसी तो देवग· तिमें नारकी दुख ही भरैं। तिर्यंच मनुज वियोग रोगी शोक संकटमें जरैं ॥ ३ ॥ क्यों भूलता शठ फूलता है देख परिकरथोकको। लाया कहां लेजायगा क्या फौज भूषण रोक को॥ जनमत मरत तुझ एकलेको काल केता होगया। सँग और नाहीं लगे तेरे सीख मेरी सुन भया ॥ ४ ॥ इंद्रीनतें जाना न जावै तू चिदानंद अ· लक्ष है। स्वसंवेदन करत अनुभव होत तब परत्यक्ष है ॥ तन अन्य जड जानो सरूपी तू

अरूपी सत्य है। कर भेदज्ञान सो ध्यान धर निज ओर बात असत्य है ॥ ५ ॥ क्या देख राचा फिरे नाचा रूपसुंदरतन लहा। मलमूत्र भांडा भरा गाढा तू न जानै भ्रम गहा ॥ क्यों सूग नाहीं लेत आतुर क्यों न चातुरता धरे। तुहि काल गटके नाहिं अटकै छोड तुझको गिर परे ॥६॥ कोइ खरा अरु कोइ बुरा नहिं वस्तु विविध स्वभाव है। तू वृथा विकलप ठान उरमें करत राग उपाव है ॥ यूं भाव आस्रव बनत तू ही द्रव्य आस्रव सुन कथा। तुझ हेतुसे पुद्गल करम न निमित्त हो देते व्यथा॥७॥ तन भोग जगत सरूप लख डर भविक गुर शरणा लिया सुन धर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया॥ इंद्री अनिंद्री दाबि लीनी त्रस रु थावर बँध तजा। तब कर्म आस्रव द्वार रोके ध्यान निजमें जा सजा ॥ ८ ॥ तज शल्य तीनों बरत लीनो वाह्यभ्यंतर तपतपा। उपसर्ग सुरनर जड पशुकृत सहा निज आतम जपा ॥ तब कर्म

इसबिन होन लागे द्रव्यभावन निर्जरा। सब कर्म हरकै मोक्ष वरकै रहत चेतन ऊजरा॥९॥ त्रि लोक नंतालोक मांहीं लोकमें द्रव सब भरा। सब भिन्नभिन्न अनादिरचना निमितकारणकी धरा॥ जिनदेव भाषा तिन प्रकाशा भर्मनाशा सुन गिरा। सुर मनुष तिर्यंक नारकी हुइ ऊर्ध्व मध्य अधोधरा॥ १० ॥ अनँनकाल निगोद अटका निकस थावर तनधरा। भू वारितेजव-यार व्हैकै बेइँद्रिय त्रस अवतरा॥ फिर हो ति-इंद्री वा चौइंद्री पंचेंद्री मनबिन बना। मनयुत मनुषगतिहोन दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना॥ ॥११। जिय! न्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जपजपा। तपनग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तपतपा॥ वर धर्म निज आतम स्वभावी ताहि बिन सब निष्फला। बुधजन धरम निज धार लीना तिनहिं कीना सब भला॥ दोहा—

अथिराशरणसंसार है, एकत्वअनित्यहि जान।
अशुचि आस्रव संवरा, निर्जर लोक बखान॥

बोध रु दुर्लभ धरम यें, बारहैं भावन जान।
इनको भावै जो सदा, क्यों न लहै निर्वान॥१४॥

१३४। वैराग्यभावना।

वज्रनाभि चक्रवर्तीकी। दोहा—

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं॥

जोगीरासा वा नरेंद्र छंद।

इहविध राज करै नरनायक, भोगै पुण्य विशाली। सुखसागरमैं रमत निरंतर, जात न जान्यो कालो॥ एक दिवस शुभ कर्मसँजोगे क्षेमंकर मुनि वंदे। देखि सिरीगुरुके पदपंकज, लोचन अलि आनंदे॥ २॥ तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी। साधुसमीप विनय कर बैठ्यो, चरननमैं दिठि दीनी॥ गुरु उपदेश्यो धर्मशिरोमणि, सुन राजा वैरागे। राजरमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे॥३। मुनिसूरजकथनीकिरणावलि, लगत भरम बुधि भागी। भवतनभोगस्वरूप विचार्यो, परम

परम अनुरागी ॥ इह संसार महावन भीतर, भ्रमते ओर न आवै। जामन मरन जरा दौं दाझै जीव महादुख पावै ॥ ४ ॥ कबहूं जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी। कबहूं पशु परजाय धरै तहँ, बध बंधन भयकारी ॥ सुरगतिमैं परसंपति देखे राग उदय दुख होई। मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहिं कोई ॥५॥ कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोइ अनिष्ट सँयोगी। कोई दीन दरिद्रि विगूचे, कोई तनके रोगी ॥ किसही घर कलिहारी नारी कै बैरी सम भाई। किसहीके दुख बाहिर दीखै, किस ही उर दुचिताई ॥ ६ ॥ कोई पुत्र विना नित झूरै, होय मरै तब रोवै। खोटी संततिसों दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै ॥ पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुख साता। यह जगवास जथारथ-देखे, सब दीखै दुखदाता ॥६॥ जो संसारविषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागैं। काहेको शिवसाधन करते, संजमसों

अनुरागे ॥ देह अपावन अथिर घिनावन. यामें सार न कोई। सागरके जलसों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई ॥ ८ ॥ सात कुधातुभरी मलमूरत चाम लपेटी सोहै। अंतर देखत या सम जगमें अवर अपावन को है ॥ नवमलद्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवै। व्याधि उपाधि अनेक जहां तहँ, कौन सुधी सुख पावै ॥ ९ ॥ पोषत तो दुख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै। दुर्जनदेहस्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावै ॥ राचनजोग स्वरूप न याको विरचनजोग सही है। यह तन पाय महातप कीजे यामें सार यही है ।१०। भोग बुरे भवरोग बढावैं, बैरी हैं जग जीके। बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके ॥ वज्रअगिनि विषसे विषधरसे, ये अधिके दुखदाई। धर्मरतनके चोर चपल अति, दुर्गतिपंथ सहाई ॥ ११ ॥ मोहउदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जाने। ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने ॥

ज्यों ज्यों भोग सँजोग मनोहर, मनवांछित जन पावे। तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके, लहर जहरकी आवै ॥ १२ ॥ मैं चक्रीपद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे। तौ भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥ राजसमाज महा अघकारण, वैरबढावनहारा। वेश्यासम लछमी अति चंचल याका कौन पत्यारा ॥ १३ ॥ मोहमहारिपु वैर विचार्‌यो, जगजिय संकट डारे। घरकाराग्रह वनिता बेडी, परिजन जन रखवारे ॥ सम्यकदर्शन ज्ञानचरण तप, ये जियके हितकारी। येही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥ १४ ॥ छोड़े चौदह रत्न नवोंनिधि, अरु छोड़े सँग साथी। कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी ॥ इत्यादिक संपति बहुतेरी जीरणतृणसम त्यागी। नीति विचार नियोगी सुतकों, राज दियो बड़भागी ॥ १५ ॥ होय निशल्य अनेक नृपति सँग, भूषण वसन उतारे। श्रीगुरु चरणधरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे

धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी। ऐसी संपति छोड बसे वन, तिन पद धोक हमारी ॥ १६ ॥ दोहा—

परिगहपोट उतार सब, लीनो चारित पंथ ।
निज स्वभावमें थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ ॥

इति श्री वज्रनाभि चक्रवर्तीकी वैराग्य भावना ।

१३५ । बारहभावना ।

दौलतरामजी कृत । चाल छंद १४ मात्रा ।

१ । अनित्य भावना ।

जोबनगृह गोधन नारी। हयगयजन आज्ञाकारी॥ इंद्रीयभोग छिन थाई। सुरधनु चपला चपलाई ॥ १ ॥

२ । अशरण भावना ।

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरिकाल दले ते। मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥ २ ॥

३ । संसार भावना ।

चहुँगति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं। सबविधि संसार असारा; यामें सुख नाहिं लगारा ॥ ३ ॥

शुभ अशुभकरमफल जेते, भोगै जिय एकहि तेते। सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथके हैं भीरी ॥ ४ ॥

५। अन्यत्व भावना।

जलपय ज्यों जियतन मेला, पै भिन्न भिन्न नहिं भेला। तौ प्रगट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा ॥ ५ ॥

६। अशुचित्व भावना।

पल रुधिर राधमल थैली, कीकस बसादितै मैली ॥ नवद्वार वहैं घिनकारी, अस देह करै किम यारी ॥ ६ ॥

७। आस्रव भावना।

जो जोगनकी चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई। आस्रव दुखकारि घनेरे, बुधवंत तिन्हें निरवेरे ॥

८। संवर भावना।

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना। तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥ ८ ॥

९। निर्जरा भावना।

निजकाल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना। तपकरि जो करम खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥ ९ ॥

१०। लोक भावना।

किन हू न करचो न धरै को, षटद्रव्यमयी न हरै को। ता लोकमाहि विन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥ १० ॥

११। बोधि दुर्लभ भावना।

अंतिम ग्रीवकलोंकी हद, पायो अनंत विरियाँ पद। पर सम्यकज्ञान न लाध्यो, दुर्लभ निजमें मुनि साध्यो ॥ ११ ॥

१२। धर्म भावना।

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे। सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै ॥ १२ ॥ सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये। ताको सुनिके भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥ १३ ॥

दोहा—द्रव्यरूपकरि सर्वेथिर, परजय थिर है कौन । द्रव्यदृष्टि आपा लखो, पर्जय नयकरि गौन ॥ १ ॥ शुद्धातम अरु पंच गुरु, जगमें सरनौ दोय । मोह उदय जियके वृथा, आन कल्पना होय ॥ २ ॥ परद्रव्यनतैं प्रीति जो, है संसार अबोध । ताको फल गति चारमें,भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ॥३॥ परमारथतैं आतमा, एक रूप ही जोय। कर्मनिमित विकलप घने, तिन नासे शिव होय ॥ ४ ॥ अपने अपने सत्वकूं, सर्व वस्तु विलसाय । ऐसें चितवे जीव तब, परतैं ममत न थाय ॥ ५ ॥ निर्मल अपनी आतमा, देह अपावन गेह । जानि भव्य निज भावको, यासों तजो सनेह ॥६॥ आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय-दृष्टि निहार । सब विभाव परिणाममय, आस्रव भाव विडार ॥ ७ ॥ निज स्वरूपमें लीनता, निश्चय संवर जानि । समिति गुप्ति संजम धरम, धरैं पापकी हानि ॥ ८ ॥

संवरमय है आतमा, पूर्व कर्म झड जाय। निज
स्वरूपको पायकर, लोक शिखर जब थाय ॥९॥
लोकस्वरूप विचारिकें. आतम रूप निहार। पर-
मारथ व्यवहार मुणि. मिथ्याभाव निवारि ॥१०॥
बोधि आपका भाव है. निश्चय दुर्लभ नाहिं।
भवमें प्रापति कठिन हैं. यह व्यवहार कहाहि॥११॥
दर्शज्ञानमय चेतना, आतमधर्म बखानि।
दयाक्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि ॥१२॥

१६७। सोलहकारण भावना।

चौपाई।

आठदोषमद आठ मलीन. छह अनायतन शठता तीन। ये पच्चीस मल वर्जित होय, दर्श-विशुद्धिभावना सोय ॥१॥ रत्नत्रयधारी मुनि-राय, दर्शनज्ञान चरित समुदाय। इनकी विनय विषै परवीन, दुतिय भावना सो अमलीन ॥२॥ शीलधारि धारे समचेत, सहस अठारह अंग स-मेत। अतीचार नहिं लगे जहां, तृतिय भावना कहिये तहां ॥ ३ ॥ आगमकथित अरथ अव-

धार, यथाशक्ति निजबुधि अनुसार। करै निरंतर ज्ञान अभ्यास, तुरिय भावना कहिये तास।४।
दोहा—धर्म धर्मके फलविषै, परतें प्रीति विशेख।
यही भावना पंचमी, लिखी जिनागम देख।५।

चौपाई।

औषधि अभय ज्ञान आहार, महादान ये चार प्रकार। शक्ति समान सदा निर्वहै, छठी भावना धारक वहै ॥६॥ अनसन आदि मुक्ति दातार, उत्तम तप बारह परकार। बल अनुसार करै जो कोय, सो सातमी भावना होय ॥७॥ यतीवर्ग को कारन पाय, विघन होत जो करै सहाय। साधु समाधि कहावै सोय, यही भावना अष्टमि होय ॥८॥ दशविध साधु जिनागम कहे, पथ पीडित रागादिक गहे। तिनकी जो सेवा सतकार, यही भावना नौमी सार ॥९॥ परमपूज्य आतम अरहंत, अतुल अनंत चतुष्टयवंत। तिनकी थुति नित पूजा भाव, दशमि भावना भवजलनाव ॥१०॥ जिनवरकथित अर्थ अव-

कर, रचना करें अनेक प्रकार। आचारजकी भक्ति विधान, एकादशमि भावना जान॥११॥ विद्यादायक विद्यालीन, गुणगरिष्ट पाठक पर-वीन। तिनके चरन सदा चित रहै, बहु श्रुत भक्ति बारमी यहै॥१२॥ भगवतभाषित अरथ अनूप, गणधरग्रंथित ग्रंथ स्वरूप। तहां भक्ति परतै अमलान, प्रवचनभक्ति तेरमी जान॥ १३ ॥ षट आवश्यक क्रिया विधान, तिनकी कबहूँ करै न हान। सावधान वरतै थित चित्त, सो चौदहवीं परम पवित्त॥ १४ ॥ कर जपतप पूजाव्रत भाव. प्रगट करै जिनधर्मप्रभाव। सोई मारगपरभावना. यही पंचदशमी भावना॥१५॥ चार प्रकार संघसों प्रीति. राखै गाय वत्सकी रीति। यह सोलहमी सब सुखदान. प्रवचन वातसल्य अभिधान॥ दोहा–

सोलह कारन भावना. परम पुण्यको खेत।
भिन्न भिन्न अरु सोलहों. तीर्थंकरपद देत॥
बंध प्रकृति जिनमतविषे. कही एक सो बीस।

सौं मतरह मिथ्यातमें. बांधत हैं निशदीस ॥
तीर्थंकर आहार द्विक. तीन प्रकृति ये जान ।
इनको वंध मिथ्यातमें. कह्यो नहीं भगवान ॥
तातें तीर्थंकर प्रकृति. तीनों समकित माहिं ।
सोलहकारणसों वंधैं. शिवको निश्चय जाहिं ॥

सोरठा ।

पूज्यपाद मुनिराय. श्री सरवारथ सिद्धिमें ।
कह्यो कथन इस न्याय. देख लीजिये सुबुधिजन ॥

१३८ बारहभावना मंगतरायकृत ।

दोहा छंद ।

वंदूं श्री अरहंतपद, वीतराग विज्ञान ।
वरणूं बारह भावना, जगजीवनहित जान ॥१॥

विष्णुपद छंद ।

कहां गये चक्री जिन जीता, भरतखंड सारा ।
कहां गये वह राम रु लछमन, जिन रावन मारा ॥
कहां कृष्ण रुक्मिणि सतभामा, अरु संपति सग-
री । कहां गये वह रंगमहल अरु, सुवरनकी
नगरी ॥ २ ॥ नहीं रहे वह लोभी कौरव जूझ

मरे रनमें। गये राज तज पांडव वनको, अगि-
न लगी तनमें ॥ मोहनींदसे उठ रे चेतन, तुझे
जगावनको। हो दयाल उपदेश करैं गुरु, बारह
भावनको ॥ ३ ॥

१। अथिर भावना।

सूरज चांद छिपै निकलै ऋतु, फिर फिर कर
आवै। प्यारी आयू ऐसी बीतै, पता नहीं पावै ॥
पर्वतपतितनदी सरिता जल बहकर नहिं हटता,
स्वास चलत यों घटै काठ ज्यों, आरेसों कटता
॥ ४ ॥ ओसबूंद ज्यों गलै धूपमें, वा अंजुलि
पानी। छिन छिन यौवन छीन होत है क्या
समझे प्रानी ॥ इंद्रजाल आकाश नगर सम
जगसंपति सारी। अथिर रूप संसार विचारो
सब नर अरु नारी ॥ ५ ॥

२। अशरण भावना।

कालसिंहने मृगचेतनको- घेरा भव वनमें।
नहीं बचावनहारा कोई- यों समझो मनमें ॥
मंत्र यंत्र सेना धन संपति, राज पाट छूटे।

वश नहिं चलता काल लुटेरा. काय नगरि लूटे।
चक्ररतन हलधरसा भाई. काम नहीं आया।
एक तीरके लगत कृष्णकी विनश गई काया॥
देव धर्म गुरु शरण जगतमें. और नहीं कोई।
भ्रमसे फिरै भटकता चेतन. यूँही उमर खोई॥

३। संसार भावना।

जनममरन अरु जरारोगसे. सदा दुखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु कालभावभव. परिवर्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशूगति. वध बंधन सहना।
रागउदयसे दुखसुरगतिमें. कहां सुखी रहना॥
भोगि पुण्यफल हो इकइंद्री. क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिनचार वही फिर. खुरपा अरु जाली
मानुषजन्म अनेक विपतिमय. कहीं न सुख देखा
पंचमगति सुख मिलै शुभाशुभको मेटो लेखा॥

४। एकत्व भावना।

जन्मै मरे अकेला चेतन. सुखदुखका भोगी।
और किसीका क्या इक दिन यह. देह जुदी
होगी॥ कमला चलत न पैंड जाय मरघट तक

परिवारा। अपने अपने सुखको रोवैं. पिता पुत्र दारा ॥ १० ॥ ज्यों मेलेमें पंथीजन मिलि नेह फिरै धरते। ज्यों तरवरपै रैन वसेरा पंछी आ करते॥ कोस कोई दोकोस कोई उड फिर थक थक हारै। जाय अकेला हंस संगमें. कोइ न पर मारै॥ ११ ॥

५। मिन्न भावना।

मोहरूप मृगतृष्णा जगमें मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रममें उठ उठ, दौडैं थक थकके॥
जल नहिं पावै प्राण गमावै. भटक भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी. भेद नहीं करता।१२॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड तू ज्ञानी।
मिलेअनादि यतनतें विछुडे, ज्यों पय अरु पानी॥
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौलों पौरुष थकै न तौलों उद्यमसों चरना॥

६। अशुचि भावना।

तू नित पोखै यह सूखै ज्यों, धोवै त्यों मैली।
निशदिन करै उपाय देहका, रोगदशा फैली॥

मातपितारज वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड नश लहू राधकी, प्रघट व्याधि घेरी॥
काना पौंडा पड़ा हाथ यह चूसै तौ रोवै।
फलै अनंत जु धर्म ध्यानकी, भूमिविषै बोवै।
केसर चंदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी।
देह परसते होय अपावन, निशदिन मल जारी॥

७। आस्रव भावना।

ज्यों सरजल आवत मोरी त्यों. आस्रव कर्मनको।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुद्गल भरमनको॥
भावित आस्रवभाव शुभाशुभ, निशदिन चेतनको
पाप पुण्यके दोनों करता, कारण बंधनको।१६।
पन मिथ्यात योग पंद्रह द्वादश अविरत जानो
पंचरु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो॥
मोहभावकी ममता टारै, पर परणत खोते।
करै मोखका यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते॥

८। संवर भावना।

ज्यों मोरीमें डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रवको रोकै संवर, क्यों नहिं मन लाता॥

पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर वचन काय मनको
दशविधधर्म परीषहबाइस, बारह भावनको ।१८।
यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रवको खोते
सुपन दशासे जागो चेतन, कहां पडे सोते ॥
भाव शुभाशुभ रहित शुद्धभावनसंवर पावै ।
डांट लगत यह नाव पडी मझधार पार जावै ॥

९ । निर्जराभावना ।

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पडे भारी ।
संवर रोके, कर्म निर्जरा, है सोखनहारी ॥
उदयभोग सविपाकसमय, पक जाय आम डाली ।
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषै माली ॥
पहली सबके होय नहीं, कुछ सरै काम तेरा ।
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत फेरा ॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी ।
इस दुलहिनकी यही सहेली, जानै सब ज्ञानी ॥

१० । लोक भावना ।

लोक अलोक अकाश माहिं थिर, निराधार जानो ।
पुरुषरूप कर कटी भये षट, द्रव्यनसों मानों ॥

इनका कोइ न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीवरु पुदगल नाचै यामैं, कर्म उपाधी है ॥२२॥
पापपुन्यसों जीव जगतमें, नित सुख दुख भरता।
अपनी करनी आप भरै शिर, औरनके धरता।
मोहकर्मको नाश मेटकर, सब जगकी आसा।
निज पदमें थिर होय लोकके, शीश करो वासा।

११। बोधिदुर्लभ भावना।

दुर्लभ है निगोदसे थावर, अरु त्रसगति पानी।
नरकायाको सुरपति तरसै सो दुर्लभ मानी॥
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना।
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षाका धरना।
दुर्लभ मुनिवरको व्रत पालन, शुद्धभाव करना॥
दुर्लभसे दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर इस भवमें आवै॥

१२। धर्मभावना।

षट दरशन अरु बौद्ध रु नास्तिकने जगको लूटा।
मूसा ईसा और मुहम्मदका मजहब झूटा॥

हो सुछंद सब पाप करै सिर, करताके लावै।
कोई छिनक कोई करतासे, जगमैं भटकावै॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष विन, श्रीजिनकी वानी।
सप्त तत्वका वर्णन जामैं, सबको सुखदानी॥
इनका चितवन बार बार कर, श्रद्धा उर धरना।
मंगत इसी जतनतैं इकदिन, भवसागरतरना॥

॥ इति मुलतानपुरनिवासी मंगतरायजीकृत बारह भावना॥

१३९। भावना द्वात्रिंशतिका।

सोरठा।

दुखनाशक जिनराय, बसो हृदयमैं मम सदा।
नाशो विषय कषाय, इस संसारी जीवके॥

शिखरणी छंद।

सुमैत्री जीवोंमें सुगुणिगणको देख उमगूं।
दयाको ही धारूं दुखितजनको देख करके॥
उपेक्षा हो मेरे मुदित मनमैं क्रूर जनसे।
सदा स्वामिन्! ऐसी परिणति रहै बोधबलसे॥

इन्द्रवज्रा छंद।

मेरा प्रभो! आत्म अनंत शक्ति,-धारी सदा कर्म-

कलंकमुक्त। हो जाउँ मैं भिन्न शरीरसे भी
ऐसी प्रभो! हो मम शक्ति व्यक्त ॥ २ ॥ दुःखं
सुखों शत्रु व बंधुओंमें, मेले अकेले घरमें बनों
में। मेरे सदा नाथ समानता हो, विनाश निः
शेष ममत्वका हो ॥ ३ ॥ पदाब्ज तेरे मन मांि
मेरे, गये उकेरे जडही गये वा। भानू सरीरं
तमनाशकारी, प्रभो! सदा मैं उनका पुजारी
॥ ४ ॥ छोटे-बडे जीव घने विदारे, प्रमादसे है
चलतेहुएमैं। वा दुःख दीने यदि जंतुओं
को, हो देव! मेरे वह पाप मिथ्या ॥ ५ ॥
कुमार्गगामी पथमुक्ति भूला, कषाय इंद्रीवश
बुद्धि नाशी। जो खो लिया है स्वचरित्र मैंने
हो देव! मेरा वह पाप मिथ्या ॥ ६ ॥ मनो-
वचःकाय कषायसे जो, हैं पाप कीने भवदुःख
मूल। स्वकीय निंदा गर्हा दिखाके, करूं उन्हें
नाश समस्तको ही ॥ ७ ॥ अतिव्यती वा
अतिचार मैंने, तथा अनाचार चरित्रमें जो।
किये कुबुद्धी व प्रमादसे हैं, संताप भारी उनका

मुझे है ॥ ८ ॥ मनोवचःकाय पवित्रताका उल्लं-
घ होवे कुछ अंशमें तो। अतिव्यती व अति-
चार होंगे, वही अनाचार समग्र हो तो ॥ ९ ॥
जो अर्थ मात्रा पद वाक्य छोडे, प्रमादसे की
स्तुति देवि तेरी। वे पाप मेरे च्युत हों सवेरा।
सर्वज्ञ होवै अरु आत्म मेरा ॥ १० ॥ हे देवि!
चिंतामणि नाम तेरा. वना सदा हूं चरणाब्ज
चेरा। श्रद्धा तथा ज्ञान चरित्र वृद्धी, दो सौख्य-
सिद्धी व समाधिको भी ॥ ११ ॥ किया गया
याद मुनीन्द्रसे जो, पूजा गया देव नरेंद्रसे जो।
गाया गया वेद पुराणमें जो, सो देव मेरे उरमें
विराजो ॥ १२ ॥ जो दर्शनज्ञान सुखस्वभावी,
समस्त संसार-विकारनाशी। जो ध्यानसे गम्य
परात्म संज्ञ, सो देव मेरे उरमें विराजो ॥ १३ ॥
विध्वंस-कर्ता भव-दुःखका जो, आलोक कर्ता जग
मध्यका जो। द्रष्टव्य जो योगि समाधिसे है,
सो देव मेरे उरमें विराजो ॥ १४ ॥ जो मोक्षका
मार्ग बता रहा है संसारके दुःख सुदूर जासे।

त्रैलोकद्रष्टा तनु-ताप-हीन, सो देव मेरे उरमें विराजो ॥१५॥ दुःखी किये हैं जग-जीव सारे, रागादि ऐसे जिसके नहीं हैं। ज्ञानी अतीन्द्री अनपाय है जो, सो देव मेरे उरमें विराजो ॥१६॥ कल्याणकारी जिसका स्वरूप, सुशुद्ध वा बुद्ध अबद्ध है जो। ध्याया हुआ कर्म-कलंक खोता सो देव मेरे उरमें विराजो ॥ १७ ॥ छूते नहीं हैं जिसको कलंक, जैसे सदा ध्वांत न सूर्यको है। जो ध्रौव्य निर्दोष अनेक एक, सो देव देवें मुझको सुशांति ॥ १८ ॥ जग-प्रकाशी रवि तेजको भी, जो है दबाता उस ज्ञानयुक्त तथा सदा हैं स्थिर आत्ममें जो, सो देव देवें मुझको सुशांति ॥ १९ ॥ संसार देता जिसमें दिखाई, निर्भ्रांत भाई ! उस ज्ञानयुक्त। शुद्ध-स्वरूपी शिव शांत नित्य, सो देव देवें मुझको सुशांति ॥ २० ॥ ज्वाला जलाती तरु-जाल जैसे, तैसे विनाशै जिन मान मूर्छा। विषाद निद्रा भय शोक चिंता, सो देव देवें मुझको सुशांति

॥२१॥ न भूमि चौकी तृण वा शिला भी, आते कभी काम समाधिमें हैं। विशुद्ध आत्मा जित राग-द्वेष, माना गया किंतु सुधी जनोंसे ।२२। है तो नहीं आसन ध्यानकारी, ना लोकपूजा नहिं संघ मेला। अध्यात्म संलीन सुभव्य हो- ओ. छोडो सदा वाह्य कुवासनाको ॥ २३ ॥ मेरा नहीं वाह्य पदार्थ कोई, न मैं हुआ हूं उनका कभी भी । ऐसा विचारो मनमें सदा ही हो वाह्यको छोड सुमुक्तिपात्र ॥ २४ ॥ आत्मा सदा देख स्व आतमें रे ! हो दर्शन-ज्ञानमयी विशुद्ध । एकाग्रचेता मुनि क्या कहीं भी, पाता नहीं है सुसमाधिको रे !॥ २५ ॥ आत्मा सदा नित्य व एक मेरा, ज्ञान-स्वभावी अकलंक भी है। पदार्थ सारे जगके विनाशी, उत्पन्न होते निज हेतुसे हैं ॥ २६ ॥ संबंध रक्खे न शरीरसे जो पुत्रादि होने उसके लगे क्यों?। जो कायसे खाल उतार डाले, तो रोमकूवे किसमें रहेंगे ? ॥ २७ ॥ प्राणी सदा दुःख अनेक पाता, सँयो-

ऐसे बाह्य कुवस्तुओंके । त्रियोगमें योग है
त्याग देवो, जो मुक्ति संयोग सुशीघ्र चाहो ॥२८॥
हो छोड संकल्प-विकल्प जाल संसारमें हैं नि-
जो रुलाते । विभिन्न देखो निज आत्मको रे
सुलीन होओ परमात्मनें रे ॥ २९ ॥ जो कर्म
तूने पहिले किये हैं देते तुझे हैं फल आज वे ही
देने लगे जो फल अन्य कोई, स्वयं किये कर्म
हि व्यर्थ होंगे ॥ ३० ॥ अतः विचारो मनमांहि
ऐसे, स्वकर्मको छोड न अन्य कोई । देता किसी
को कुछ भी नहीं है, निजात्मका ध्यान न क्यों
करूं मैं ॥ ३१ ॥
गया पूजा भाई अमितगतिसे देव नित जो ।
विवेकी निर्दोषी सु अतिशयसे है सहित जो ॥
करेंगे जो प्राणी मन-कमलमें ध्यान उसका ।
सदा सो पावेंगे परम-पद जैसे विभवको ॥३२॥
"अमर" छंद बत्तीस से, परमातमका ध्यान ।
एकचित्त हो जो करे, पावै पद निर्वान ॥३३॥

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-
परत्वं । माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा
विदधातु देव ! ॥ १ ॥ शरीरतः कर्तुमनंतशक्तिं
विभिन्नमात्मानमपास्तदोषं । जिनेंद्र कोषादिव
खड्गयष्टिं तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥ २ ॥
दुःखे सुखे वैरिणि बंधुवर्गे योगे वियोगे भुवने
वने वा । निराकृताशेषममत्वबुद्धेः समं मनो मे-
स्तु सदापि नाथ ॥ ३ ॥ मुनीश ! लीनाविव की-
लिताविव स्थिरौ निखाताविव बिंबिताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा तमोधुनानौ हृदि
दीपकाविव ॥ ४ ॥ एकेंद्रियाद्या यदि देव ! देहि-
नः प्रमादतः संचरता इतस्ततः । क्षता विभिन्ना
मिलिता निपीडिता-स्तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं
तदा ॥ ५ ॥ विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना मया
कषायाक्षवशेन दुर्धिया । चारित्रशुद्धेर्यदकारि
लोपनं तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥ ६ ॥
विनिंदनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषाय-

निर्मितं। निहन्मि पापं भवदुःखकारणं भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलं ॥७॥ अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं जिनातिचारं सुचरित्रकर्म्मणः। व्यधामनाचारमपि प्रमादतः प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ।८। क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनं। प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदंत्यनाचारमिहातिसक्ततां ॥९॥ यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद्यदि किंचनोक्तं। तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी सरस्वती केवलबोधलब्धिं ॥ १० ॥ बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः। चिंतामणिं चिंतितवस्तुदाने त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥ ११ ॥ यः स्मर्यते सर्वमुनींद्रवृंदैर्यः स्तूयते सर्वनरामरेंद्रैः। यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १२ ॥ यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः समस्तसंसारविकारबाह्यः। समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः. स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥१३॥ निषूदते यो भवदुःखजालं. निरीक्ष-

ते यो जगदंतरालं। योंतर्गतो योगिनिरीक्षणीयः
स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥१४॥ विमुक्तिमार्ग-
प्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलंकः, स देवदेवो हृदये
ममास्तां ॥१५॥ क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गाः, रा-
गादयो यस्य न संति दोषाः। निरिंद्रियो ज्ञान-
मयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥१६॥
यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो
धुतकर्मबंधः। ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स
देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १७॥ न स्पृश्यते कर्म
कलंकदोषैः यो ध्वांतसंघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरंजनं नित्यमनेकमेकं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये
॥ १८ ॥ विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्य-
माने भुवनावभासि। स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं
तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १९ ॥ विलोक्यमाने
सति यत्र विश्वं विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तं
शुद्धं शिवं शांतमनाद्यनंतं, तं देवमाप्तं शरणं-
प्रपद्ये ॥२०॥ येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषाद-

निद्राभयशोकचिंता। क्षयोऽनलेनेव तरुप्रपंचस्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥ न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी विधानतो नो फलको विनिर्मितः। यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥२२॥ न संस्तरोभद्र समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनं। यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वा अपि बाह्यवासनां ॥ २३ ॥ न संति बाह्या मम केचनार्था भवामि तेषां न कदाचनाहं। इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै ॥ २४ ॥ आत्मानमात्मन्यवलोक्यमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः। एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिं ॥ २५ ॥ एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा विनिर्मलः साधिगमस्वभावः बहिर्भवाः संत्यपरे समस्ता न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥ २६ ॥ यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः। पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः कुतो हि

तिष्ठंति शरीरमध्ये ॥ २७ ॥ संयोगतो दुःखम-
नेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी। ततस्त्रि-
धासौ परिवर्जनीयो. यियासुना निर्वृतिमात्मनी-
नां ॥ २८ ॥ सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं संसार-
कांतारनिपातहेतुं। विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो
निलीयसे त्वं परमात्मतत्वे ॥ २९ ॥ स्वयं कृतं
कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभं।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयंकृतं कर्म निर
र्थकं तदा ॥३०॥ निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो
न कोपि कस्यापि ददाति किंचन। विचारयन्ने-
वमनन्यमानसः परो ददातीति विमुच्य शेमुषीं
॥३१॥ यैः परमात्माऽमितगतिवंद्यः सर्वविविक्तो
भृशमनवद्यः। शश्वदधीतो मनसि, लभंते मु-
क्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥ इति द्वात्रिंशति-
वृत्तैः परमात्मानमीक्षते। योऽनन्यगतचेतस्को,
यात्यसौ पदमव्ययं ॥ ३२ ॥

१५१। मेरी भावना।

जिसने राग रोष कामादिक जीते, सबजग

जान लिया, सब जीवोंको मोक्षमार्गका निस्पृह हो उपदेश दिया। बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो, भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह चित्त उसीमें लीन रहो ॥ १ ॥ विषयोंकी आशा नहिं जिनके साम्य-भाव धन रखते हैं, निजपरके हित-साधनमें जो निश-दिन तत्पर रहते हैं। स्वार्थत्यागकी कठिन तपस्या विना खेद जो करते हैं, ऐसे ज्ञानी साधु जगतके दुखसमूहको हरते हैं ॥ २ ॥ रहे सदा सत्संग उन्हींका, ध्यान उन्हींका नित्य रहे, उनही जैसी चर्यामें यह चित्त सदा अनुरक्त रहे। नहीं सताऊँ किसी जीवको, झूठ कभी नहिं कहा करूं, परधन वनितापर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥ ३ ॥ अहंकारका भाव न रक्खूं, नहीं किसीपर क्रोध करूं। देख दूसरोंकी बढतीको कभी न ईर्षा-भाव धरूं। रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूं।

१। स्त्रियां 'वनिता' की जगह 'परनर' पढ़ा करें।

बने जहां तक इस जीवनमें औरोंका उपकार करूं ॥४॥ मैत्रीभाव जगतमें मेरा सब जीवोंसे नित्य रहै, दीन-दुखी जीवोंपर मेरे उरसे करुणा-स्रोत बहै। दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतोंपर क्षोभ नहीं मुझको आवै, साम्यभाव रक्खूं मैं उनपर, ऐसी परिणति हो जावै ॥ ५ ॥ गुणीजनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड आवै, बनै जहांतक उनकी सेवा करकै यह मन सुख पावै। होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं द्रोह न मेरे उर आवै, गुण ग्रहणका भाव रहै नित दृष्टि न दोषोंपर जावै ।६। कोई बुरा कहो या अच्छा लक्ष्मी आवै या जावै, अनेक वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आजही आ जावै। अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवै, तो भी न्यायमार्गसे मेरा कभी न पद डिगने पावै ॥ ७ ॥ होकर सुखमें मग्न न फूलै दुखमें कभी न घबरावै, पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक अटवीसे नहिं भय खावै। रहै अडोल-अकंप निरंतर यह मन दृढतर बन जावै. इष्टवि-

योग-अनिष्टयोगमें सहनशीलता दिखलावे ।८।
सुखी रहैं सब जीव जगतके कोई कभी न घब- रावें । वैर-भाव-अभिमान छोड जग नित्य नये मंगल गावें । घर घर चर्चा रहै धर्मकी दुष्कृत दुष्कर हो जावें, ज्ञान-चरित उन्नतकर अपने मनुजजन्मफल सब पावें ॥९॥ ईति-भीत व्यापै नहिं जगमें वृष्टि समयपर हुआ करै, धर्मनिष्ठ होकर राजाभी न्याय प्रजाका किया करै। रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शांतिसे जिया करै परम अहिंसा-धर्म जगतमें फैल सर्वहित किया करै ॥१०॥ फैलै प्रेम परस्पर जगमें मोह दूरहीं रहा करै, अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं कोई मुखसे कहा करै। बनकर सब 'युगवीर' हृदयसे देशोन्नतिरत रहा करैं, वस्तुस्वरूपविचार खुशी- से सब दुख-संकट सहा करैं ॥ ११ ॥

१४२ । जकडी रूपचंदकृत ।

चेतन अचरज भारी, यह मेरे जिय आवै ।

अमृतवचन हितकारी, सदगुरु तुमहिं पढावे ॥ सदगुरु तुमहिं पढावे चित दे, अरु तुमहू हौ ज्ञानी। तबहू तुमहिं न क्यों हू आवे, चेतन तत्व-कहानी ॥ विषयनकी चतुराई कहिये, को सरि करै तुम्हारी। विन गुरु फुरत कुविद्या कैसें, चेतन अचरज भारी ॥१॥ चेतन चतुर सयाने, काहे तुम भ्रम भूले ॥ विषय जु देखि रवाने कहा जानि जिय फूले कहा जानि जिय फूले चेतन, तुम तौ विधिनों बाँचे। सुद्ध सुभाव सहज सुख छोरि जु, इंद्रिय-सुख-रस-राचे ॥ भोजन सेज वेपकर जुँवती-गीतादिक जु रवाने। भये सुवा भव-सेंवरद्रुमके चेतन चतुर सयाने।२। मोहमहामदमाते, बादि अनादिगँवायौ। अपने धरमनि घातें, विषय-निसों मन लायौ॥ विषयनिहीसौं मन लायौ तु-म. वाहिर सुंदर दीठे। विषफल परिहर शेष क-

१ बराबरी। २ रमणीय—सुन्दर। ३ तुम तो कर्मफलको बांधा अर्थात् तू पड़ा है। ४ युवती—जवान स्त्री। ५ संसार-रूपी सेमर वृक्षके तोते। ६ व्यर्थ ही।

टुक हैं, सेवत ही सुख मीठे ॥ कामभोगभ्रमभाव भुलाने, रुचैं न सद्गुरुबातें । हित अनहित कछु समझत नाहीं, मोहमहामदमातें ॥ ३ ॥ इंद्रिनिको सुख सेये सुखलवे दुख अधिकायों । सविष सुभोजन जेंये, कब कौनें सुख पायो ॥ कब कौनें सुख पायो चेतन, ये सुख दुखके स्वादे । फरस दंति, रस मीन, गंध अलि, रूप सलभ, मृग नादे ॥ एक एक इंद्रिनिको यह दुख, पाँचों तुमहिं बँधे ये । सावधान किन होहु बंध है, इंद्रिनको सुख सेये ॥४॥ इह संसारमँझारे, सुर नरवर पद पाए । स्वकृतकरमअनुसारे, सुख सेये मन भाये ॥ सुख सेये मन भाये तुम चिर, इंद्रिनि रचि सुख माने । तब हू तृपति भई नहिं कबहू, अरु तिसना अधिकाने । अब रतनत्रयपथ धरि शिवपुर, जाहु जु होहु सुखारे । रूपचंद कत दुख देखत हो, इह संसारमँझारे ॥५॥

---

१ सुखका लव अर्थात् जरासा टुकड़ा । २ बेले-वारे । ३ हाथी । ४ भंवरा । ५ पतंगा । ६ सुन्दर शब्द रागादिको सुनकर । ७ क्यों ।

३ । जकड़ी रूपचंदकृत ।

राग गौड़ी

र भूल्यो भम्यौ, देख्यौ चित न विचारि।
संगति वाहि पर्यौ इह भव-गहन मझा-
ह भवगहनमझारि मूरख, दुखदवानल
यौ । मिथ्यातपितसों दिष्टि छाई, मुकति-
तें लह्यौ ॥ तू पंच-इंद्री-सुखतृपा वसि,
ार-सलिल छम्यौ । निज सुख सुधार-
चहुंगति, चेतन चिर भूल्यो भम्यौ ।१।
चिर भ्रमतहिं गयौ, रहियो कहुं न थि-
र्मप्रकृतिपेर्यो फिर्यो, देख्यो लोक शि-
देखियौ लोकशिराय सबतें, ऊंच नीच
रै। करम अरु नोकरमरूपी. सकलपुद-
हरै ॥ परिनयौ परपरनाति निरंतर. काज
ऊ न भयौ। परम-रत्नत्रय-लबधि बिनु
चिर भ्रमतहिं गयौ ॥२॥ गाफिल ह्वै:
ी. अपनी सुरत विसारि । विषय कषा
भयौ, दीने योग पसारि ॥ दीने नियोग

पसारि तीनों. सुभासुभरमपरिनयों । आश्र
संतत करम बहु विधि. तोहि तिनि ओंवरिलयौं
जिय कछू सुधिबुधि तोहि नाहीं. मूढमोहप्रहा
गह्यौ । गुन मील सरवस खोय अपनौ. गाफिल
ह्वैके कहा रह्यो ॥ ३ ॥ चेति चतुरमति चेतना
परपरनतिहिं निवारि । दर्शनज्ञानचरित्रमय. अ
पनी वस्तु सँभारि ॥ अपनी वस्तु सँभारि विसरी.
कहा इत उत भटक ही । बहिरमुख भूल्यो भैया
कत. छोडि कनं तुँप झटकही ॥ निजवस्तु अंत
रगत विराजित. चिदानंदनिकेतनौ । स्वानुभव
बुद्धि प्रज्जुंजि देखहि चेति चतुरमतिचेतना ॥४॥
इह संसारकुवासतें. दुख देखे चिरकाल । अब तू
यातें विरचकरि. छोडि सकल भ्रमजाल ॥ छोडि
सकल भ्रमजाल चेतन. रतनत्रय आराध ही ॥
आपुने बलहिं सँभार अतिबल. करमबैरीनि सा
ध ही । समरसीभाव सुभावपरनति. सदा रहहि

१ ढक [illegible] । २ भैंदा । ३ चावल । ४ छिलका । ५ झटकना
६—शीघ्र ही ले लेता है । . हे चिदानंद[illegible] [illegible] ।

। रूपचंद' सहजहीं छूटहिं- इह संसार-
॥ ५॥

। । जकड़ी दौलतरामकृत ।

मेरा वे- सीखवचन सुन मेरा । भजि
पद वे- ज्यौं विनसै दुख तेरा ॥ विनसै
भववनकेरामनवचतन जिनचरन भजो।
वश राख सुज्ञानी- मिथ्यामतमग-दौर
मिथ्यामतमग पगि अनादितैं-तैं चहुंगति
फेरा। अबहू चेत अचेत होय मत, सीख
न मनमेरा ।१। इस भववनमें वे, तैं साता
ई। वसुविधिवश ह्वै वे, तैं निजसुधि वि-
तैं निजसुधि विसराई भाई, तातैं विमल
लहा। परपरनतिमें मगन भयो तू, जन्म
-दाह-दहा ॥ जिनमत सारसरोवरकों
ाहि लागि निजचिंतनमें। तो दुखदाह
नातर, फेर फंसै इस भववनमें ॥ २ ॥

री बनका। २ पांच इंद्रियां। ३ आठ कर्मों के वश

इस तनमें तू वे, क्या गुन देख लुभाया। महा अपावन वे, सतगुरु याहि वताया॥ सतगुरु याहि अपावन गाया, मलमूत्रादिकका गेहा। कृमिकुल कलित लखत घिन आवै, यासौं क्या कीजे नेहा॥ यह तन पाय लगाय आपनी, परनति शिवमग-साधनमें। तो दुखदंद नशै सब तेरा, यही सार है इस तनमें॥३॥ भोग भले न सही, रोग शोकके दानी। शुभगतिरोकन वे दुर्गतिपथ अगवानी॥ दुर्गतिपथ अगवानी हैं जे. जिनकी लगन लगी इनसौं। तिन नानाविध विपति सही है. विमुख भयो निजसुख तिनसौं॥ कुंजर[1] झख[2] अलि[3] शलभ[4] हिरन इन, एक अक्ष[5]वश मृत्यु लही। यातैं देख समझ मनमांहीं. भवमैं भोग भले न सही॥४॥ काज सरै तब वे. जब निजपद आराधै। नशै भवावलि[6] बे निराबाधपद लाधै॥ निराबाधपद लाधै तब तोहि. केवलदर्शनज्ञान

---

१ हाथी। २ मछली। ३ भौंरा। ४ पतंगा। ५ एक-एक इन्द्रियके वशसे। ६ भवोंका समूह।

जहां। सुख अनंत अति-इंद्रियमंडित. वीरज अचल अनंत तहां॥ ऐसा पद चाहै तो भज निज. बार वार अव को उचरै। 'दौल' मुख्य उपचार रत्नत्रय. जो सेवै तो काज सरै॥ ५॥

१४५। जकड़ी दौलतरामकृत।

वृषभादि जिनेश्वर ध्याऊं. शारद अंबा चित लाऊं। द्वैविधि-परिग्रह-परिहारी. गुरु नमहुं स्व-पर हितकारी॥ हितकारि ताकर देवश्रुत गुरु. परख निजउर लाइये। दुखदायकुपथविहाय शिवसुख,-दाय जिनवृष ध्याइये। चिरतैं कुमग-पगि मोहठगकरि, ठग्यौ भव²-कानन पर्यौ। च्यालीसद्विकलख जौनिमैं, जरै⁴-मरन-जामनदव-जर्यौ॥१॥ जब मोहरिपु दीन्हीं घुमरिया, तस-वश निगोदमैं परिया। तहां स्वास एककेमाहीं, अष्टादश मरन लहाहीं॥ लहि मरन अंतमुहूर्तमैं, छ्यासठ सहस शत तीन ही। षटतीस काल

१ "जिन" भी पाठ है। २ संसाररूपी वन। ३ चौरासी लाख योनि। ४ वृद्धावस्था, मृत्यु और जन्मरूपी अग्निमें जला।

अनंत यों दुख, सहे उपमा ही नहीं ॥ कबहू लही
वर आयु छिति[1] जल,[2]-पवन-पावक तरुतणी । तस
भेद किंचित कहूं सो सुन कह्यो जो गौतमगणी
॥ २ ॥ पृथिवी द्वयभेद बखाना मृदु माटी-
कठिन पखाना । मृदु द्वादशसहस्र वरसकी पाहन
बाईस सहसकी ॥ पुनि सहस सात कही उदक
थय, सहसवर्ष समीरकी । दिन तीन पावक दश
सहस तरु, प्रभृति नाश सुर्पारकी ॥ विनघात
सूक्ष्म देहधारी. घातजुत गुरुतन लह्यौ । तहँ
खनन तापन जलन व्यंजन. छेद-भेदन दुख स-
ह्यौ ॥३॥ शंखादि दुइंद्री प्रानी. थिति द्वादशवर्ष
बखानी ॥ यूँकादि[3] तिइंद्री हैं, जे वासर उनचास
जियें ते ॥ जीवैं छमास अलीप्रमुख,[4] ब्यालीस
सहसउरगतनी । खगकी वहत्तरसहस नवपूर्वांग
सरिसृपकी[5] भनी ॥ नरमत्स्यपूरवकोटकी थिति
करमभूमि बखानिये । जलचरविकलविन भोग-

१ पृथ्वी । २ पानी । ३ जूं आदि । ४ भ्रमर आदि ।
५ सर्पविशेष

भूनर-पशु त्रिपल्य प्रमानिये ॥ ४ ॥ अघवश करि नरक वसेरा. भुगतैं तहँ कष्ट घनेरा। छेदैं तिलतिल तन सारा. छेपैं द्रेहपूतिमझारा ॥ मझार वज्रानिल पचावैं. धरहिं शूली ऊपरैं। सींचैं जु खारे वारिसौंदुठ. कहैं व्रेण नीके करैं ॥ वैतरणिसरिता समलजल अति दुखद तरुसेंवल तने। अति भीमवन असिकांत समदलैं. लगत दुख देवैं घने ॥५॥ तिस भूमैं हिम गरमाई. सुरगिरिसम अँस गल जाई। तामैं थिति सिंधु तनी है. यों दुखदनरक अवनी है ॥ अवनी तहांकी तैं निकसि. कवहू जनम पायौ नरौ। सर्वांग सकुचित अति अपावन.जठरजननीके परौ ॥ तहँ अधोमुख जननीरसांश.-थकी जियौ नव मास लौं। ता पीरमैं कोउ सीर नाहीं.सहै आप निकास लौं ॥ ६ ॥ जनमत जो संकट पायौ, रसनातैं जात न गायौ। लहिबालपने दुखभारी.

---

१ भोगभूमिया मनुष्य और पशु। २ दुर्गंधिके भरे तालाब। ३ फोड़े। ४ तलवारकी धार। ५ पत्ते। ६ लोहा। ७ पृथ्वी।

तरुनापो त्यों दुखकारी ॥ दुखकारि इष्ट वियोग अशुभ-संयोग सोग सरोगता। परसेव ग्रीषमशीतपावस, सहै दुख अतिभोगता ॥ काहू कुतिय काहू कुबांधव, कहुं सुता व्यभिचारिणी। किसहू विसन-रत पुत्र दुष्ट, कलत्र कोउ परहारिणी ॥ ७ ॥ वृद्धापनके दुख जेते, लखिये सब नयननतें ते। मुख लाल बहे तन हाले, विनशक्ति न वसन सँभाले ॥ न संभाल जाके देहकी तो कहो वृषकी का कथा। तबही अचानक आन जम गहे, मनुजजन्म गयो वृथा॥ काहू जनम शुभ ठान किंचित, लह्यो पद चउदेवको। अभियोग किल्विष नाम पायो, सह्यो दुख परसेवको ॥ ८॥ तहँ देख महा सुररिद्धी, झूर्यो विषयनकरि गृद्धी। कबहूं परिवार नसानो, शोकाकुल ह्वै विललानो ॥ विललाय अति जब मरन निकट्यो, सह्यो संकट मानसी

१ दूसरोंकी सेवा नौकरी। २ दुष्ट स्त्री। ३ व्यसनी। ४ की। ५ धर्मकी। ६ चार प्रकारके देव। ७—८ देवोंमें आभियोग और किल्विष एक प्रकारके नीचे सेवकोंके समान देव होते हैं।

सुरविभव दुखद लगी तबै जब. लखी मालै[1] म्लानैसी[2] ॥ तबही जु सुर उपदेशहित समुझाइयौ समुझ्यौ न त्यों। मिथ्यात्वजुत च्युत कुगति पाई. लहै फिर सो स्वपद क्यों ॥९॥ यों चिर भव-अटवी गाही-किंचित साता न लहाही। जिन कथित धरम नहिं जान्यो. परमाहिं अपनपो मान्यो ॥ मान्यो न सम्यक त्रयातम आतम अनातममैं फस्यो। मिथ्या-चरण दृग्ज्ञान रंज्यौ जाय नवग्रीवक बस्यो ॥ पै लह्यो नहिं जिन-कथित शिवमग. वृथा भ्रम भूल्यो जिया। चिदभावके दरसावविन सब गये [3]अहले तपकिया ॥ १० ॥ अब अद्भुत पुण्य उपायो. कुलजात विमल तू पायो। यातैं सुन सीख सयाने, विषयनसौं रति मत ठाने ॥ ठाने कहा रतिविषयमैं ये, विषम [4]विषधरसम लखो। यह देह मरत अनंत इनकौं- त्यागि आतमरस चखो ॥ या रसरासिकजन बसे शिव अव- वसैं पुनि बसि

---

१ माला। २ मुरझानी हुई। ३ व्यर्थ। ४ सर्पके समान।

हैं सहा। जहा मार मार सदैव सुनिये, एक क्षण साता नहीं। नारक परस्पर युद्ध ठान, असुरगण क्रीडा करें। इसविध भयानक नरकथानक, सहैं जी परवश परें ॥ ३ ॥ मानुषगतिके दुख भूल्यो। वसि उदर अधोमुख झूल्यो ॥ जनमत जो संकट सेयो। अविवेकउदय नहिं वेयो ॥ वेयो न कछु लघुवालवयमें, वंशतरुकोंपल लगी। दलरूप यौवन वयस आयौ, काम-दौं-तव उर जगी॥ जब तन बुढापो घट्यो पौरुष, पान पकि पीरो भयो। झडि पर्‌यौ काल-वयार बाजत, वादि नरभव यौं गयौ ॥४॥ अमरापुरके सुख कीने। मनवांछित भोग नवीने॥ उरमाल जबैं मुरझानी। विलप्यो आसन-मृतु जानी॥ मृतु जान हाहाकार कीनौं, शरण अब काकी गहौं। यह स्वर्गसंपति छोड अब मैं, गर्भवेदन क्यौं सहौं॥ तब देव मिलि समुझाइयो, पर कछु विवेक न उर बस्यो। सुरलोक-गिरिसों गिरि अज्ञानी, कुमति-कादौं फिर फँस्यो॥ ५ ॥ इहवि": इस

कल्पद्रुमके फल, रथ पायक बहु रिद्धि सही ॥ तेज तुरंग तुंग गज नौ निधि, चौदह रतन छखंड मही ॥ रति उनहार रूपकी सीमा सहस छ्यानवै नारि वरै। सो सब जान धर्मफल भाई जो जग सुंदरि दृष्टि परै ॥३॥ लगैं असुंदर वे, कंटकबान घनेरे। ते रस फलिया वे, पापकनकतरुकेरे ॥ ते सब पापकनकतरुके फल, रोग सोग दुख नित्य नये। कुथित शरीर चीर नहिं तापर, घरघर फिरत फकीर भये ॥ भूख प्यास पीडै कन मांगै,होत अनादर पगपगमैं। ये परतच्छ पापसंचितफल,लगैं असुंदर जे जगमैं ।४। इस भववनमैं वे, ये दोऊँ तरु जाने। जो मन मानैं वे, सोई सींच सयाने ॥ जो सींच सयाने जो मन मानैं,बेर बेर अब कौन कहै। तू करतार तुही फल भोगी, अपने सुख दुख आप लहै ॥ धन्य धन्य जिनमारग सुंदर, सेवनजोग तिहूंपनमैं। जासौं समुझि परै सब 'भूधर' सदा शरण इस भववनमैं ॥ ५ ॥

१४७ । जकड़ी रामकृष्णकृत ।

अरहंतचरन चितलाऊं। पुन सिद्ध शिवंकर ध्याऊं ॥ वंदों जिनमुद्राधारी। निर्ग्रंथ यती अविकारी ॥ अविकार करुणावंत वंदों, सकललोकशिरोमणी। सर्वज्ञभाषित धर्म प्रणमूं, देय सुख संपत्ति घनी। ये परममंगल चार जगमें, चारु लोकोत्तम सही। भवभ्रमत इस असहाय जियको, और रक्षक कोउ नहीं ।१। मिथ्यात्व महारिपु दंड्यो। चिरकाल चतुर्गति हंड्यो ॥ उपयोग-नयन-गुन खोयौ। भरि नींद निगोदे सोयौ ॥ सोयौ अनादि निगोदमें जिय, निकर फिर थावर भयो। भू तेज तोय समीर तरुवर, थूलसूच्छमतन लयौ ॥ कृमि कुंथु अलि सैनी असैनी व्योम जल थल संचर्यौ। पशुयोनि बासठलाख इसविध, भुगति मर मर अवतर्यौ ॥२॥ अति पाप उदय जब आयौ। महानिंद्य नरकपद पायौ ॥ थिति सागरोंबंध जहां है। नानाविध कष्ट तहां है ॥ है त्रास अति आताप वेदन, शीत-बहुयुत

हैं सही। 'दौलत' स्वरांचे पराविरचि सतगुरु-सीख नित उर धर यही ॥

१४६ । जकड़ी भूधरकृत ।

अब मन मेरे बे, सुन सुन सीख सयानी। जिन-वर चरना बे,कर कर प्रीति सुज्ञानी ॥ करप्रीति सुज्ञानी शिवसुखदानी, धन जीतब है पंचदिना। कोटिबरसजीवौ किसलेखे,जिनचरणांबुज भक्ति विना ॥ नरपरजाय पायअति उत्तम गृहबसि यह लाहा लेरे। समझ समझ बोलैं गुरुज्ञानी, सीख सयानी मन मेरे ॥१॥ तू मति तरसै बे, संपति देख पराई। बोये लुनि ले बे, जो निज पूर्वक-माई ॥ पूर्वकमाई संपति पाई देखि- देखि मति झूर मरै। बोय बँबूल शूल तरु भोंदू, आमनकी क्यों आस करै ॥ अब कछु समझ-बूझ नर तासौं ज्यों फिर परभव सुख दरसै। कर निज-ध्यान दान तप संजम देखि विभवपर मत तरसै ॥२॥ जो जगदीसै बे, सुंदर अर सुखदाई। सो सब फलिया बे.धरम-कल्पद्रुम भाई ॥ सो सब धर्म

मोही जीनें। परिवर्तन पूरे कीनें ॥ तिनकी बहु कष्ट कहानी। सो जानत केवलज्ञानी ॥ ज्ञानी विना दुख कौन जानें, जगत-वनमें जो लह्यो। जरजन्ममरणस्वरूप तीछन, त्रिविध दावानल दह्यो ॥ जिनमतसरोवरशीतपर अव, बैठ तपन बुझाय हो। जिय मोक्षपुरकी बाट बूझो, अव न देर लगाय हो ॥६॥ यह नरभव पाय सुज्ञानी। कर कर निजकारज प्रानी ॥ तिर्जंचयोनि जव पावै। तव कौन तुझे समझावे ॥ समुझाय गुरु उपदेश दीनो, जो न तेरे उर रहै। तो जान जीव अभाग्य अपनो, दोष काहूको न है ॥ सूरज प्रकाशै तिमिर नाशै, सकल जगको तम हरै। गिरि-गुफा-गर्भ-उदोत होत न, ताहि भानु कहा करै ।७। जगमाहिं विषयवन फूल्यो। मनमधुकर तिहिंबिच भूल्यो ॥ रसलीन तहां लपटान्यो। रस लेत न रंच अघान्यो ॥ न अघाय क्यों ही रमैं निशिदिन, एक छन भी ना चुकै। नहिं रहै वरज्यो वरज देख्यो,

दशवां अध्याय

जैनव्रत कथा संग्रह

१४९ पुष्पांजलिव्रत कथा

दोहा–जीनदेवको प्रणमिकरि, अर्चा करों त्रिकाल।
पुष्पाजलिव्रतकी कथा, सुनो भव्य अघ टाल ॥१॥

चौपाई–पर्वत विपुलाचल पर आय। समोशरण जिनवरका पाय। तिहँ सुन राजा श्रेणिक राय। वन्दन चले प्रियायुत भाय ॥२॥ वन्दन कर पूछत नृप तबै। हे प्रभु पुष्पाजलिव्रत अबै। मोमों कहो करों चितलाय। कौनै कियो कहा फल पाय ॥३॥ बोले गौतम वचन रसाल। जंबूद्वीप मध्य सुविशाल। सीतानदि दक्षिण दिशि सार। मॅगलावती सुदेश मॅझार ॥४॥

दोहा–रतनसचयपुर तहा, वज्रसेन नृपराय।
जयवती वनिता लसै, पुत्र विना ही थाय ॥५॥

चौपाई–पुत्र चाह जिन मंदिर गई। ज्ञानोदधि मुनि वंदित भई। हे मुनिनाथ कहो समझाय। मेरे पुत्र होय कै नाँय ॥६॥ दोहा–मुनि बोले हे बालकी, पुत्र होय शुभ सार। भूमी छह खॅड साधि है मुक्ति तनों भरतार ॥७॥ सुनकर मुनिके वचन तब, उपज्यो हर्ष अपार। क्रमसों पूरे मास नव, पुत्र भयो शुभ सार॥ ॥८॥ यौवन वयस सो पायकर, क्रीड़ा मंडप सार। तहां व्योममों आइयो, खग भूपर तिसबार ॥९॥ रत्नशिखरको देखकर, बहुत प्रीति उरमाहिं। मेघवाहनने पांचसौ, विद्या दीनी ताहि ॥१०॥

चौ०—दोनों मित्र परस्पर प्रीति। गये मेरु वंदन तज भीति॥ सिद्धकूट चैत्यालय वंदि। आये सब जन मन-आनंदि॥११॥ ताकी सखी जनाई सार। वेग स्वयंवर करो तैयार॥ भूरि भूप आये ततकाल माल रत्नशेखर गल डाल॥१२॥ धूमकेतु विद्याधर देख क्रोध कियो मनमांहि विशेख॥ कन्या काज दुष्टता धरी। विद्या बल बहु माया करी॥१३॥ युद्ध रत्नशेखरस्यों कर्यो। बहुत परस्पर विद्या धरी॥ जीत रत्नशेखर निरधार। पाणिग्रहण कियो व्यवहार॥१४॥ मदनमंजूषा रानी संग। आयो अपने गेह उमंग॥ वज्रसेनको कर नमस्कार। मात तात मन सुक्ख अपार॥१५॥ एक दिना मंदिर-गिरि योग। वन्दे मित्र सहित सब लोग॥ चारण मुनि वंदे निरधार। सुन्यो धर्म चित भयो उदार॥१६॥ हे मुनि पूर्वजन्म संबन्ध। दोनों के तुम कहो निबन्ध। तब मुनि कहैं सुनो चितधार। एक मृणाल नगर सुखकार॥१७॥ नृप मन्त्री इक तँह श्रुतकीर्ति। बन्धुमती वनिता अतिप्रीति॥ एक दिना वन क्रीडा गयो। नारी संग रमत सो भयो॥१८॥ पापी सर्प सो भक्षण करी। मंत्री मृतक लखी निज नारी॥ गयो विरक्त जिनालय जाय। दीक्षा लीनी मन हर्षाय॥१९॥ यथाशक्ति तप कुछ दिन कर्यो। पीछे भ्रष्ट भयो तप टर्यो॥ गृह आरम्भ करन चित ठन्यो। तब पुत्री सुख ऐसे भन्यो॥२०॥ तात जु मेरु चढ़े किहिं काज। फिर भवसिंधु पड़े तज लाज॥ यों सुन प्रभावती वचसार। मंत्री कोप कियो अधिकार॥२१॥ तब विद्याको आज्ञा करी। पुत्रीको ले वनमें धरी॥ विद्या जब वनमें ले गई। प्रभा-

वती मन चिन्ता भई ।।२२।। अरहत भक्ति चित्तमें धरी।
विद्या फिर आई खरी ।। हे पुत्री तेरा चित जहाँ। तेरा गोन
चाऊं तहां ।।२३।। पुत्री कही कैलाशके भाव। जिनदर्शन
अधिकहि चाव ।। पूजा करके बैठी वहां। पद्मावति सो
तहाँ ।।२४।। इतने मध्यम देव आइयो। प्रभावतीने प्रश्न
कियो ।। हे देवी कहिये किस काज। आये देवी देव
।।२५।। पद्मावति बोली वचसार। पुष्पांजलिव्रत है सु
भादों मास शुक्ल पचमी। पंच दिवस आरम्भ न
प्रोषध यथाशक्ति व्यवहार, पूजौ जिन चौवीसी सार। नानाविधि
के पुष्प जु लाय। करें एक माला जु बनाय ।।२७।। तीनकाल
वह माला देय। बहुत भक्ति सों विनय करेय ।। जपै जाप शुभ
मंत्र विचार। या विधि पंच वर्ष अवधार ।।२८।। उद्यापन
पुनि सार। चार प्रकार दान अधिकार ।। उद्यापनकी शक्ति
न होय। तो दूनो व्रत कीजै लोय ।।२९।। यह सुन प्रभावती
व्रत लियो। पद्मावती कृपाकर दियो। स्वर्ग मुक्ति फल
दातार। है यह पुष्पांजलि व्रत सार ।।३०।।

दोहा—पद्मावति उपदेशसों। लीनों व्रत शुभ सार।।
पृथ्वी पर सु प्रकाशिके, कियो भक्ति चितधार ।।३१।।
तप विद्या श्रुतकीर्तिने, पाई अति जु प्रचण्ड।
प्रभावती व्रत खण्डने; आई सो बलवंड ।।३२।।

चौ०—वासर तीन व्यतीते जबै। पद्मावति पुनि आई तबै।
सब भागी तत्काल। कियो सन्यासमरण तिस बाल ।।३३

—::: चौपाई :::—

विपुलाचल श्रीवीरकुमार । आये भविभवभंजनहार ॥ सुनि श्रेणिकनृप वन्दन गयो । सर्व लोक सँग आनंद भयो ॥२॥ श्री जिन पूजे गणधर चाव । स्तुति करी जोड कर भाव ॥ धर्मकथा तहँ सुनी विचार । दानशील तप भेद अपार ॥३॥ भव दुख घायक दायक शर्म । भाख्यो प्रभु दशलक्षण धर्म ॥ ताको सुनि श्रेणिक रुचि धरी । गुरुगौतम सों विनती करी ॥ दशलच्छनव्रत कथा रसाल । मुझको भाखहु दीनदयाल । तब गुरुगौतम गण धर कही । सुनि जिन धुनिमें भाखी वही ॥५॥ खंड धातुकी पूर्व विदेह मेरुतें दक्षिण दिशि तेह ॥ सीतोदा नदि तीर जु मही । पुरी विशालाख्या शुभ कही ॥६॥ भूपति प्रीतंकर तहँ बसै रानी प्रियकारिणी तस लसै ॥ सुता मृगांकरेखा तस जान । मतिशेखर तस मन्त्रि प्रधान ॥७॥ शशीप्रभा ताकी तिय सही । सुता काम सेना तस भई ॥ राजसेठ गुणसागर जान । तस तिय शील सुभद्रा मान ॥८॥ सुता मदनरेखा अवतरी । रूप कला गुण लक्षण भरी ॥ लक्षभद्रनामा कुतवाल । तस तिय शशिरेखा गुणमाल ॥९॥ रोहिणि कन्या ताकैं भई । चारों कन्या मिल सखि थई ॥ शास्त्र पढी इक गुरुके पास । बढ्यो सनेह परस्पर जास ॥१०॥ ऋतु वसन्त आयो निरधार । कन्या चारों वनहिं मझार ॥ गई सु देखे मुनिवर एक । वदन थुति कीनी सविवेक ॥११॥ चारों कन्या मुनिसों कही । तिय परजाय ज्यों छूटै सही ऐसो व्रत उपदेशहु अबै । जासों नरतन पावैं सबै ।१२। बोले मुनि दशलच्छण सार । यह व्रत किये होहु भवपार । कन्या बोली किहि

विधि करैं । किस दिनतैं यह व्रत हम धरैं ॥१३॥ तब गुरु बोले बचन रसाल । भादों मास करो सुखमाल ॥ शुक्लपंचमी दिनसों लेय । पंचामृत अभिषेक करेय ॥१४॥ पूजार्चन कीजै शुभ सही जिन चौबीस तनी सुख मही ॥ उत्तम क्षमा आदि सुखसार । दशमों ब्रह्मचर्य गुणधार ॥१५॥ तीन काल अति भक्ति करो तीनकाल पुष्पांजलि धरो । इह विधि दश बासर आचरो । नियमित व्रत शुभ कारज करो ॥ उत्तम व्रत दश अनशन किये । मध्यम व्रत कुछ कांजी लिये ॥ अथवा दश एकाशन करो । भूमि शयन ब्रह्मचर्य जु धरो ॥१७॥ या विधि दश बरसहिं लग करैं । भाव सहित व्रत-विधि अनुसरैं ॥ फिर व्रतका उद्यापन करैं दानसुपात्रन को विस्तरैं ॥१८॥ औषध अभय शास्त्र आहार । चार संघको दे चित धार ॥ रचि मण्डल पूजा कीजिये । छत्र चमर आदिक दीजिये ॥१९॥ जो उद्यापन की शक्ति न होय तो दूनो व्रत कीजै लोय । यह व्रत पुण्यतणो भंडार । क्रमसों परभव है शिवसार ॥२०॥ तब च्यारों कन्या व्रत लियो । भक्ति भाव लखि मुनिव्रत दियो ॥ यथाशक्ति व्रत पूरण करयो । उद्यापन विधिसो आचरयो ॥२१॥ अंतकाल वे कन्या चार । सुमिरण कियो पंच नवकार चारों मरण समाधि सु कियो । दशवें स्वर्ग जन्म तिन लियो ॥ सोलह सागर आयु लही । धर्मध्यान नित सेवैं सही ॥ सिद्धक्षेत्र सब करहि विहार । छायक सम्यक उदय अपार ॥२३॥ नाना विधि सुख भोगैं जहां । दुखका लेश न जानैं तहां । यह तो कथा रही इह ठौर । आगैं सुनो भई जो और ॥२४॥ सब द्वीपनमधि जम्बूद्वीप । दक्षिण लवण समुद्र समीप । भरतक्षेत्र राजत है

कल्याण गये निज थान ।। विविध देश में कियो विहार । दे उपदेश भव्यजन तार ।। कर्म अघाति किये सब नाश । सिद्धालय कीनो चिरवास ।।३७।। दशलच्छनव्रतको फल यही । पायो च्यारों कन्या मही ।। तातैं सब जन तनमन धार । दश लच्छन व्रत धारो सार ।।३८।। यह व्रत कर बहुजन सुर भये । सुरसुख भोग मुकतिमें गये । गुरु गौतम गणधर यह कही । कर श्रद्धान धरो व्रत यही ।। भट्टारक श्री नृपणवीर । तिनके चेला गुणगंभीर ब्रह्मज्ञानसागर सु विचार । कही कथा दशलच्छन सार ।।४०।। पढ़ै सुनै जो नर यह कथा । दशलच्छनव्रत धारै तथा । दशलच्छन शुप भावै जोय । सो अवश्य शिवतियपिय होय ।।

—इति दशलक्षणव्रतकथा समाप्त—

१५१ सुगन्धदशमी व्रत कथा ।

चौपाई—वर्द्धमान वन्दों जिनराय । गुरु गौतम वन्दों सुखदाय ।। सुगन्धदशमीव्रत की कथा । वर्द्धमान सु प्रकाशी यथा ।।१।। मगध देश राजगृहि नाम । श्रेणिक राज करै अभिराम ।। नाम चेलना गृह पटरानि । चन्द्ररोहिणी रूप समान ।।२।। नृप बैठ्यो सिंहासन परै । वनमाली फल लायो हरे ।। कर प्रणाम वच नृपतै कह्यो । प्रमुदित चितसे ठाडो रह्यो ।।३।। वर्द्धमान आये जिनस्वामि । जिन जीत्यो उद्धत अरि काम ।। इतनी सुनत नृपति उठ चला । पुरजनयुत दलबलसे भला ।।४।। समोशरण वन्दे भगवान पूजा

भक्ति धार बहु मान ॥ नरकोठा बैठ्यो नृप जाय । हाथ जोड़
पूछ्यो शिर नाय ॥५॥ सुगन्धदशमी व्रत फल सार । ता वर्णो
कहिये अब सार ॥ गणधर कहैं सुनो मगधेश । जम्बूद्वीप
विजयार्द्ध प्रदेश ॥६॥ शिवमन्दिरपुर उत्तरश्रेणि । विद्याधर
प्रीतंकर जैनि ॥ कमलावती नारि अतिरूप । सुर कन्यामें अधिक
अनूप ॥ आगरदत्त बसैं तहा साह । जाके जिनव्रतमें उत्साह ॥
धनदत्ता वनिता गृह कही । मनोरमा ता पुत्री सही ।८॥ मुनि
सुगुप्त गृहपर आइयो । देख मुनिहि दुःख पाइयो ॥ कन्या मुनिकी
निन्दा करी । कछु मनमें नहिं शंका धरी ॥९॥ नग्नगात दुर्गंध
शरीर प्रगटपनें देही नहिं चीर । मुख तांबूल हतो मुनि आग
नाख्यो मुखको कीनो भंग ॥१०॥ भोजन अंतराय जब भयो ॥
मुनि उठ जाय ध्यान वन दियो ॥ समताभाव धरैं उरमांहि
किंचित खेद चित्तमें नाहिं ॥११॥ बीती अवधि समय कछु गयो ।
मनोरमा को कालजु भयो । भई गधी पुनि कुकरी ग्राम । अपर
ग्राम भइ सूकरि नाम ॥१२॥ मगध सुदेश तिलकपुर जान, विजय-
सेन तहँका नृप मान । चित्ररेखा ता रानी कही । तसपुत्री दुर्गंधा
भई ॥१३॥ एक समय गुरुवन्दन गयो । पूजा कर विनती को
ठयो ॥ सो पुत्री दुर्गंध शरीर । कहो भवांतर गुणगम्भीर ॥१४॥
राजा वचन मुनीश्वर सुने । सब विरतान्त रायसे भने । सब
विरतांत हाल सो जान मुनि राजासे कह्यो बखान ॥१५॥ सुन
दुर्गंध जोडे हाथ । मोपर कृपा करो मुनिनाथ ॥ ऐसा व्रत उपदेशों
माहि । जासों तनु निरोग अब होहि ॥१६॥ दयावन्त बोले

मुनिराय, सुन पुत्री व्रत चित लगाय ॥ समताभाव चित्तमें धरो । तुम सुगन्धदशमी व्रत करो ॥ यह व्रत कीजे मनवचकाय। यासों रोग शोक सब जाय ॥ दुर्गंधा विनवै मुनि पाय, कहिये सविध महामुनिराय ॥१८॥ ऐसे वचन सुने मुनि जबै । तब बोले सुन पुत्री अबै ॥ भादों शुक्लपक्ष जब होय । दशमीदिन आराधो सोय ॥१९॥ पंचामृतसों धारा देय । मनमें राखो श्रीजिन देव ॥ शीतल जिनकी पूजा करो । मिथ्या मोह दूर परिहरो ॥२०॥ व्रतके दिन थोरो आरम्भ । यासों मिटै कर्मको दंभ ॥ याके करत पाप क्षय जाय । सो दस वर्ष करो मन लाय ॥२१॥ जब यह व्रत संपूरन होय । उद्यापन कीजै चित जोय ॥ दस श्रीफल अमृतफल जान । नींबू सरस सदा फल आन ॥२२॥ दश दीजे पुस्तक लिखवाय ॥इह विधि सब मुनि दई बताय ॥२३॥ विधि सुन दुर्गंधा व्रत लयो, सब दुर्गंध ततच्छिन गयो ॥२४॥ व्रतकर आयु जो पूरण करी । दसवें स्वर्ग भई अप्सरी ॥ जिन चैत्यालय वन्दन करै सम्यकभाव सदा उर धरै ॥२५॥ भरतक्षेत्र महँ मध्य सुदेश । भूतितिलकपुर बसै अशेष ॥ राजा महीपाल तहँ जान । मदनसुन्दरी त्रिया बखान ॥२६॥ दशवों दिवसों देवी आन । ताके पुत्रीभई निदान । मदनावली नाम धर तास । अति सुरूप तनु सुफल सुवास ॥२७॥ बहुत बात को करै बखान, सुर कन्या मानो उन्मान । कौशाम्बीपुर मदन नरेन्द्र । रानी सती करै आनन्द ॥२८॥ पुरुषोत्तम नृप सुन्दर जान । विद्यावंत सु गुणकी खान ॥ जो सुगन्ध मदनावलि जाय । सो पुरुषोत्तमको परनाय ॥२९॥ राजा मदन-

सुन्दरी बाल । तुमसों ज्ञान न जान्यो काल ॥ एक दिवस मुनि
वर वन्दियो । धर्म श्रवण मुनिवरपें कियो ॥३०॥ हाथ जोड़
पूछे नर राय । महा मुनींद्र कहो समझाय ॥ सो गृह रानी मद-
नावली । ता शरीर सौरभता भली ॥३१॥ कौन पुण्यसे सुरूप
सुन्दर । सुर वनितासों अधिक अनूप ॥ राजा वचन मुनीश्वर
सुने । सब विरतान्त राय सों भने ॥३२॥ जैसे दुर्गंधा व्रत लयो
तैसी विधि नरपतिसों कह्यो ॥ सुने भूपति जोड़े हाथ । दीन
व्रत दीजे मुनिनाथ ॥३३॥ राजाने जब दीक्षा लई । रानी तहँ
अर्जिका भई ॥ तपकर अन्त स्वर्गको गई । सोलम स्वर्ग इन्द्र
सो भई ॥३४॥ बाइस सागर काल जो गयो. अन्तकाल ता दिवसों
चयो ॥ भरत सु क्षेत्र मगध तहँ देश । वसुधा अमर केतुपुर
वेश ॥३५॥ ता नृप गेह जनम उन लयो । जो सुरेन्द्र अच्युत
दिव रह्यो ॥ कनककेतु कंचन द्युति देह । वनिता भोग करें शुभ
गेह ॥३६॥ अमरकेतु मुनि आगम भयो । कनककेतु तहँ वंदन
गयो ॥ सुन्यो सुधर्म श्रवण संयोग । तजे परिग्रह अरु सब भोग
॥३७॥ घाति घातिया केवल लयो । पुनि अघाति हनि शिवपुर
गयो ॥ व्रत सुगंधदशमी विख्यात । ता फल भयो सुरभियुत
गात ॥३८॥ यह व्रत पुरुष नारि जो करै । तिहि दुख संकट
भूलि न परै ॥ शहर गहेली उत्तम वास । जैनधर्मको जहां प्रकाश
॥३९॥ सब श्रावक व्रत संयम धरैं । पूजा दानसों पातक हरैं ॥
उपदेशी विश्वभूषण सही । हेमराज पंडितने कही ॥४०॥ मनवच
पढ़ै सुनै जो कोय । ताको अजर अमर पद होय ॥ यासों
भविजन पढ़ो त्रिकाल । जो छूटैं भवके भ्रमजाल ॥४१॥इति

१५२ अनन्तचौदश व्रत कथा।

दोहा—अनतनाथ बदो सदा, मनमें कर बहु भाव।
सुर असुरहि सेवत जिन्हें, होय मुक्ति पर चाव ॥१॥

—::: चौपाई :::—

जम्बूद्वीप द्विपन में सार । लख योजन ताको विस्तार ॥ मध्य सुदर्शन मेरु वखान । भरतक्षेत्र ता दक्षिण मान ॥ २ ॥ मगधदेश देशों शिरमणी । राजगृही नगरी अति बनी ॥ श्रेणिक महाराज गुणवत । रानि चेलना गृह शोभंत ॥ ३ ॥ धर्मवन्त गुण तेज अपार । राजा राय महागुणसार । एक दिवस विपुलाचल वीर । आये जिनवर गुणगंभीर ॥ ४ ॥ चार ज्ञानके धारक कहे । गौतम गणधर सो सग रहे ॥ छह ऋतुके फल देखे नैन । वनमाली ले चाल्यो ऐन ॥ ५ ॥ हर्ष सहित वनमाली गयो । पुष्पसहित राजा पर गयो ॥ नमस्कार कर जोड़े हाथ । मोपर कृपा करो नरनाथ ॥ ६ ॥ विपुलाचल उद्यान महंत । महावीर जिन तहां वसत ॥ सुन राजा अति हर्षित भयो । बहुत दान मालीको दयो ॥ ७ ॥ सप्तध्वनि वाजे वाजंत । प्रजा सहित राजा चालंत ॥ दे प्रदक्षिणा बैठो राव ॥ जिनवर देख कियो चितचाव ॥ ८ ॥ द्वैविधि धर्म कह्यो समझाय । जासों पाप सर्व जर जाय ॥ खग तहँ आयो एक तुरंत । सुंदर रूप महा गुणवंत ॥९॥ नमस्कार जिनवरको कर्यो । जय जयकार शब्द उच्चर्यो ॥ ताहि देख अचरज अति कियो । राजा श्रेणिक

चौदश शुक्ल कही सुखदाय। करैं स्नान शुद्ध हो जाय। तब पूजैं जिनवर सुखदाय ।।२२।। गुरु वन्दना करैं चितलाय। या विधिसों व्रत लेय बनाय ।। त्रिकाल पूजन श्रीजिनदेव। रात्रि जागरन कर सुख लेव ।।२३।। गीतरु नृत्य महोत्सव जान। धारा जिनवर करो बखान ।। वर्ष चतुर्दश विधिसों धरैं। ता पीछे उद्यापन करैं ।।२४।। करैं प्रतिष्ठा चौदह सार। जासों पाप होय जर छार ।। आगे धरैं जु अधिक अनूप। स्वर्ण कलश देंहैं शुभ रूप ।।२५।। दीवट झालर मंडल माल। और चँदोवे उत्तम जाल ।। छत्र सिंहासन विधिसों करैं। तातैं सर्व पाप परिहरैं ।।२६।। चार प्रकार दान दीजिये। जासों अतुल सुक्ख लीजिये ।। अन्त समय लेवे सन्यास। तातैं मिले स्वर्गका वास ।।२७।। उद्यापन की शक्ति न होय। कीजे व्रत दूनो भविलोय। विप्र कियो व्रत विधिसों आय। सब दुख ताके गये विलाय ।।२८।। अन्तकाल धरके सन्यास तातैं, पायो स्वर्ग निवास। चौथे स्वर्ग देव सो जान। महाऋद्धि ताके जु बखान ।।२९।। विजयारध गिरि उत्तम ठौर। काञ्चीपुर पत्तन शिरमौर ।। राजा तहँ अपराजित वीर विजया नामु प्रिया गम्भीर ।।३०।। ताको पुत्र अरिंजय नाम तिन यह आय कियो परनाम ।। कंचनमय सिंहासन आन। तापर नृप बैठो सुख खान ।।३१।। व्योम पटल विनशत लख संत। उपज्यो चित वैराग्य महंत ।। राज्य पुत्रको दियो बुलाय। आप लई दीक्षा शुभ भाय ।।३२।। सही परीषह दृढ़ चित धार ।। तातैं कर्म भये अति छार। घाति घातिया केवल भयो। सिद्ध बुद्धिसों पद निर्मयो ।।३३।। रानीने व्रत कीनो सही। देव देह दिव अच्युत

यंत्र करो बहु मन थिर देव । रत्नत्रयके गुण लिख लेव ॥ निशं-
कादि दर्शन गुण सार । संशय रहित सुज्ञान अपार ॥ अहिंसादि
महाव्रत सार । चारित्रके ये गुण हैं धार ॥८॥ ये तीनोंके गुण हैं
आदि । इन्हें आदि जेते गुणवाद ॥ शिवमारगके साधन हेत ।
ये गुण धारें व्रती सुचेत ॥९॥ भादों माघ चैत्रमें जान । तीनों
काल करो भवि आन । या विधि तेरह वर्ष प्रमान । भावन भावैं
गुणहि निधान ॥१०॥ लवंगादि अष्टोत्तर आन । जपो मंत्र मन-
कर श्रद्धान ॥ पुनि उद्यापन विधि जो एह । कलश। चमर छत्र शुभ
देह ॥११॥ सघ चतुर्विधको आहार । वस्त्राभरण देहु शुभसार ॥
बिम्ब प्रतिष्ठा आदि अपार । पूजो श्रीजिन हो भव पार ॥१२॥
दोहा—इमविधि श्रीमुख धर्म सुन, भव्यो चित्त धर भाय ।
कोनैं फल पायो प्रभू, सो भाखो समझाय ॥

—::: चौपाई :::—

जम्बूद्वीप अलंकृत हेर । रह्यो ताहि लवणोदधि घेर ॥ मेरु
सुदक्षिण दिशा हैं सार । है सो विदेह धर्म अवतार ॥१४॥ कच्छ
वती सुदेश तहँ बसै । वीतशोकपुर तामैं लसै । । वैस्रिव नाम
तहांको राय । करैं राज सुरपति सम भाय ॥१५॥ मालीने जु
जनायो दयो । विपुलबुद्धि प्रभु वनमें ठयो ॥ इतनी सुन नृप वंदन
गयो । दान बहुत मालीको दयो ॥१६॥ हे स्वामी रत्नत्रय धर्म
मोसों कहो मिटै सब भर्म ॥ तब स्वामीने सब विधि कही । जो
पहिले सो प्रकाशी सही ॥१७॥ पंचा मृत अभिषेक सु ठयो ।
पूजा प्रभुकी कर सुख लयो । जागरणादि ठयो बहु भाय । इस-

विधि व्रत कर श्रेणिकराय ॥१८॥ भाव सहित राजा व्रत कर्यो धर्मप्रतीत चित्त अनुसर्यो ॥ षोडश भावन भावत भयो । अन्त समाधिमरण तिन कियो ॥१९॥ गोत्र तीर्थंकर बाध्यो सार । जो त्रिभुवनमें पूज्य अपार ॥ सर्वारथ सिधि पहुंच्यो जाय । भयो तहां अहमेंद्र सु भाय ॥२०॥ हस्त मात्र तन ऊंचो भयो । तेतिस सागर आयु सु लयो । दिव्य रूप सुखको भंडार सत्य निरूपण अवधि विचार ॥२१॥ साधर्मेन्द्र विचारी घरी । यक्षेश्वरको आज्ञा करी ॥ वेगि देश निर्माप्यो जाय । थाप्यो मिथिलापुर अधिकाय ॥२२॥ कुम्भपुर राजा तहँ वसै । देवी प्रजावती तिस लसै ॥ श्रीआदिक तहँ देवी आय । गर्भ सोधना कीनी जाय ॥२३॥ रत्नवृष्टि नृप आगन भई । पन्द्रह मास लों बरसत गई ॥ सरवारथ सिधिसों सुर आय । प्रजावती कुख उपजाय ॥२४॥ मल्लिनाथ शुभ नाम जु पाय । देवेन्द्र मम वदन सुभाय जब विवाह मंगल विधि भई । तब प्रभु चित विरागता लई ॥२५॥ दीक्षा धर वनमें प्रभु गये । घाति कर्म हनि निर्मल ठये ॥ केवल ले निर्वाण सु जाय । पूजा करी सुरन सब आय ॥२६॥ यह विधान श्रेणिकने सुन्यो व्रत लीने चित अपने गुण्यो ॥ भक्ति विनय कर उत्तम भाय । पहुँचे अपने गृहको आय ॥२७॥ या विधि जो नरनारी करै । सो भवसागर निश्चय तरै ॥ नलिनकीर्ति मुनि सस्कृत कही । ब्रह्मज्ञान भाषा निर्मयी ॥२८॥

—इति श्री रत्नत्रयव्रत कथा समाप्त—

१५४ मुक्तावली व्रत कथा

दोहा—ऋषभनाथके पद नमो, भविसरोजरवि जान ।
मुक्तावलि व्रतकी कथा, कहू सुनो धरि ध्यान ॥१॥

—::: चौपाई :::—

मगधदेश देशन परधान । तामैं राजगृही शुभ थान ॥ राज्य करैं तहँ श्रेणिकराय । धर्मवन्त सबको सुखदाय ॥२॥ ता गृह नारि चेलना सती । धर्मशील पूरणगुणवती ॥ इक दिन समो शरण महावीर । आयो विपुलाचल पर धीर ॥३॥ सुन नृप अति आनन्दित भयो । कुटुम्ब सहित वन्दनको गयो ॥ पूजा कर बैठ्यो सुख पाय । हाथ जोड़कर अर्ज कराय ॥४॥ हे प्रभु मुक्तावलिव्रत कहो । यह कर कौनैं क्या फल लहो ॥ तब गौतम बोले हर्षाय । सुनो कथा मुक्तावलि राय ॥५॥ याही जम्बूद्वीप मझार । भरतक्षेत्र दक्षिण दिशि सार ॥ अंगदेश सो है रमणीक । नगर बसैं चंपापुर ठीक ॥६॥ नगर मध्य इक ब्राह्मण बसैं । नाम सोमशर्मा तसु लसैं ॥ ता गृह एक सु ता जो भई । यौवन मद कर पूरण थई ॥७॥ इक दिन देखे श्रीगुरु जबै । नगन गात लखि निंदी तबै ॥ अति खोटे दुर्वचन कहाय । बहुत हि ग्लानि चित्तमें लाय ॥८॥ ता करि महा पाप बांधियो । आयु वितीते मरण जु कियो ॥ नरक जाय नाना दुख सहे । छेदन भेदन जाय न कहे ॥९॥ नरक आयु पूरी कर सोय । भव भ्रमि द्विज गृह पुत्री होय । निर्नामिका पड्यो तिहँ नाम । अति दुर्गन्धा देह निकाम ॥१०॥ कोई ढिग आवै नहिं तहां । क्रमकर बड़ी भई सो

उद्यापन कीजै गुणखान। श्रीजिनवर अभिषेक कराय॥ करो मांडनो जिनगृह जाय ॥२३॥ अष्ट प्रकारी पूजा करो जन्म जन्म के पातक हरो॥ यथाशक्ति उपकरण बनाय। श्रीजिनधाम चढ़ावो जाय ॥२४॥ उद्यापनकी शक्ति न होय। तो दूनो व्रत कीजे सोय॥ सब विधि सुन दुर्गन्धा बाल॥ मनवचतन व्रत लीनो हाल ॥२५॥ गुरु भाषित तिन व्रत यह कियो। पूरब भव अघ पानी दियो॥ ताफल नारि लिंग छेदियो। प्रथमहिं स्वर्ग देव सो भयो ॥२६॥ तहां आयु पूरण कर सोय। चलत भयो मथुराको लोय श्रीधर राजा राज करंत। ताके सुत उपज्यो गुणवंत ॥२७॥ नाम पद्मरथ पडित भयो। एक दिवस वन क्रीड़ा गयो॥ गुफा मध्य मुनिवरको देख। वन्दन कर सुन धर्म विशेष ॥२८॥ तहां पूछै मुनिवरसों सोय। तुमसों अधिक प्रभा प्रभु कोय॥ तब मुनिवर बोले सुन बाल। वासुपूज्य जिन दीप्ति विशाल ॥२९॥ चंपापुर राजैं जिनराज। तेज पुंज प्रभु धर्म जहाज॥ यह सुन धर्म विषै चित दयो। समोशरण जिन वन्दन गयो ॥३०॥ नमस्कार कर दीक्षा लई। तपकर गणधर पदवी भई। अष्टकर्म इम विधिसों जार। पहुँच्यो शिवपुर सिद्धमँझार ॥३१॥ लखो भव्य व्रतका जु प्रभाव। राज भोग भयो शिवपुर राय॥ जो नरनारि करै व्रत सार। सुर सुख लहि पावैं भवपार ॥३२॥

१५५ रविव्रत कथा

—::: चौपाई :::—

श्री सुखदायक पार्स जिनेश। सुमति सुगतिदाता परमेश

गृह द्वार ॥ क्षुधावंत भावजपै गयो । दन्त विना नहिं भोजन दयो ॥१३॥ बहुरि गयो जहाँ भूल्यो दन्त । देख्यो तासों अहि लिपटंत फणिपतिको तहँ विनती करी । पद्मावति प्रगटी तिहिं घरी ॥१४॥ सुन्दर मणिमय पारसनाथ । प्रतिमा एक दई तिहिं हाथ, देकर कह्यो कु वर कर भोग । करो क्षणक पूजा संयोग ॥१५॥ आन बिंब निज घरमें धर्‌यो । तिहिंकर तिनको दारिद हर्‌यो ॥ सुख विलास सेवे सब नद । नितप्रति पूजै पास जिनंद ॥१६॥ साकेता-नगरी अभिराम । सुंदर बनवायो जिनधाम ॥ करी प्रतिष्ठा पुण्य संयोग । आये भविजन सग सु लोग ॥१७॥ सघ चतुर्विधको सम्मान । कियो दियो मनवांछित दान ॥ देख सेठ तिनकी सपदा जाय कही भूपतिसों तदा ॥१८॥ भूपति तब पूछ्यो विरतंत । सत्य कह्यो गुणधर गुणवंत ॥ देख सुलक्षण ताको रूप । अति आनन्द भयो सो भूप ॥१९॥ भूपतिगृह तनुजा सुन्दरी । गुण-धरको दीनी गुणभरी ॥ कर विवाह मंगल सानंन्द । हय गय पुर-जन परमानन्द ॥२०॥ मनवांछित पाये सुख भोग । चिरिमित भये सकल पुरलोग ॥ सुखसों रहत बहुत दिन भये ॥ तब सब बंधु बनारस गये ॥२१॥ मात पिताके परसे पांय । अति आनँद हिरदे न समाय । विघट्यो सबको विषम वियोग । भयो सकल पुरजन संयोग ॥२२॥ आठ सात सोलहके अंक । रविव्रत कथा रची अकलंक ॥ थोड़ो अर्थ ग्रन्थ विस्तार, कहै कवीश्वर जो गुण-सार ॥२३॥ यह व्रत जो नरनारी करै । कबहूँ दुर्गतिमें नहिं परै भाव सहित ते शिवसुख लहैं । भानुकीर्ति मुनिवर इमि कहैं ॥२४॥

प्रगटे चक्रेश । आज्ञा धरै छखंड प्रदेश ॥११॥ पाटबध रानी नृप तीन । गांधारी जेठी गुणलीन ॥ प्रियमित्रा रूपाश्री नाम । साधै धर्म अर्थ अरु काम ॥१२॥ सुखसों रहत बहुत दिन भये । ऋतु वसन्त वन राजा गये ॥ जलक्रीडा वनक्रीडा करै । हास्य विलास प्रीति अनुसरैं ॥१३॥ ता वन मध्य कल्पतरु मूल । चंद्र कांति मणि शिलानुकूल ॥ मंडप लता अधिक विस्तार । चारण मुनि आये तिहँ वार ॥१४॥ अरिंजय अमितंजय नाम । सोम दयालु धर्मके धाम । राजारानी पुरजन नारि । देखत मुनि तिन दृष्टि पसारि ॥१५॥ सब नरनारि अनदित भये । क्रीड़ा तज मुनि वन्दन गये । त्रिया पुरुष चरणों अनुसरे । अष्ट द्रव्य मुनि पूजैं खरे ॥१६॥ धर्मध्यान कह्यो मुनिराय । श्रद्धासहित सुन्यो कर भाय ॥ राजा प्रश्न कियो मुनि पास । सुन्यो धर्म भयो चित्त हुलास ॥१७॥ दल बल सहित संपदा घनी । और भूमि षट्खंड जु तनी ॥ महा पुण्य जो यह फल होय । गुरुबिन ज्ञान न पावै कोय ॥१८॥ बार बार विनवै कर सेव । कहो भवांतर पूरव देव। अवधिज्ञान बल मुनिवर कहै । पुर अहिच्छेत्र वणिक इक रहै ॥ सुखित कुबेरमित्र ता नाम । साधै धर्म अर्थ अरु काम । जेष्ठ पुत्र श्रीवर्म कुमार । मध्यम जयवर्मा गुण सार ॥२०॥ लघु जय-कीर्ति कीर्ति विख्यात । तीनों शुभ आनन्दित गात । एक दिवस उपज्यो शुभ कर्म । वनमें आये मुनि सौधर्म ॥२१॥ सेठ पुत्र मुनिवर वंदियो । श्री वर्मा जु अठाई लियो ॥ नदीश्वर व्रत विधि सों पाल । भव भव पाप पुञ्जको जाल ॥२२॥ अंत समाधि मर-नको पाय । इस पुर वज्र बाहु नृपराय ॥ ताके विमला रानी जान

धरैं । भाव भक्ति कर पातक हरैं ॥३५॥ तास द्वीप सम्बन्धी सार। व्रत नन्दीश्वरको अधिकार ॥ यहाँ कह्यो जिनवर सु प्रकाशि आदि अनादि पुण्यकी राशि ॥ ३६ ॥ जो व्रत मध्य भावसों करैं । ते भव जन्मजराभय हरैं ॥ ता व्रतको सुनिये अधिकार । वर्ष वर्षमें त्रय त्रय वार ॥३७॥ अषाढ़ कार्तिक अरु जो फाग शाखा तीन करो अनुराग ॥ आठ हि दिन पूजो परजन्त । भक्ति सहित कीजै व्रत सत ॥३८॥ सातेंका एकाशन करो। यथा समय जिनवर मन धरो ॥ आठेंके दिन कर उपवास । जासों कटै कर्मकी त्रास ॥३९॥ करो प्रथम जिनको अभिषेक । जातैं पातक जाय अनेक ॥ अष्ट प्रकारी पूजा करो । मुखपरमेष्टि पच उच्चरो ॥४०॥ तादिन व्रत नंदीश्वर नाम । ताको फल सुनियो अभिराम ॥ व्रत उपवास लक्ष दश जान । श्री जिनवरने कियो बखान ॥४१॥ दूजे दिन जिन पूजा करो । पात्र दान दे पातक हरो ॥ अष्टविभूति नाम दिन सोय । ता दिन एकाशन कर लोय ॥४२॥ फल उपवास सहस दश होइ । अब तीजो दिन सुनिये लोइ ॥ जिन पूजाकर पात्रहि दान । भोजन पानी भात प्रमाण ॥४३॥ नाम त्रिलोकसार दिन कह्यो । साठ लाख प्रोपध फल लह्यो । चतुर्थ दिन कर अवमौदर्य । नाम चतुर्मुख दिन सो हर्य ॥४४॥ तस उपवास लक्ष फल होय। पञ्चम दिन विधि करियो सोय ॥ जिन पूजा एकाशन करो । यह लक्षण नाम जु दिन धरो ॥४५॥ फल चौरासी लक्ष उपास । जासों होय भ्रमण-भव नास षष्ठम दिन जिनपूजा दान । भोजन भात आमिली पान ॥४६॥ तादिन नाम स्वर्गसोपान। व्रत चालीस लक्ष फल जान ॥ सप्तम

॥५८॥ पर्यायांतर जैहैं मुक्ति । श्रेणिक सुन्यो सकल व्रत युक्ति गौतम कह्यो सकल अधिकार । सुन्यौ मगधपति चित्त उदार ॥ ॥५६॥ जो नरनारी यह व्रत करैं । निश्चय स्वर्गमुक्तिपद वरैं ॥ सकट रोग शोक मय जाहिं । दुख दरिद्रता दूर विलाहिं ॥६०॥ यह व्रत नंदीश्वरकी कथा । हेमराज सु प्रकाशी यथा ॥ शहर इटावा उत्तम थान । श्रावक करैं धर्म शुभ ध्यान ।६१। सुनेंसदा जे जैनपुराण । गुणीजनोंका राखैं मान ॥ तिहिठा सुन्यो धर्म सम्बन्ध । कीनी कथा चौपई ग्रंथ ॥६२॥ कहैं सुनैं देवें उप-देश । लहैं भावसों पुण्य विशेष ॥ जाके नाम पाप मिट जाय । तिहॅं जिनवरके बन्दों पांय ॥ ६३ ॥

—इति श्री नंदीश्वर व्रत कथा समाप्त—

ग्यारहवां अध्याय

जैन व्रत कथा संग्रह

१५७ निशिभोजनभुंजनकथा

दोहा—नमों सारदा सार बुध, करै हरै अघ लेप ।
निशि भोजन भुंजन कथा, लिखूं सुगन संक्षेप ॥१॥

—:::चौपाई:::—

जंबूद्वीप जगत विख्यात । भरतखण्ड छवि कहिय न जात ॥
तहां देश कुरुजांगल नाम । हस्तनागपुर उत्तम ठाम ॥ २ ॥
यशोभद्र भूपति गुणवास । रुद्रदत्त द्विज प्रोहित तास ॥

अश्वमास तिथि दिन आराध । पहली पड़वा कियो सराध ॥
॥३॥ बहुत विनयसों नगरी तने । न्यात जिमाये ब्राह्मण बने ।
दान मान सबहीको दियो । आप विप्र भोजन नहिं कियो ॥४॥
इतने राय पठायो दास । प्रोहित गयो राय के पास । राजकाज
कछु ऐसो भयो । करत करावत सब दिन गयो ॥५॥ घरमें रात
रसोई करी । चुल्हे ऊपर हांडी धरी ॥ हींग लेन उठि बाहर गई ।
यहां विधाता और हि ठई ॥ ६ ॥ मैंडक उछल पर्यो तामांहि
त्रिया तहां कछु जान्यो नाहिं ॥ बैंगन छौंक दिये तत्काल ।
मैंडक मर्यो होय बेहाल ॥७॥ तबहु विप्र नहिं आयो धाम,
धरी उठाय रसोई ताम ॥ पराधीनकी ऐसी बात । औसर पायो
आधी रात ॥८॥ सोय रहे सब घरके लोग आग न दीवा कर्म
संयोग । भूखो प्रोहित निकसैं प्राण । ततछिन बैठो रोटी खान
॥९॥ बैंगन भोले लीनो ग्रास । मैंडक मुंहमें आयो तास ॥
दांतन तलैं चब्यो नहिं जबै । काढ़ धर्यो थालीमें तबै ॥१०॥
प्रात भयो मेंडक पहिचान । तौ भी विप्र न करी गिलान । थिति
पूरी कर छोड़ी काय । पशुकी यौनि नीपज्यो जाय ॥११॥

सोरठा—घूघू काग बिलाव, साबर गिरध पखेरुआ ।
सूकर अजगर भाव, बाघ गोह जलमें मगर ॥१२॥
दशभव इहविधि थाय, दशों जन्म नरकहिं गयो ।
दुर्गति कारन पाय, फल्यो पाप वटबीजवत् ॥१३॥

दोहा—निशिभोजन करिये नहीं, प्रगट दोष अविलोय ।
परभव सब सुख सपजे, इह भव रोग न होय ॥१४॥

छप्पय छन्द ।

कीड़ी बुध बल हरै, कंपगद करै कसारी । मकड़ी कारण पाय कोढ़ उपजै दुख भारी ॥ जूवाँ जलोदर जनै, फांस गल विथा बढ़ावै । बाल भरे सुरभंग वमन माखी उपजावै ॥ तालुवै छिद्र बींछू भखत, और व्याधि बहु करहिं नर । यह प्रगट दोष निशि अशनके, परभव दोष परोक्ष फल ॥१५॥

दोहा–जो अघ इह भव दुख करै परभव क्यों न करेय ।
दहन साँप छांड़े तुरत, लहर क्यों न दुख देय ॥१६॥
सुवचन सुन आहारजें, सुरस मुदित न होय ।
मणिधर फण फेरैं सही, नहीं साँप वह होय ॥१७॥
सुवचन सतगुरुके वचन, और सुवचन कोय ।
सतगुरु वही पिछानिये जा उर लोभ न होय ॥१८॥
भूधर सुवचन साँभलो, स्वपरपक्ष कर गौन ।
समुद्रगुरुका जो मिले, तोड़ैं गुण कौन ॥१९॥

❋ इति निशिभोजनभुंजन कथा समाप्त ❋

१५८ अठारह नातेकी कथा

दोहा–पंच परमगुरु प्रणमि कर, जिनवाणी उरधार ।
अट्ठारह नाते कहूं भवि जीवन हितकार ॥१॥

चौपाई १५ मात्रा

जम्बूद्वीप दिपन में सार । लख जोजन है गोल अकार ॥ भरत देश दक्षिण दिस तास । उज्जयिनी नगरी तहँ खास ॥२॥ विश्वसेन नृप राज्यहि करै । पालै प्रजा नीति-अनुसरै ॥ तामें सेठ सुदत्त जु गुनी । सोलह कोटि द्रव्यको धनी ॥३॥ बसंततिलका

वेश्या एक। घरमें राखी रहित विवेक ॥ ताके संग रमहिं दिन रात। तस फल गर्भ रह्यो सुख पात ॥४॥ फिर वह वेश्या रुग्ना भई। तबहिं सेठ तिहँ काढ जु दई ॥ अपने घर वह वेश्या गई कुछ दिन गये निरोगी भई ॥५॥ ताके सुत कन्या दो बाल जुगल भये सुन्दर सुकुमाल ॥ तिन्हैं देख अति दुःखित सोय। तिन्हहिं लपेटी कम्बल दोय ॥६॥ दरवाजे उत्तर सुत डार। कन्या डारी दखन दुवार ॥ प्रातहिं बनिजारो इक आय। कन्या वानैं लई उठाय ॥७॥ अपनी तिय को जाकर दई। कन्या देख जु हर्षित भई ॥ तानैं पाली तन मन लाय। 'कमला' नाम धर्‍यो सुखदाय ॥८॥ साकेतापुर वासी एक। वणिक सुभद्र धरैं सविवेक ॥ तिहँ लीनों वह पुत्र उठाय। तस तिय पाल्यो तिहिं मन लाय। ताको नाम धर्‍यो धनदेव। बढ़त रह्यो शशि सम स्वयमेव ॥ ब्याह जोग दोनों ह्वै गये। दोनों वणिक विचारत भये ॥१०॥ यह सुंदर जोडी सुखदाय। ब्याह दिये दोनों मन लाय ॥ भाई बहन युग उतपन भये। काम योग तिय पति ह्वै गये।११

दोहा—सुनहु भविकजन कथन अब, पूर्व कर्म अनुसार।

वणिज हेत धनदेव सो, गयो उज्जैन मझार ॥१२॥

चौपाई—तहँ वसततिलका तस मात। रहै उज्जैनीमें बहु ख्यात ॥ तासों प्रीति करी धनदेव। रमै मातसों वह स्वयमेव ॥१३॥ ताको फल इक पुत्र जु भयो। नाम वरुण ताको धर दयो ॥ यह तो कथन रह्यो इह ठौर। आगैं भयो सुनो जो और ॥१४॥

दोहा—अवधिज्ञान जुत एक मुनि, कमला द्वारे आय।

तिहँ पड़गाया भावजुत, माथा धुनि फिर जाय ॥१५॥
कमला मुनिढिग जायकर, प्रश्न कियो शिर नाय ।
मो घरतैं पाछे फिरे, कारण को मुनिराय ॥१६॥

चौपाई–तब मुनि बोले सुनि चित लाय । तेरो ब्याह भ्रात सँग थाय । तुम दोनों वेश्या संतान । यह लखि हम आये बन थान ॥१७॥ तो पति पुनि उज्जयिनी जाय । रमहिं मात सँग मन हुलसाय ॥ ताको फल इक पुत्र जु भयो । वरुण नाम ताको धर दयो । यह सुन कमला कंपित भई । ह्वै विराग दिक्षा तब लई ॥ व्रत आर्या के धारे सार । तबहि गई उज्जयिनी मँझार ॥१८॥ निज माता वेश्या घर जाय । झूले वरुण बाल तिहँ ठाय ॥ हे बालक तेरे संग मोर । छह नाते हैं सुन चितचोर ॥२०॥

वरुण के साथ छह नातें ।

प्रथमहिं मेरी मासों जायो, तातैं मेरो है तू भ्रात । दूजे तू सौतन को सुत है, तातैं मेरो पुत्र विख्यात ॥ देवर भी मेरा लगता है क्योंकि तू पतिका लघु भ्रात । होय भतीजा भी तू मेरे, सगे भ्रात का पुत्र जु ख्यात ॥२१॥ मेरी माका पति धनदेव जु तातैं वह भी पिता भया । पितुका छोटा भाई तातैं तू काका मम होय गया ॥ सौतिनका सुत है धनदेव जु, वह मेरा भी पुत्र जु होय पूतका पूत भया पोता तू, यह नाते छह मेरे जोय ॥२२॥

१—प्रथम तो तू मेरी माताके उदरसे पैदा हुआ इसकारण मेरा छोटा भाई है ।

२—दूसरे मेरे पति धनदेव की स्त्री मेरी सौत, उसका तू पुत्र सो मेरा भी पुत्र है ।

३—तीसरे धनदेव मेरे पति, उनका तू छोटा भाई इस कारण तू मेरा देवर है।

४—चौथे धनदेव मेरे भाईका पुत्र तू पुत्र है, इस कारण मेरा भतीजा भी है।

५—पांचवें मेरी माताका पति धनदेव वह मेरा पिता, पिता का तू छोटा भाई है इस कारण मेरा काका हुआ।

६—छठे धनदेव मेरी सौतका पुत्र होनेसे वह मेरा भी पुत्र है और तू पुत्र का पुत्र होने से मेरा पोता भी हुआ।

दोहा- वसंततिलका रोष कर, आई कमला पास।
तू को है मो सुतहि सग, नाते करत प्रकाश ॥२३॥
कमला बोली मात सुन, छह नाते तो सग।
भिन्न भिन्न क्रमसे कहूं, तामें कछु न भग ॥२४॥

* वसंततिलका वेश्याके साथ छह नाते *

मैं धनदेव जुगल तो उरसे पैदा हैं तातैं तू मात।
फिर तू भौजाई है मेरी भ्रात तिया जग में विख्यात॥
तू माता धनदेव पिता मम, पितुकी मा दादी जु थई।
मो पतिकी दूजी तिय है, तातैं मेरी तू सौत भई ॥२५॥
सौत पुत्रकी तू तिय है, तातैं तू पुत्र वधू मेरी।
मो पति जो धनदेव उसीकी, माता तू सासू है री॥
या विध छह नाते सुनते ही, तहाँ जु आया तब धनदेव
तुमरे संगभी छह नाते हैं, सुनलो कान लगा स्वयमेव॥२६।

१. प्रथम तो मैं और धनदेव तेरे उदर से युगल उत्पन्न हुए इस कारण तू मेरी माता है।
२. धनदेव मेरा भाई उसकी तू स्त्री होनेसे मेरी भोजाई है।
३. तीसरे तू मेरी माता और माता का पति धनदेव मेरा पिता हुआ उस पिताकी तू माता इसकारण तू मेरी दादी है।
४. मेरे पति धनदेवकी तू दूसरी स्त्री है इसकारण मेरी सौत हुई।
५. पांचवें सौतका पुत्र धनदेव मेरा भी पुत्र हुआ उसकी स्त्री तू, इस कारण मेरी पुत्रवधू हुई।
६. मेरे पति धनदेवकी तू माता, इसकारण मेरी तू सासभी हुई

धनदेव के साथ छह नाते

प्रथम भ्रात ह्वै फिर पति हो गये, माताके पति हो मम तात।
वरुण मेरा काका है ताके पिता भयेतैं दादा भ्रात ! ॥
मेरे सौत पुत्र हो तुम तातैं मेरे भी पुत्र भये।
वेश्या मेरी सास तास पति, तातैं मेरे श्वसुर थये ॥२७॥

१. प्रथम तो तू और मैं इस वेश्याके उदरसे जुगल उत्पन्न हुये इस कारण मेरा सगा भाई है।
२. दूसरे तेरा मेरा विवाह हुआ इसकारण तू मेरा पति है।
३. तीसरे मेरी माता इस वेश्याके पति होनेसे तुम मेरे पिता भी हुये।
४. चौथे पिता का छोटा भाई वरुण मेरा काका और काकेका पिता होनेसे तुम मेरे दादा हुये।

५. पांचवें वेश्या मेरी सौत उसके तुम पुत्र हो इसकारण मेरे भी तुम पुत्र हो।

६. छठे तुम मेरे पति, पतिकी माता यह वेश्या मेरी सास हुई और सासके पति होनेसे मेरे ससुर भी हुये।

दोहा—वेश्याके संग रमणतैं, एक हि भवके मांहि।
एक जीव के साथ में, नाते अठदश थांहि ॥२८॥

सुनकर अचरज जुत सब भये। होय विरागी मुनि ढिग गये॥
मुनिने भवविचित्रता कही सुनि सब श्रावक दीक्षा गही ॥२९॥
व्रत धर नष्ट किये बहु कर्म। शुभगति पा बहु भोगे शर्म॥
वेश्या संग पाय संताप। धर्मधार नाशे बहु पाप ॥३०॥
तातैं वेश्या संग सब तजो। धर्मधार जिनवर को भजो॥
पन्नालाल बाकलीवाल। अर्ज करत यह बारम्बार ॥३१॥

इति अठारह नाते की कथा समाप्त।

समाधिमरण भाषा।

गौतम स्वामी वन्दों नामी मरण समाधि भला है। मैं कब पाऊं निशदिन ध्याऊं गाऊं वचन कला है। देव धर्म गुरु प्रीति महा दृढ़ सप्त व्यसन नहिं जाने। त्यागि बाइस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने ॥१॥ चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विराधै। बनिज करै पर द्रव्य हरै नहिं छहों

कर्म इमि साधै। पूजा शास्त्र गुरुनकी सेवा संयम तप चहुँ दानी। पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी ॥२॥ जाप जपै तिहुँ योग धरै दृढ़ तनकी ममता टारै। अन्त समय वैराग सम्हारै ध्यान समाधि विचारै॥ आग लगै अरु नाव डुबै जब धर्म विघन जब आवै। चार प्रकार आहार त्यागिके मन्त्र सु मन में ध्यावै ॥३॥ रोग असाध्य जरा बहु देखै कारण और निहारै। बात बड़ी है जो बनि आवै भार भवन को डारै। जो न बनै तो घरमें रहकरि सबसों होय निराला। मात पिता सुत त्रियको सौंपै निज परिग्रह अहि काला ॥४॥ कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन कुछ दुखिया धन देई। क्षमा क्षमा सबही सों कहिकै मनकी शल्य हनेई। शत्रुनसों मिल निज कर जोरै मैं बहु कीनी बुराई। तुमसे प्रीतमको दुख दीने ते सब बखसो भाई ॥५॥ धन धरती जो मुखसों मांगै सो सब दे संतोषै। छहों कायके प्राणी ऊपर करुणाभाव विशेषै। ऊंच नीच घर बैठ जगह इक कुछ भोजन कुछ पे लै। दूधाधारी क्रम २ तजिके छाछ

भजन संख्या १

(तर्ज—नगरी २ द्वारे २ "मदर–इन्डिया")

भ्रमता भ्रमता द्वारे द्वारे, आया रे सांवरिया ।
वीरा वीरा रटता मै तो, होगया रे बावरिया ।। टेर ।।
नैय्या फँसी है बीच भँवर मे, टूट गई पतवार है ।
खेवनहारे पार लगादो तेरा ही आधार है ।।
कर्म के वश होकर के अवतो, भूला हूँ डगरिया ।। १ ।।
तेरे कारण प्रभुजी मैं तो, आया सब जग छोडके ।
'मुन्ना' को रख लेना शरण में, मत रखना मु ह मोडके ।।
तेरे नाम को जपकर पाऊँ, शिवपुर की नगरिया ।। २ ।।

भजन सख्या २

(तर्ज—है अपना दिल तू आवारा—"सोलवां साल")

हे पारसनाथ दर्शन दो, तेरे द्वारे मै आया हू ।। टेर ।।

भँवर मे है नैय्या, कोई नाहैखिवैय्या, तू ही बचैय्या,
ओ मेरे प्रभुजी ।
किनारेसे लगा देना ।। तेरे द्वारे ।। १ ।।

करम ने सताया, बहुत भरमाया, कही न सुख पाया
मै जग मे प्रभु !
"मुन्ना" को—बचा लेना ।। तेरे द्वारे ।। २ ।।

सुरनरतिरियगयोनिमें.नरकनिगोदभमंत । महामोहकी नींदसों. सोये काल अनंत ॥१॥ जैसें ज्वरके जोरसों,भोजनकी रुचि जाय । तैसें कुकरमके उदय. धर्मवचन न सुहाय ॥ २ ॥ लगै भूख ज्वरके गये. रुचिसों लेय अहार । अशुभ गये शुभके जगे, जानै धर्म विचार ॥३॥ जैसें पवनझकोरतें, जलमें उठै तरंग । त्यों मनसा चंचल भई. परिगहके परसंग ॥४॥ जहां पवन नहिं संचरै, तहां न जलकल्लोल । त्यों सब परिगह त्यागतें मनसा होय अडोल ॥ ५ ॥ ज्यों काहू विपधर डसै. रुचिसों नीम चवाय । त्यों तुम ममतासों मढे. मगन विषयसुख पाय ॥६॥ नीम रसन परसै नहीं, निर्विप तन जब होय । मोह घटै ममता मिटै. विषय न वांछै कोय ॥७॥ ज्यों सछिद्र नौका चढे.बूडहि अंध अदेख । त्यों तुम भवजलमैं परे, विनविवेक धर भेख ॥ ८ ॥ जहां अखंडित गुण लगै, खेवट शुद्धविचार ।

आतमरुचिनौका चढे, पावहु भवजलपार ॥९॥ ज्यों अंकुश मानै नहीं. महामत्त गजराज। त्यों मन तृष्णामें फिरै, गिनै न काज अकाज ।१०। ज्यों नर दाव उपायकैं, गहि आनै गज साधि। त्यों या मनवश-करनकों. निर्मल ध्यान-समाधि ॥११॥ तिमिररोगसों नैन ज्यों, लखै औरको और। त्यों तुम संशयमैं परे.मिथ्यामतिकी दौर ॥ १२ ॥ ज्यों औषध अंजन किये.तिमिर रोग मिट जाय। त्यों सतगुरुउपदेशतैं. संशय वेग विलाय ॥१३॥ जैसें सब यादव जरे, द्वारावतिकी आगि। त्यों मायामें तुम परे, कहां जाहुगे भागि ॥ १४ ॥ दीपायनसों ते बचे. जे तपसी निरग्रंथ। तजि माया समता गहो, यहै मुकतिको पंथ ॥ १५ ॥ ज्यों कुधातुके फेंटसों घटवढ कंचनकांति। पापपुण्यकर त्यों भये,मूढातम बहुभांति ॥१६॥ कंचन-निजगुण नहिं तजै.हीन बानके होत। घटघटअंतर आतमा. सहजस्वभाव उदोत ॥ १७॥ पन्नापीट पकाइये

शुद्ध कनक ज्यों होय। त्यों प्रघटै परमातमा. पुण्यपापमल खोय ॥१८॥ पर्वराहुके ग्रहणसों सूरसोम छविछीन। संगति पाय कुसाधुकी. सज्जन होय मलीन ॥१९॥ निंवादिक चंदन करैं मलयाचलकी वास। दुर्जनतें सज्जन भये, रहत साधुके पास ॥ २० ॥ जैसैं ताल सदा भरे, जल आवै चहुंओर। तैसैं आस्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥ २१ ॥ ज्यों जल आवत मूंदिये. सूखै सरवरपानि। तैसैं संवरके किये. कर्मनिर्जरा जानि ॥२२॥ ज्यों बूटीसंयोगतें. पारा मूर्छित होय। त्यों पुद्गलसों तुम मिले. आतमशक्ति समोय ॥ २३ ॥ मेलिखटाई माजिये. पारा परघट रूप। शुक्लध्यान अभ्यासतें. दर्शन ज्ञान अनूप ॥ २४ ॥ कहि उपदेश 'बनारसी' चेतन अब कछु चेत। आप बुझावत आपको, उदय करनके हेत ॥ २५ ॥

१६० कर्मछत्तीसी।

भव्यकमल रवि सिद्ध जिन, धर्मधुरंधर धीर।

नमूं सदा जग-त्तमहरण, नमूं त्रिविध गुरु वीर ॥

चौपाई १५ मात्रा ।

मिथ्याविषयनमें रत जीव । तातें जगमें भ्रमहिं सदीव ॥ विविधप्रकार गहै परजाय । श्रीजिन-धर्म न नेक सुहाय ॥ २ ॥ धर्मविना चहुंगतिमें फिरै । चौरासी लख फिर फिर धरै ॥ दुखदावा-नलमाहिं तपंत । कर्म करै सुख भोग लहंत ।३। अति दुरलभ मानुष परजाय । उत्तम धनकुल रो-ग न काय ॥ इस अवसरमें धर्म न करै । फिर यह अवसर कब को वरै ॥ ४ ॥ नरकी देह पा-य रे ! जीव । धर्म बिना पशु जान सदीव ॥ अर्थकाममें धर्म प्रधान । ता विन अर्थ न काम न मान ॥ ५ ॥ प्रथम धर्म जो करै पुनीत । शु-भसंगम आवै कर प्रीत ॥ विघन हरै सब का-रज सरै । धनसों चारों कोने भरै ।६। जन्मज-रामृतके वश होय । तिहूंकाल जग डोलै सोय ॥ श्रीजिनधर्मरसायनपान । कबहुं न रुचि उपजै अज्ञान ॥ ७ ॥ जो कोई मूरखजन होय । गहै

हलाहल अमृत खोय ॥ त्यों शठ धर्मपदारथ त्याग । विषयनसों ठानै अनुराग ॥८॥ मिथ्या ग्रहगहिया जो जीव । छांडि धर्म विषयनचित दीव ॥ ज्यों सठ कल्पवृक्षको तोड । वृक्ष धतूरे के बहुजोड ॥९॥ नरदेही जानो परधान । विसर विषय, कर धर्म सुजान ! ॥ त्रिभुवनइंद्रतने सुखभोग । पूजनीक हो इंद्रनजोग ॥ १० ॥ चंद्रविनानिश गजविनदंत । जैसें तरुणनारि विनकंत ॥ धर्मविना त्यों मानुषदेह । तातें करिये धर्मसनेह ॥११॥ हय गय रथ पायक बहुलोग। सुभट वहुतदल चमर मनोग॥ धुजा आदि राजाविन जान। धर्म विना त्यों नरभव मान।१२। जैसें गंध विना है फूल। नीरविहीन सरोवर धूल ॥ ज्यों धनविन शोभित नहिं भौन। धर्म विना नर त्यों त्रिंतौन ॥ १३॥ अरचै सदा देव अरहंत । चरचै गुरुपद करुणावंत ॥ खरचै दान धर्मसों प्रेम। न रचै विषय सकल नर एम ॥ १४ ॥ कमला चपल रहै थिर नाय। यौवन

कांति जरा लपटाय ॥ सुत मित नारी नावसँजो-
ग। यह संसार सुपनका भोग ॥ १५ ॥ यह
लखि चितधर शुद्ध सुभाव। कीजे श्रीजिनधर्म
उपाव ॥ यथाभाव जैसी गति गहै। जैसी गत
तैसा सुख लहै ॥ १६ ॥ जो मूरख बुद्धी-
करहीन। विषयपंथरग्त व्रत नहिं कीन ॥
श्रीजिनभाषित धर्म न गहै ॥ जैसी गत
तैसा सुख लहै ॥ १७ ॥ आलसमंद बुद्धि है
जास। कपटी मगन-विषय सठ तास ॥ कायरता
नहिं परगुण ढकै। सो तिर्यंचजोन लहि थकै
॥१८॥ आरतरौद्रध्यान नित करै। क्रोधादिक
मच्छरता धरै ॥ हिंसक वैरभाव अनुसरै। सो
पापिष्ठ नरकगति परै ॥ १९ ॥ कपट हीन करु-
णा चितमाहिं। हेय उपादे भूलै नाहिं। भक्तिवंत
गुणवंत जु कोय। सरल सुभाव सुमानुष होय
॥ २० ॥ श्रीजिनवचनमगन तपदान। जिन-
पूजे दे पात्रहिं दान ॥ रहे निरंतर विषयउदास।
सोही लहैं सुरग आवास ॥ २१ ॥ मानुषजोन

अतवर्ते पाय। सुन जिनवचन विषय विसराय॥
गहै महाव्रत दुर्द्धर वीर। शुक्लध्यानथिर लह
शिव धीर॥२२॥ धर्म करत सुख होय अपार।
पाप करत दुख विविधप्रकार॥ वालगुपाल कहैं
नर नारि। इष्ट होय सोई अवधारि ॥ २३ ॥
श्रीजिनधर्म मुकतिदातार। हिंसाकर्म वढइ सं-
सार ॥ यह उपदेश जान वडभाग। एक धर्मसों
कर अनुराग॥ २४ ॥ व्रतसंजम जिनपद श्रुति
सार। निर्मल सम्यकभाव जु धार। अंतकषाइ
विषयक्षप करो। जो तुम मुकतिकामिनी वरो
॥ २५ ॥ दोहा—

बुधकुमदनिशशिसुखकरन, भवदुखसागरजान
कहै ब्रह्म जिनदास यह, ग्रंथ धर्मकी खान।२६।
द्यानत जे बांचै सुनैं, मनमैं करैं उछाह।
ते पावें सुख सास्वते, मनवांछित फललाह॥२७॥

१६१। अध्यात्मपंचासिका।

दोहा।

आठ कर्मके बंधतैं, बँधै जीव भववास। कर्म

सब गुण भरे, नमों सिद्धि सुखरास ॥ १ ॥ जगतमाहिं चहुंगति विषै जन्ममरणवश जीव। मुक्तिमाहिं तिहुंकालमें. चेतन अमर सदीव ।२। मोक्षमाहिंसेती कभी, जगमें आवै नाहिं। जगके जीव सदीव ही. कर्मकाट शिवजाहिं ॥३॥ पूर्व कर्मउद्योगतें. जीव करैं परिणाम। जैसें मदिरा पानतें, करै गहल नर काम ॥४॥ तातें बांधै कर्म को, आठ भेद दुखदाय। जैसें चिकने गातमें धूलिपुंज जमजाय ॥ ५ ॥ फिर तिन कर्मनके उदय, करै जीव बहु भाय। फिरके बांधै कर्मको. यह संसारसुभाय ॥ ६ ॥ शुभ भावनतें पुण्य है, अशुभभावतें पाप। दुहूंअछादित जीव सो जान सकै नहिं आप ॥७॥ चेतनकर्मअनादि-के, पावक काठ बखान। छीरनीर तिलतेल ज्यों खान कनक पाखान॥ ८ ॥ लाल बँध्यो गठड़ी-विषै.भानु छिप्यो घनमाहिं। सिंह पींजरेमें दि-यो, जोर चलै कछु नाहिं ॥ ९ ॥ नीर बुझावे आगको. जलै टोकनीमाहिं। देहमाहिं चेतन

दुखी. निज सुख पावें नाहिं ॥ १० ॥
देहसों छुटत है, अंतर तन है संग । ताहि ध्यान अग्नी दहै, तब शिव होय अभंग ॥ ११ ॥
रागरोषतें आपही. पडै जगतके माहिं । ज्ञान भावतें शिव लहै, दूजा संगी नाहिं ॥१२॥ जैसें काहू पुरुषके द्रव्य गड्यो घरमाहिं । उदर भरै कर भीख ही, व्योरा जानैं नाहिं ॥ १३ ॥ ता नरसों किनहीं कही. तू क्यों मांगै भीख। तेरे घरमें निधि गड़ी, दीनी उत्तम सीख ॥ १४ ॥
ताके वचनप्रतीतसों. वहै कियो मनमाहिं। खोद निकाले धन विना, हाथपरै कछु नाहिं ॥ १५॥
त्यों अनादिकी जीवकै. परजैबुद्धि बखान। मैं सुर नर पशु नारकी. मैं मूरख मतिमान ॥१६॥
तासों सतगुरु कहत हैं तुम चेतन अभिराम। निश्चय मुक्तिसरूप हो. ये तेरे नहिं काम ।१७।
काललब्धि परतीतसों, लखत आपमें आप। पूरण ज्ञान भये विना, मिटै न पुन अरु पाप ॥ १८ ॥ पाप कहत है पुण्यको. जीव सकल

संसार । पुण्य कहत है पापको. ते विरले मति-
धार ॥१९॥ बंदीखानेमैं परे. जातैं छूटै नाहिं ।
विन उपाय उद्यम किये. त्यों ज्ञानी जगमाहिं
॥२०॥ साबुन ज्ञान विराग जल. कोरा कपडा
जीव । रजक दक्ष धोवै नहीं. विमल न होय स-
दीव ॥ २१ ॥ ज्ञानपवन तप-अगन विन. दहै
मूस जिय हेम । कोडवर्षलौं राखिये. शुद्ध होय
मन केम ॥२२॥ दरव कर्म दौंकर्मतैं. भावकर्मतैं
भिन्न । बिकलप नहीं सुबुद्धिकै, शुद्ध चेतना
चिन्ह ॥ २३ ॥ चारौं नाहीं सिद्धकै, तू चारोंके
माहिं । चार विनासै मोक्ष है. और बात कछु
नाहिं ॥ २४ ॥ ज्ञाता जीवनमुक्त है, एक देश
यह बात । ध्यान-अग्नि-विन कर्मवन. जलै न
शिव किम जात ॥ २५ ॥ दर्पण काई अथिर
जल, मुख दीसै नहिं कोय । मन निर्मल थिर
विन भये. आपदरश क्यों होय ॥२६॥ आदि-
नाथ केवल लह्यो. सहस वर्ष तप ठान । सोई
पायो भरतजी. एक मुहूरत ज्ञान ॥ २७ ॥ राग

रोष संकल्प है, नयके भेद विकल्प। रोषभाव मिटजाय जब, तब सुख होय अनल्प ॥ २८ ॥ रागविरागदुभेदसों, दोयरूपपरिणाम। रागी जगके भूमिया, वैरागी शिवधाम ॥२९॥ एक भाव है हिरणके भूख लगे तृण खाय। एकभाव मंजारके, जीव खाय न अघाय ॥ ३० ॥ विविध भावके जीव बहु, दीसत हैं जगमाहिं. एक कछू चाहै नहीं, एक तजै कछु नाहिं ॥ ३१ ॥ जगत अनादि अनंत है. मुक्ति अनादि अनंत। जीव अनादि अनंत हैं कर्म दुविध सुन संत ॥३२॥ सबके कर्म अनादिके, कर्म भव्यको अंत। कर्म अनंत अभव्यके, तीनकाल भटकंत ।३३। फरश बरन रस गंध स्वर पांचों जानै कोय। बोलै डोलै कौन है, जो पूछै है सोय ॥३४॥ जो जानैं सो जीव हैं, जो मानै सो जीव। जो देखै सो जीव है, जीवै जीव सदीव ॥ ३५ ॥ जातपना दो विध लसै. विषय-निर्विषय-भेद । निरविषयी संवर लसै. विषयी आस्रव वेद ॥ ३६ ॥ प्रथम

जीवश्रद्धानसों, कर वैराग्य उपाय ॥ ज्ञान किये-
सों मोक्ष है, यही बात सुखदाय ॥३७॥ पुद्गल
सों चेतन बँध्यो, यही कथन है हेय। जीव बँध्यो
निज भावसों, यही कथन आदेय ॥३८॥ बंध
लखै निज औरसे, उद्यम करै न कोय। आप
बँध्यो निजसों समझ, त्याग करै शिव होय
॥३९॥ यथा भूपको देखके, ठौर रीतिको जान।
तब धनअभिलाषी पुरुष. सेवा करै प्रधान ।४०।
तथा जीवसरधानकर, जानै गुणपरजाय।
सबै जु शिवधनआशधर, समतासों मिलजाय
॥४१॥ तीनभेद व्यवहारसों, सर्व जीव सबठाम।
श्रीअरहत परमात्मा, निश्चय चेतनराम ॥४२॥
कुगुरु कुदेव कुधर्म रति, अहंबुद्धि सब ठौर।
हित अनहित सरधै नहीं, मूढनमें शिरमौर ।४३।
आपआप परपर लखै, हेयउपादे ज्ञान। अब
तो देशव्रती महा, व्रती सबै मतिमान ।४४। जा
पदमें यह पद लसै, दर्पन ज्यों अविकार। सकल
निकल परमात्मा, नित्यनिरंजन सार ॥ ४५ ॥

बहिरातमके भाव तजि, अंतरआतम होय। पर-
मातम ध्यावें सदा, परमातम सो होय।४६। बूंद
उदधि मिल होत दधि, वीती फरश प्रकाश (?)।
त्यों परमातम होत है, परमातम अभ्यास।४७।
सब आगमको सार ज्यों, सब साधनको धेव।
जाको पूजैं इंद्र सो, सो हम पायो देव ॥ ४८ ॥
सोहं सोहं नित जपै, पूजा आगमसार। सत-
संगतिमें बैठना, यहे करे व्यवहार ॥ ४९ ॥
अध्यातम पंचाशिका,-माहिं कह्यो जो सार। ध्या-
नत ताहि लगे रहो, सबसंसार असार ॥५०॥

॥ इति अध्यात्मपंचाशिका समाप्ता ॥

१६२। सुवाबत्तीसी।

दोहा—नमस्कार जिनदेवको, करों दुहं कर जोर।
सुवाबतीसी सुरस में, कहूं अरिनदल मोर ।१।
आतमसुआ सुगुरुवचन, पढ़त रहै दिनरैन। क-
रत काज अघरीतिके, यह अचरज लखि नैन
॥२॥ सुगुरु पढ़ावे प्रेमसों, यह पढ़त मनलाय।
घटके पट जो ना खुलैं, सबहि अकारथ जाय।३

चौपाई—सुवा पढ़ावे सुगुरु बनाय। करम बनहि जिन जइयो भाय। भूल चूककर कबहु न जाहु। लोभ नलिनिपै चुगा न खाहु ॥४॥ दुर्जन मोहदगाके काज। बांधी नलनी तलधर नाज॥ तुम निज बैठ हु सुवा सुजान। नाज विषयसुख लहि तिहँ थान ॥५॥ जो बैठहु तो पकरि न रहो। जो पकरो तो दृढ़ जिन गहो॥ जो दृढ़ गहो तो उलटि न जाव। जो उलटो तो तजि भजि धाव ॥६॥ इहविध सूआ पढ़ायो नित्त। सुवटा पढ़िकै भयो विचित्त॥ पढ़त रहै निशिदिन ये बैन। सुनत लहै सब प्रानी चैन ॥ ७ ॥ इक दिन सुवटै आई मनै, गुरुसंगत तज भजगये वनै॥ बनमैं लोभ नलिन अति बनी। दुर्जनमोह दगाकों तनी॥ ८ ॥ ता तर विषयभोग अन धरे। सुवटै जान्यो ये सुख खरे॥ उतरे विषयसुखनके काज। बैठ नलिनपै विलसै राज ॥ ९ ॥ बैठो लोभनलिनपै जबै। विषय-स्वाद-रस लब्यो तबै॥ लटकत तरैं

उलटि गये भाव। तर मुंडी ऊपर भये पांव ॥१०॥
नलनी दृढ पकरे पुनि रहै। मुखतें वचन दी-
नता कहै॥ कोउ न तहां छुड़ावनहार। नलनी
पकरे करहि पुकार॥ ११॥ पढत रहै गुरुके
सब वैन। जे जे हितकर रखिये ऐन॥ सुवटा
वनमें उड जिन जाहु। जाहु तो भूल चुगा जिन
खाहु॥ १२॥ नलनीके जिन जाइयो तीर।
जाहु तो तहां न बैठहु वीर॥ जो बैठो तो दृढ
जिन गहो। जो दृढ गहो तो पकरि न रहो
॥ १३॥ जो पकरो तो चुगा न खइयो। जो
तुम खाव तो उलट न जइयो॥ जो उलटो तो
तज भज धइयो। इतनी सीख हृदयमें लहियो
॥१४॥ ऐसे वचन पढत पुन रहै। लोभ नलिन
तज भज्यो न चहै॥ आयो दुर्जन दुर्गतिरूप।
पकड़े सुवटा सुंदर भूप॥ १५॥ डारे दुखके
जालमझार। सो दुख कहत न आवै पार॥ भूख
प्यास बहु संकट सहै। परवस पर्‍यो महा दुख
लहै ॥१६॥ सुवटाकी सुधि बुधि सब गई॥ यह

तो बात और कछु भई ॥ आय पर्यो दुखसा माहिं। अब इततैं कितको भज जाहिं ॥ १७ ॥ केतो काल गयो इह ठौर। सुवटै जियमें ठानी और यह दुख जाल कटै किह भाँति। ऐसी मनमें उपजी ख्याँति ॥ १८ ॥ रात दिना प्रभु सुमरन करै। पाप-जाल काटन चित धरै ॥ क्रम क्रम कर काट्यो अघजाल। सुमरत फल भयो दीनदयाल ॥१९॥ अब इततैं जो भजकें जाँउं। तो नलनीपर बैठ न खाँउं ॥ पायो दाव भज्यो ततकाल। तज दुर्जन दुर्गति जंजाल ॥ २० ॥ आयो उड़त बहुरि वनमांहिं। बैठ्यो नरभवद्रुम-की छांहिं॥ तित इक साधु महा मुनिराय। धर्म देशना देत सुभाय ॥ २१ ॥ यह संसार कर्मवन रूप। तामहिं चेतन सुआ अनूप ॥ पढत रहै गुरु बचन विशाल। तौ हू न अपनी करै सँभाल ॥ २२ ॥ लोभ नलिनपै बैठ्यो जाय। विषय-स्वाददरस लटक्यो आय। पकराहि दुर्जन दुर्गति परै। तामें दुःख बहुते जिय भरै ॥ २३ ॥ सो

दुख कहत न आवै पार। जानत जिनवर ज्ञान मझार॥ सुनतहि सुवटो चौंक्यो आप। यह तो मोहि परयो सब पाप॥ २४॥ ये दुख तो सब मैं ही सहे। जो मुनिवरने मुखतें कहे॥ सुवटा सोचै हियेमझार। ये गुरु सांचे तारनहार।२५। मैं शठ फिरयो करमवनमाहिं। ऐसे गुरु कहुं पाये नाहिं॥ अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो। सांचे गुरुको दर्शन लयो॥२६॥ गुरुकी थुतिकर बारंबार। सुवटा सोचै हियेमझार॥ सुमरत आप पाप भजगयो। घटके पट खुल सम्यक थयो।२७। समकित होत लखी सब बात। यह मैं यह पर द्रव्य विख्यात॥ चेतनके गुण निजमहिं धरे। पुद्गल रागादिक परिहरे॥ २८॥ आप मगन अपने गुणमाहिं। जन्म मरण भय जिनको नाहिं॥ सिद्धसमान निहारत हिये। कर्मकलंक सबहि तज दिये॥ २९॥ ध्यावत आपमाहिं जगदीश। दुहुँपद एक विराजत ईश। इहविधि सुवटो ध्यावत ध्यान। दिनदिनप्रति प्रगटत

कल्यान ॥ २० ॥ अनुक्रम शिवपद जियको भयो । सुख अनंतै विलसत नित नयो ॥ सतसंगति सबको सुख देय। जो कछु हियमें ज्ञान धरेय ॥ २१ ॥ केवलिपद आतम अनूभूत । घट घट राजत ज्ञान सँजूत ॥ सुख अनंत विलसै जिय सोय। जाके निजपद परगट होय।२२। सुवावत्तीसी सुनहु सुजान। निजपद प्रगटत परम निधान ॥ सुख अनंत विलसहु ध्रुव नित्त । 'भैयाकी' विनती धर चित्त ॥२३॥ संवत सत्रह त्रेपनमाहिं । आश्विन पहले पक्ष कहाहिं ॥ दशमी दशों दिशा परकाश। गुरु संगतितैं शिवसुखभास ॥ २४ ॥

१६३ । सप्तव्यसनके चौबोले ।

सात व्यसन । दोहा—

सातविसन जगमें बुरे, बुरा इन्होंका संग ।
जिसके सिर चढ जात हैं, केई दिखावत रंग ॥
केई दिखावत रंग संगमें, नफा नहीं सुन भाई ।
अपना तन धन धर्म गुमावै,जगबदनामी छाई॥

तात मात सुत नारी छाडै, मुँह न लगावै भाई।
हाय हाय किस नीच जीवने, इनकी चाल चलाई॥

झड़—

चालमें सब जग आया, ख्यालमें जन्म गमाया।
पाप कर नरक सिधाया, बहुत पीछें पछताया॥
विसनकी सुनो कहानी, कही जेसें जिनवानी।
तज्या जिन्होंने विसन जिनेश्वर तिनकी शिक्षा
मानी॥ १॥

(१) जूआखेलनव्यसन।

जुआ खेलकर जगतमैं, होय मुफ्त बदनाम।
मजा नहीं इस काममैं, सजावार वसु जाम॥
सजावार वसु जाम धाम, आराम कभी नहिं
पाता। फिकरमंद मतिअंध वक्तपर, खानेको
नहिं जाता॥ संग जुआरी कई रंगका, ढंग
देख घबराता। मारपीट बहु माल खायकर, तौ
भी नहीं लजाता॥

झड़—

काज ज्वारीके नाहीं, दया नहिं मनके माहीं।

सत्य नहिं कहै कदाही, रा॰का चोर सदाही॥
पांडुसुत खेल किया था, नारिका दाव दिया था।
तजा जिन्होंने जुआ जिनेश्वर तिन सब सुक्ख
लिया था ॥ २ ॥

(२) मांसभक्षणव्यसन ।

श्वास श्वासपर खैरको, चाहै सकल जहान।
श्वास नाशकर होत है. मांस महा दुखदान ॥
मांस महा दुखदान खानकी बात सुनत घिन
आवै। थरहर काँपै काय हाय पशु दीन बडा
घबरावै ॥ बेकसूर पशुमांसलालची तनमें छुरी
चलावै। बडे निर्दयी जीव जगतमें, आमिषभो-
जन खावें ॥

झड़—

भावना हिरदै खोटी, छोंककर आमिस बोटी।
मनुष भी राक्षस जोटी, धरै शिर अघकी पोटी॥
मांसका नाम न लेना, असनके लायक है ना।
मांस असनको त्याग जिनेश्वर जगमें कीरति
लेना ॥ ३ ॥

(३) मदिरासेवनव्यसन ।

जितने नशे जहाँनमें, सभी विनाशै ज्ञान । ति-
नमें मदिरा अति बुरी, सही गमावै प्रान ॥ सही
गमावै प्रान ज्ञानका, नाम न रहने पावै । मदिरा
पीके मनुष होशमें, कबहूं नाहिं रहावै ॥ जननी
भगिनी नार न जाने, मदमातुर हो जावै । अ-
ति बेहोश पडा दुख भुगतै, मूरख प्रान गमावै ॥

झड—

प्रान बहु जीवन खोया, जादवां वंश डुबोया ।
ऋषीको क्रोध जगाया, द्वारिका दाह कराया ॥
तुच्छकी कौन कहानी, बड़ोंकी कालनिशानी ।
यातैं मदिरा त्याग जिनेश्वर करो धर्म सुखपानी ॥

(४) शिकारव्यसन ।

अपने अपने प्रानकी सभी मनावै खैर । हाय
सिकारी बनविषे, पशु मारे विन बैर ॥ पशु मा-
रै विन बैर खैरकी दया हिये नाहिं लावै । शीत
घाम सब सहे वनीमें, भोजन भी नहिं पावै ॥
नाम भजन हरनाम त्यागकैं मार मार मुख गा-
वै । कायर क्रूर कुरंग अंगमें भारी चोट लगावै ॥

झड—

चोटमें हिरन सताया, दयाका नाम मिटाया। भ-
भेके पीछैं धाया, वीरका नाम लजाया॥ मृगी-
पर हाथ चलाया, वृथा क्षत्री कहलाया। दुर्ग-
तिपंथ शिकार त्यागकर, यही जिनेश्वर गाया॥

(५) चौरीव्यसन।

प्रानोंसे प्यारी गिनै, धनदौलत संसार। याके
कारन नरपती, हाथ गहै तलवार॥ हाथ गहै
तलवार समरमें सूरवीर शिर देते। नद सागर
तिर जांय वणिक शिर बडी आपदा लेते॥
कठिन कठिनकर लछमी जोड़ैं सहैं सभी दुख
जेते॥ हाय हाय ताको ठगता करि सहज चौर
कर लेते॥ झड—
चौरकों राजा मारै. सजा दे देश निकारे। लोग
सबही दुतकारै, बडी बेशरमी धारै॥ भूल मति
चौरी करियो, चौरसंगतिसैं डरियो। डरियो
जगतमझार जिनेश्वर चौरी कबहु न करियो।६।

(६) वेश्यासेवनव्यसन।

नीचनकी संगत रहै, करै नीच सब काम। मृ-

रखजन फँसि जात हैं, देख ऊजरो चाम ॥ दे-
ख ऊजरो चाम दामकी, खातिर धरम गमावे।
ऊंच नीचका ख्याल करै ना, सबको अंग लगावे॥
जगकी झूंट जानि गनिकाको, मूरख मन ल-
चावै। हा धिक धिक ऐसे जीवनको, गनिका
संग रहावे॥ झड-
लगे जब गनिका प्यारी, बुद्धि नशि जाय अ-
गारी। क्रोडपति होय भिखारी, कर्मगति टरे
न टारी॥ भूल मति यारी करियो, देहदुरग-
तिसों डरियो। तजि गनिकाको नेह जिनेश्वर
धर्मविषै मन धरियो॥ ७॥

(७) परस्त्रीसेवनव्यसन।

कुलकलंकदायक सदा, परकामिनिको प्यार।
मूरखमनके हतनको, मृगनैनी तलवार॥ मृग-
नैनी तलवार कलेजा आरपार हो जावे। दृग-
कटाक्ष सर चोट लगै तब, ओट न कोई आवै॥
ऊपर घाव प्रगट नहिं दीखै, मनही मन पछतावै।
खानपान गृहवास खासका, मजा हाथसे जावै॥

आनके प्रान गमावे भेद काहू न बतावै । दिव-
समें निद्रा आवे. सुपनमें नारि लखावे ॥ वृथा
क्यों जी ललचावे. लिखी विधिने सोइ पावे ।
लंकपतीसे रंक भये नर तेरी कौन चलावे ॥८॥

समाप्त ।

१६४ । उपदेशी बारहखड़ी ।

दोहा—प्रथम नमूं अरहंतको, नमूं सिद्ध आचार ।
उपाध्याय सब साधुको, नमूं पंच परकार ॥१॥
भजन करूं श्रीआदिको, अंत नाम महावीर ।
तीर्थंकर चउवीसको, नमूं ध्यान धर धीर ॥२॥
जिनधुनितैं वानी खिरी, प्रगट भई संसार ।
नमस्कार ताकूं करूं, इकचित इकमन धार ।३।
ता वानीके सुनतही, बढ्यो परम आनंद ।
भई सुरति कछु कहनकी, बारखड़ीके छंद ॥
बारखडीके छंद बनाऊं, यह मेरे मन आई ।
जैनपुराण बखानी वानी, सो मैंने सुन पाई ॥
गुरुप्रसाद भविजनकी संगति, यह उपजी चतु-

राई। सूरत कहै बुद्धि है थोरी, श्रीजिननाम सहाई॥ ४॥ कक्का करत सदा फिरयो, जामन मरन अनेक। लाख चौरासी जोनिमें, काज न सुधरयो एक॥ काज न सुधरयो एक दिवाना तैं शुभ अशुभ कमाया। तेरी भूलि तोहि दुख-दाई, बहुतेरा समझाया। भटकत फिरयो चहूं-गति भीतर काल अनादि गमाया। सूरत सत-गुरु सीख न मानी तातैं जग भरमाया॥ ५॥ खक्खा खूबी मत लखो, संसारी सुखजान। यह सुख,दुखका मूल है,सतगुरु कही बखान॥ सतगुरु कही बखान जान यह, तू मति होय अयाना। विनाशीक सुख इन इंद्रिनका,तैं मीठा करि जाना॥ यह सुख जानि खानि है दुखकी तू क्या भरम भुलाना। सूरत पछतावैगा तबही होय नरक जब थाना॥ ६॥ गग्गा गुरु निर-ग्रंथको, सतवानी मुख भाख। अवर विकार सबै तजो, यह थिरता मन राख॥ यह थिरता मन राखि चाखि रस, जो अपना सुख चाहै।

अवर सबहिं जंजाल दूर करि ये बातैं अवगाहै ॥ पांचों इंद्रीवस करि अपनी कर्ममूलको दाहै । सूरत चेत अचेत होय मति. अवसर बीतो जाहै ॥७॥ घग्घा घाट सुघाटमें. नाव लगी है आय । जो अबके चेतै नहीं. तो गहरा गोता खाय ॥ गहिरा गोता खाय जाय तब कौन निकासनहारा । समय पाय मानुषगति पाई, अजहूं नाहिं सँभारा ॥ बारबार समझाऊं चेतन मानो कहा हमारा । सूरत कही पुकार गुरूने, यों हो है निस्तारा ॥ ८ ॥ नन्ना नाता जगतमें, निज स्वारथ सबकोय । आन गांठि जिसदिन परे, कोउ न सँगाती होय ॥ कोउ न सँगाती सगा न साथी जिसदिन काल सतावे । सब परिवार अपन स्वारथका, तेरे काम न आवै ॥ आठों मदमें छाकि रह्यो है, मैं मैं कर विललावै । सूरत समझि होय मत बौरा, अवसर बीता जावै ॥ ९ ॥ चच्चा चंचल विकलमन, तिस-मनको बसिआन । जबलग मन बसमें नहीं, काज न

होय निदान ॥ काज न होय निदान जान यह, वश नाहीं मन तेरा। पांचूं इंद्री छुठा चोर मन, तूं इनका भयो चेरा ॥ राग रोष अरु मोहसमीपो इनहुं आन मिल घेरा। सूरत जिसदिन मनथिर हो है, तिसदिन होय निवेरा ॥ १० ॥ छच्छा छह रस स्वादमें, रह्यो छहों रस मान। छकि रह्यो छारै नहीं, समुझत नाहिं अजान ॥ समुझत नाहिं अजान जान तू इन स्वादनमें राचा। आरत चिंता लाग रही है, ज्ञानध्यानमें काचा ॥ जैसें कर्म नचावे तोकूं, तैसी ही विधि नाचा ॥ सूरत फिरयो चहूंगति भीतर, मिल्या न सतगुरु साँचा ॥११॥ जज्जा जाग सुजाग नर, यह जागनकी वार। जो अब तू जागै नहीं, फेर न होय सँभार ॥ फेर न होय सँभार सार यह, जो अबके नहि जागै। जो जागै निरभयपद पावै, जरामरनभयभागै ॥ नातरि फेर फसै भवसागर, हाथ कछू नहिं लागै ॥ सूरत भला होय जब तेरा, संसारी सुख त्यागै ॥ १२ ॥ झज्झा झारि

पिछोरके. कहूं तोहि समझाय। जामें नें वासा किया, सो तेरी नहिं काय॥ सो तेरी नहिं काय जाय संग तुझे अकेला जाना। तैंने घर बहुतेरे कीये. आवत जात भुलाना॥ थावर पंच त्रस पक्षी मानुष, भयो देव कहुँ दाना। सूरत छहों कायतें भुगती आपा नहीं पिछाना॥ १३॥ नन्ना नग्गद है भलो, ऐसो अवर न कोय। जे सँभले तेई तिरे. भवजलपार जु होय॥ भवजलपार जु होय विचारें, जे इस बेर संभारा। तीनकाल जिन सही परीषह, कर्म चूर करि डारा॥ आवंत जात काल बहु वीना, लोकालोक निहारा। सूरत जो सुख ऐसा चाहे. चेतो वेग सँवारा॥१४॥ टट्टा टाला तिन किया, ते बूडे संसार। फिरहिं भटकते जगतमें, तिनको वार न पार॥ तिनको वार न पार कहूं है, फिरते फिरहिं विचारे। नर तिरजंचहु नरक देवगति, चारों धाम निहारे॥ जम्मन मरन किये बहुतेरे, सहे महादूख भारे। सूरत कौतुक आप कमाये. कापे

आय पुकारे ॥ १५ ॥ ठट्ठा ठटकि रह्यो कहा,
बेगइ क्यों न सँभाल। छोड़ि ठाठ संसार-
के जो टूटै जगजाल॥ जो टूटै जगजाल
बाउरे, बहुरि नहीं दुखपावै। सतगुरु कही
मान सो शिक्षा फेर न जगमें आवै॥ छोडो
संग कुमति खोटीको जो तुमको बहकावै।
सूरत संग सुमतिकी कीजै, शिवपुर जाय दि-
खावै ॥ १६ ॥ डड्डा डिग मति जाय तू.अडिग
होय पद साधि। दृढता करि परिणामकी, जो
सुख लहै समाधि॥ जो सुख लहै समाधि व्या-
धितज आपा खोजो भाई। सिद्धरूप तेरे घट
अंतर, कहां ढूढने जाई॥ जडपुद्गलको भिन्न
जान तू, मिटै करम दुखदाई। सूरत आप आप
मैं साधै, यह सतगुरु फरमाई॥ १७॥ ढड्ढा ढोरी
छोडदे, ढिग इनके मत जाय। कुगुरु कुदेव कु-
ज्ञानको, तू मति चित्त लगाय॥ तू मति चित्त
लगाय भाव तजि कुगुरु कुदेव कुज्ञानी। ये तो-
हूं दुरगति दिखलावैं, सोदुखमूलनिशानी॥ इ-

नतैं काज एक नहिं सुधरै.करम भरमके दानी। सूरत तजि विपरीत इन्होंकी. सतगुरु आप बखानी ॥१८॥ णण्णा रण ऐसा करो.संवरश-स्त्र सँभार कर्मरूप ये अरि बडे. तिनहिं ताकिकरि मार ॥ तिनहिं ताकिकरि मार निवारो कर्मरूप अरि सोई। है अनादिके ये दुखदाई तेरी जाति विगोई॥ नारायण प्रतिहरि हर चक्री यातैं बचे न कोई। सूरत ज्ञानसुभट जब जागै,तिन इनकी जड़ खोई॥१९॥ तत्ता तन तेरा नहीं जामें रह्यो लुभाय। ताँता तोरै,तनकमैं ताहि कहा पतियाय॥ ताहि कहा पतियाय पाय सुख ह्वै रह्यो याको वासी। छिनमैं मरै छिनकमैं उपजे होय जगतमैं हांसी॥ याके संग बढै बहु ममता परै महादुख फांसी। सूरत भिन्न जान इस तनको यासों रहो उदासी॥२०॥ थत्था थिरपदको चहै यों थिरपद नहिं होय। थिरताकरि परिणामकी थिरपद परसै सोय॥ थिरपद परसै सोय होय सुख गतिचारनसों छूटै। ज्ञानध्यानको

करै हथोड़ा, कर्म अरीको कूटै ।। यह जगजाल अनादिकालका, सो ऐसा विध टूटै । सूरत थिरपदको जो परसै शिवपुरके सुख लूटै ।।२१।। दद्दा दरब छही कहे, प्रगट जगतके मांहिं । अवर दरब सब खेल हैं,ज्ञानी मानै नाहिं । ज्ञानी मानै नाहिं, दरब वे जो रतननको जानै । माटी भूमि शैलकी जो धँजि जगमैं प्रगट बखानै ।। पुद्गल जीव धरम अरु अधरम काल अकाश प्रमानै । सूरत इन दरबनकी चरचा ज्ञानी गिनै [1]खानै ।२२। धध्धा ध्यान जु जगतमैं, प्रगट कहे हैं च्यार । आर्त रौद्र धर्मसु शुकल, जिनमत कहे विचार ।। जिनमत कहै विचार चार ये ध्यान जगतके माहीं । आरत रौद्र अशुभके दाता इनतैं शुभगति नाहीं ।। धर्मध्यानके जे नर-धारक शुभसुख होत सदाही । सूरत शुक्लध्यानके करता ते शिवपुरको जाई ।। २३ ।। नन्ना नाशै करम जब, नेह करै निज पाहिं । नटकी कला जु जगतमैं, नेह करै छिन

---

१ खरी या सच्चा ।

नाहिं ॥ नेह धरै छिन नाहिं जगतमें आपा नाहिं फसावें । ज्यों पानीमें रहै कमल तउ जलका भेद न पावें ॥ शुभ अरु अशुभ एकसे दोनों रीझै ना पछतावें । सूरत भिन्न लखै ऐसी विध करम कहा ठग आवे ॥२४॥ पप्पा प्रभु अपना लखो परसंगति दे छोर । परसंगति आस्रव बढैं, देय करम झकझोर ॥ देय करम झकझोरि जोरिकरि फिर निकसन नहिं होई । आस्रव बंध परी है बैरी लगै उपाय न कोई ॥ यातें प्रीति करो संवरसों हित करके दिलजोई । सूरत संवरको आदरिये कर्मनिर्जरा होई ॥ २५ ॥ फफ्फा फूल्यो ही फिरै, फंफन्द लखै न भूल । फांसी पडी अनादिकी, करि तोडनको सूल ॥ करि तोडनको सूल भूल मति दाव भलो तैं पायो । भ्रमते भ्रमते भवसागरसों मानुषगतिमें आयो ॥ याही गतिसों भये तीर्थकर केवलज्ञान उपायो । सूरत जानि भूल मति चूके यह सतगुरु फरमायो

१ उपाय ।

॥२६॥ वव्वा विसन कुविसन हैं, विसन वेग सु त्याग। वसकरि पांचों इंद्रियनि शुभ कारजको लाग॥ शुभकारजको लाग त्याग नर विसन सात ये भारी। जूआ आमिष सुरापान अरु आखेटक दुखकारी। परधनचोरी अरु वेस्याकूं त्याग करो परनारी॥ सूरत इस भवमें सुख पावें परभवसुख अधिकारी॥ २७॥ भभ्भा भूल्यो ही फिरै, भरम्यो महा मिथ्यात। भेद न पायो ज्ञानको, तातैं आवत जात॥ तातैं आवत जात बात सुन भेदज्ञान नहिं पाया। क्रोध रु मान लोभ अरु माया इनसों नेह लगाया॥ परमारथकी रीति न जानी, स्वारथ देख भुलाया। सूरत भेदज्ञान जग जाना, तब मिथ्यात मिटाया॥२८॥ मम्मा मति तिनकी सही, निज मल कीनो दूर। मतवारे समझैं नहीं, तिनको नाहिं महूर॥ तिनको नाहिं सहूर दूर है कुमती कुमति विचारैं। तिन कुगुरनि तिनको समुझाये पकरि भवोदधि डारै॥ पुण्य पापको भेद न

खाने जीव अनाहक मारे। सूरत ते नर परें कुसं-
गति किसविध जाहिं उवारे॥२९॥ यथा अंयान
पणो बुरो. गातें होय अकाज। या ममतासों
फंसि रह्यो, याहि न आवे लाज॥ याहि न आ-
वे लाज बाज नहिं. कह तेरो यहां को है। तात
मात बांधव सुत कामिन तू इनके सुख मोहै॥
आठों जाम रहै इनहीमें. यह तुमको नहिं सोहै।
सूरत तजि अज्ञान सीखगह तब तुहि शिवसुख
होहै॥३०॥ रसीं रच्यो अनादिको, रत्ति विषइ-
नसों प्रीति। रस चाख्यो नहिं आतमी. लखी
न रसकी रीति॥ लखी न रसकी रीत मीत तैं
विषयनिसँग सुख माना। आतमीक रस है सु-
खदायक सो तैं नहीं पिछाना॥ जिनरसरीति
लखी आतमकी सो शिवपुरका राना। सूरत
यं भवि मुक्ति गये हैं जिनआतम हित ठा-
ना॥ ३१॥ लटा लिपट्यो ही रहै, लग्यो जग-
तके भेक। लख्यो न आप सरूपको लह्यो न
शुद्ध विवेक॥ लह्यो न शुद्ध विवेक एक तैं पर

आपा नहिं सूझा । वस्तु पराई लखी न भाई, तातैं रह्यो अरूझा ॥ वस्तु विनासी नहीं प्रकाशी तू कर्मनसँग जूझा । सूरत वे भव पार भये हैं, जिनको आतम सूझा ॥३२॥ वव्वा वह संगत बुरी, जासों होय कुभाव । सो संगति शैली भली, जासें सहज सुभाव ॥ जासें सहज सुभाव भाव है सो शैली मोहि प्यारी । तत्त्व दरवकी चर्चा तिनकैं. तजै कुचर्चा भारी ॥ भरम भावतैं दूर रहत हैं धर्म ध्यानकी त्यारी ॥ सूरत यह वांछा मन मेरे उन मित्रनसों यारी ॥३३॥ शश्शा सोई सुघर है सुनै सुगुरुकी सीख । सदा रहैं शुभध्यानमें सही जैनकी ठीक ॥ सही जैनकी ठीक तिन्होको अवर कछू नहि भावै । आगम अवर अध्यातम वार्ना, सुनै सुनावै गावै ॥ कुकथाचार विचार जगतमें, तिनको नाहिं सुहावै । सूरत सो सज्जन मो भावै. जो शिवपंथ बतावै ॥ ३४ ॥ खक्खा खुटक निवारिकैं, खिमाभाव चितलाय । खुलै कपाट अभ्यासके. खि

रै करम दुखदाय ॥ खिरै करम दुखदाय जाय वह. खिमाभाव चित ल्यावै। होय अभ्यास तास भविजनको, ज्ञानी ज्ञान जगावै ॥ सदा मगन है अपने मनमें. रीझ आप सुख पावै ॥ सूरत सोई भिन्न सबनतें, सो आतम हित लावै ।३५। सस्सा सो स्याना सदा. सुगुरु सीख सुन लेह। सदा रहै संतोषसों, सो साधू लखि लेह ॥ सो साधू लखि लेह गेहमें, जो संतोष विचारै। सीख बात है जो संसारी. तिनको नहीं निहारै ॥ सँकलप विकलप जगके जितने, तिन दुसमनको टारै। सूरत सो साधू जन ऐसा. शिवपुर वेग सिधारै ॥३६॥ हाहा हूहू कर रह्यो, है परवसि दुख पाय। क्यों न आप वश हूजिये, होय परम सुखदाय ॥ होय परम सुखदाय पाय पद अनरूपी अविनाशी। केवलज्ञान दर्श जहँ केवल, सिद्धपुरी सुखराशी ॥ आठों करम खिपावै तिनके आठों गुन परकासी। सूरत सिद्ध महासुख पावै. काल अनंता पासी ॥३७॥ लल्ला

परमपद, लखा गये निवान । लाक.रिखर ऊपर चढ. लियो सिद्ध शिवथान ॥ लियो सिद्ध शि-वथान आन लखि सोई सिद्ध कहाये । दर्शन ज्ञान चरन गुन तीनों. तिन शिवपुर पहुंचाये ॥ जो जो दरसे सो सो भासै आप अचल ठहराये। सूरत सिद्ध कहे ऐसे गुरु जिनपुरानमें गाये ।३८। क्षक्षा लक्ष्मी जो वरै, गुन लक्षणको वेव । लखै सुलक्षन परखिकै, तजे कुलक्षण टेव ॥ तजै कु-लच्छन टेव भेव लखि सिद्धरूपको ध्यावै। अर-हत सिध आचार्य उपाध्याय साधन सीस नवावै। जिनमत धर्म देव गुरु च्यारों, यह दिढता मन लावै । सूरत यह परतीत धरै मन, सो सम्यक-पद पावै ॥ ३९ ॥ सम्यकपदको जो लहै, करै वैनगुरु प्रीत। देव धरम गुरु ज्ञानको, परखि गहै निजरीत ॥ ४० ॥ बारखडी हितसों कही नहिं गुनियनकी रीस । दोहे तो चालीस हैं, छंद कहे छत्तीस ॥ ४१ ॥

तेरहवां अध्याय फुटकर संग्रह ।

१६५ । छहढाला ।

स्वर्गीय पं० दौलतरामजी कृत—सोरठा ।

तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमौं त्रियोग सम्हारिकें ॥

पहली ढाल । चौपाई (१५ मात्रा) ।

जे त्रिभुवनमें जीव अनंत । सुख चाहैं दुखतैं भयवंत ॥ तातैं दुखहारी सुखकारि । कहे सीख गुरु करुणा धारि ॥ २ ॥ ताहि सुनो भवि मन थिर आन । जो चाहो अपनो कल्यान ॥ मोह महामद पियो अनादि । भूलि आपको भरमत वादि ।३। तास भ्रमनकी है बहु कथा । पै कछु कहुं कही मुनि जथा ॥ काल अनंत निगोदमँझार । वीत्यो एकेंद्रिय-तन धार ॥ ४ ॥ एक स्वासमें अठदश बार । जन्म्यो मर्यो भर्यो दुखभार ॥ निकसि भूमि जल पावक भयो । पवन प्रतेक वनस्पति थयो ॥५॥ दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणी । त्यों परजाय लही त्रसतणी ॥ लट-

पिपीलि अलि आदि शरीर। धरधर मर्‍यो
बहु पीर ॥६॥ कबहूं पंचेंद्रिय पशु भयो। मन
बिन निपट अज्ञानी थयो ॥ सिंहादिक सैनी
क्रूर। निबल पशू हति खाये भूर ॥ ७ ॥
आप भयो बलहीन। सबलनिकरि खायो अ
तिदीन ॥ छेदन भेदन भूखपियास।
हिम आतप त्रास ।८। बध-बंधन आदिक
घने। कोटि जीभतैं जात न भने ॥ अतिसंक्ले
श भावतैं मर्‍यो। घोर श्वभ्रसागरमें पर्‍यो ।९
तहां भूमि परसत दुख इस्यो। बीछू सहस
तन तिस्यो ॥ तहां राधशोणितवाहिनी। कृमि
कुलकलित देह-दाहिनी ॥१०॥ समरतरुजुत द
लअसिपत्र। असि यों देह विदारैं तत्र ॥
समान लोह गलिजाय। ऐसी शीत उष्णता
॥ ११ ॥ तिलतिल करहिं देहके खंड।
भिडावैं दुष्टप्रचंड ॥ सिंधुनीरतैं प्यास न जाय
तौ पण एक न बूंद लहाय ॥१२॥ ती
नाज खाय। मिटे न भूख कणा न लहाय ॥

पै दुख बहु सागरलौं सहै। कर्मजोगतैं नरतन लहै ॥१३॥ जननी उदर बस्यो नवमास। अंग सकुचतैं पाई त्रास॥ निकसत जे दुख पाये घोर। तिनको कहत न आवै ओर ॥१४॥ बालपनेमें ज्ञान न लह्यो। तरुणसमय तरुणीरत रह्यो॥ अर्धमृतकसम बूढ़ापनो। कैसें रूप लखै आपनो ॥१५॥ कभी अकामनिर्जरा करै। भवनत्रिकमें सुरतन धरै॥ विषय-चाह-दावानल दह्यो। मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥ १६ ॥ जो विमान वासी हू थाय। सम्यकदर्शन विन दुख पाय॥ तहँतैं चय थावरतन धरै। यों परिवर्तन पूरे करै ॥ १७ ॥

दूसरी ढाल। पद्धरि छंद।

ऐसैं मिथ्या-दृगज्ञानचरण। वश भ्रमत भरत दुख जन्ममरण॥ तातैं इनको तजिये सुजान। सुन तिन संक्षेप कहूं बखान ॥ १ ॥ जीवादि प्रयोजनभूत तत्व। सरधै तिनमांहिं विपर्ययत्व॥ चेतनको है उपयोगरूप। विन मूरति चिनमू-

रति अनूप ॥ २ ॥ पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल
इनतें न्यारी है जीवचाल ॥ ताकों न जान वि-
परीत मान। करि करै देहमें निज पिछान ॥३॥
मैं सुखी दुखी मैं रंक राव। मेरो धन गृह गोधन
प्रभाव ॥ मेरे सुत तिय मैं सबल दीन। बे रूप
सुभग मूरख प्रवीन ॥४॥ तन उपजत अपनी
उपज जान। तन नशत आपको नाश मान ॥
रागादि प्रगट जे दुःखदैन। तिनहीको सेवत
गिनहि चैन ॥ ५ ॥ शुभअशुभबंधके फल-
मझार। रति अरति करै निजपद विसार ॥ आत-
महितहेतु विराग ज्ञान। ते लखै आपको कष्ट
दान ॥ ६ ॥ रोकी न चाह निज शक्ति खोय।
शिवरूप निराकुलता न जोय। याही प्रतीतजुत
कछुक ज्ञान। सो दुखदायक अज्ञान जान ॥७
इनजुत विषयनिमें जो प्रवृत्त। ताको जानो
मिथ्याचरित्त ॥ या मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह।
अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥ ८ ॥ जो कुगुरु
कुदेव कुधर्म सेव पोषैं चिर दर्शन मोह एव ॥

अंतररागादिक धरैं जेह। बाहरधन अंबरतै सनेह॥ ९॥ धारैं कुलिंग लहि महतभाव। ते कुगुरु जनम-जल उपल-नाव॥ जे रागरोषमल करि मलीन। वनितागदादिजुत चिन्हचीन॥ ॥ १०॥ ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव। शठ करत न तिन भवभ्रमनछेव॥ रागादिभाव हिंसा समेत। दर्वित त्रसथावर मरनखेत॥ ११॥ जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म। तिन सरधै जीव लहै अशर्म॥ याकौं गृहीतमिथ्यात जान। अब सुन गृहीत जो है कुज्ञान॥ १२॥ एकांतवाद दूषित समस्त। विषयादिकपोषक अप्रशस्त॥ कपिलादिरचित श्रुतको अभ्यास। सो है कुबोध बहु देन त्रास॥१३॥ जो ख्यातिलाभ पूजादि चाह। धरि करत विविधविध देहदाह। आतम अनात्मके ज्ञानहीन। जे जे करनी तनकरन-छीन॥ १४॥ ते सब मिथ्याचारित्र त्यागि। अब आतमके हित पंथ लागि॥ जगजालभ्रमन को देय त्यागि। अब दौलत' निज आतम

सुपागे ॥ १५ ॥

तीसरी ढाल। नरेंद्रछंद (जोगीरासा।)

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता विन कहिये। आकुलता शिवमांहिं न तातैं शिवमग लाग्यो चाहिये। सम्यकदर्शन ज्ञान चरन शिव,-मग सो दुविध विचारो। जोसत्या रथरूप सु निश्चय. कारन सो व्यवहारो ॥ १ ॥ परद्रव्यनितैं भिन्न आपमें रुचि, सम्यक्त भला है आप रूपको जानपनो, सो सम्यकज्ञानकला है॥ आपरूपमें लीन रहै थिर, सम्यकचारित सोई। अब व्यवहार मोख मग सुनिये, हेतु नियतको होई ॥ २ ॥ जीव अजीव तत्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो। निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यौंको त्यौं सरधानो ॥ है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो। तिनको सुनि सामान्यविशेषै, दृढ प्रतीत उर आनो ॥ ३ ॥ बहिरातम अंतरआतम परमातम जीव त्रिधा है। देह जीवको एक गिनै, बहिरातमतत्व मुधा

है ॥ उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके अंतरआतमज्ञानी । द्विविध संगविन शुभउपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥ ४ ॥ मध्यम अंतर आतम हैं जे देशव्रती आगारी । जघन कहे अविरतसमदृष्टी तीनों शिवमगचारी ॥ सकल निकल परमातम द्वैविध तिनमें घाति निवारी । श्री अरहंत सकल परमातम लोकालोकनिहारी ।५ ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल-वर्जित सिद्ध महंता । ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनंता ॥ बहिरातमता हेय जानि तजि, अंतरआतम हूजै । परमातमको ध्याय निरंतर, जो नित आनँद पूजै ॥ ६ ॥ चेतनता विन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं पुद्गल पंच वरन, रसपन गंध दु फरस वसु जाके हैं ॥ जिय पुदगलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी । तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विनमूर्ति निरूपी ॥७॥ सकल द्रव्य को वास जासमें, सो आकाश पिछानो । नियत वर्तना निशिदिन सो व्यवहारकाल परिमानो ।

थीं अजीव अब आस्रव सुनिये. मनवचकाय त्रियोगा। मिथ्या अविरत्त अरु कषायपरमादसहित उपयोगा ॥८॥ ये ही आतमके दुखकारन, तातैं इनको तजिये। जीवप्रदेश बँधै विधिसों सो, बंधन कबहुं न सजिये॥ शमदससों जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये। तपबलतैं विधिझरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥९॥ सकल करमतैं रहित अवस्था, सो शिव थिरसुखकारी। इहिविधि जो सरधा तत्वनकी, सो समकित व्योहारी॥ देव जिनेंद्र गुरू परिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो। यहू मान समकितको कारन अष्टअंगजुत धारो ॥१०॥ वसुमद टारि निवारि त्रिशठता, षट अनायतन त्यागो। शंकादिक वसु दोष विना, संवेगादिक[1] चित पागो। अष्टअंग अरु दोष पचीसों. अब संक्षेपहु कहिये। विन जानेतैं दोषगुननको, कैसे तजिये गहिये॥ ॥११॥ जिनवचमैं शंका न धारि वृष-भवसुखवांछा

१ प्रशम संवेग अनुकंपा आस्तिक्य।

मानै। मुनितन मलिन न देख घिनावै, तत्व
कुतत्व पिछानै। निजगुन अरु पर औगुन ढाँकै,
वा जिनधर्म बढ़ावै। कामादिककर वृषतैं चिग-
ते, निजपरको सु दिढ़ावै ॥१२॥ धर्मीसों गउ-
बच्छप्रीतिसम, कर जिनधर्म दिपावै। इन गुनतैं
विपरीतदोष वसु, तिनकों सतत खिपावै॥ पिता
भूप वा मातुल नृप जो, होय न तौ मद ठानै।
मद न रूपको मद न ज्ञानको, धन बलको मद
भानै ॥ १३ ॥ तपको मद न मद जु प्रभुताको,
करै न सो निज जानै। मद धारै तौ येहि दोष
वसु, समकितको मल ठानै॥ कुगुरुकुदेवकुवृष-
सेवककी नहिं, प्रशंस उचरै है। जिनमुनि जि-
नश्रुत विन कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करै है
॥१४॥ दोषरहित गुनसहित सुधी जे, सम्यक-
दरश सजै हैं। चरितमोहवश लेश न संजम, पै
सुरनाथ जजै हैं॥ गेही पै गृहमें न रचैं ज्यों,
जलमें भिन्न कमल है। नगरनारिको प्यार

---

१ धर्मसे। २ माला।

यथा, कादेमें हेम अमल है ॥ १५ ॥ प्रथम नरक विन षट भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी। थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत समकित-धारी ॥ तीनलोक तिहुँकालमाहिं नहिं, दर्शनसम सुखकारी। सकलधरमको मूल यही इस, विन करनी दुखकारी ॥ १६ ॥ मोहमहलकी परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा। सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ॥ 'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै। यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै ॥ १७ ॥

चौथी ढाल। दोहा—

सम्यकश्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान।
स्वपरअर्थ वहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान ॥१॥

रोला छंद २४ मात्रा।

सम्यकसाथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधो। लक्षण श्रद्धा जान, दुहूमें भेद अबाधो ॥ सम्यककारण

१ नपुंसक।

ञान, ज्ञान कारन है सोई। युगपद होतैं हू,
प्रकाश दीपकतैं होई ॥ १ ॥ तास भेद दो हैं प-
रोक्ष, परतछ तिनमाहीं। मति श्रुत दोय परोक्ष,
अक्ष मनतैं उपजाहीं ॥ अवधिज्ञानमनपर्जय, दो
हैं देशप्रतच्छा। द्रव्यक्षेत्रपरिमान लिये जानैं
जिय स्वच्छा ॥ ३ ॥ सकल द्रव्यके गुन अनंत,
परजाय अनंता। जानैं एकै काल, प्रगट केवलि
भगवंता ॥ ज्ञान समान न आन, जगतमें सुख-
को कारन। इह परमामृत जन्म, जरामृतरोग-
निवारन ॥४॥ कोटि जनम तप तपैं, ज्ञान विन
कर्म झरैं जे। ज्ञानीके छिनमांहिं त्रिगुप्तितैं सहज टरैं
ते ॥ मुनिव्रत धार अनंतवार, ग्रीवक उपजायो।
पै निजआतमज्ञान विना सुख लेश न पायो ।५।
तातैं जिनवरकथित, तत्त्व अभ्यास करीजे।
संशय विभ्रम मोह, त्याग आपो लखि लीजे ॥
यह मानुषपरजाय, सुकुल सुनिवो जिनवानी।
इहविधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधिसमानी
॥ ६ ॥ धन समाज गज बाज राज, तो काज

न आवे। ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावे॥ तास ज्ञानको कारन, स्वपरविवेक बखान्यो। कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आन्यो ॥७॥ जे पूरब शिव गये, जांय अब आगें जे हैं। सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहे हैं॥ विषयचाह-दव-दाह, जगतजन अरनि दझावे। तासु उपाय न आन ज्ञानघनघान बुझावे॥८॥ पुण्यपाप-फल मांहिं, हरष विलखौ मत भाई। यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसैं थिर थाई॥ लाख बातकी बात, यहै निश्चय उर लावो॥ तोरि सकल जगदंदफंद, निज आतम ध्यावो॥ ॥९॥ सम्यक्ज्ञानी होइ, बहुरि दृढ चारित लीजे। एक देश अरु सकलदेश, तस भेद कहीजे॥ त्रसहिंसाको त्याग वृथा, थावर न सँघारै। परवधकार कठोर निंद्य नहिं वयन उचारै॥१०॥ जल मृतिकाविन और नाहिं कछु गहै अदत्ता। निज वनिताविन सकल, नारिसौं रहै विरत्ता॥ अपनी शक्ति विचार परिग्रह थोरो राखै। दश

दिशि गमनप्रमान, ठान तसु सीम न नाखै ॥
॥११॥ ताँहूमें फिर ग्राम गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान ठान अन सकल निवारा॥
काहूके धनहानि, किसी जय हार न चीतैं। देय
न सो उपदेश, होय अघ बनिज कृषीतैं॥१२॥
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै॥
रागरोषकरतारकथा, कबहूं न सुनीजै। और हु
अनरथदंड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजै ॥ १३ ॥
धर उर समताभाव सदा, सामायिक करिये।
पर्वचतुष्टयमाहिं पाप तजि प्रोषध धरिये॥ भोग
और उपभोग नियमकरि ममतु निवारै। मुनि-
को भोजन देय फेर, निज करहि अहारै॥१४॥
बारहव्रतके अतीचार, पन पन न लगावै। मरन
समय सन्यास धारि, तसु दोष नशावै॥
यौं श्रावकव्रत पाल स्वर्ग, सोलम उपजावै।
तहँतैं चय नरजन्म पाय मुनि ह्वै शिव
जावै ॥ १५ ॥

मुनि सकलवृती वडभागी । भवभोगनतैं वैरा-
गी ॥ वैराग्य उपावन माई । चिंतो अनुप्रेक्षा
भाई ॥ १ ॥ इन चिंतत समरस जागै । जिमि
ज्वलन पवनके लागै ॥ जवही जिय आतम
जानै । तवही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥ जोवन
गृह गोधन नारी ॥ हय गय जन आज्ञाकारी ॥
इंद्रीय भोग छिन थाई । सुरधनु चपला चपलाई
॥३॥ सुर असुर खगाधिप जेते । मृग ज्यों हरि
काल दले ते ॥ मणि मंत्र तंत्र वहु होई । मरते
नवचावे कोई ॥ ४ ॥ चहुंगतिदुख जीव भरै
हैं । परिवर्तन पंच करै हैं ॥ सवविधि संसार
असारा । यामैं सुख नाहिं लगारा ॥ ५ ॥ शुभ
अशुभ करमफल जेते । भोगै जिय एकहि तेते ॥
सुत दारा होय न सीरी । सव स्वारथके हैं भीरी
॥ ६ ॥ जलपय ज्यौं जियतन मेला । पै भिन्न
भिन्न नहिं भेला ॥ तो प्रगट जुदे धन धामा ।
क्यों है इक मिलि सुत रामा ॥७॥ पळ-रुधिर

राध-मल-थैली। कीकस वसादितैं मैली॥ नव द्वार बहै घिनकारी। अस देह करै किम यारी ॥८॥ जो जोगनकी चपलाई। तातैं ह्वै आस्रव भाई॥ आस्रव दुखकार घनेरे। बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे॥ ९॥ जिन पुण्यपाप नहिं कीना। आतम अनुभव चितदीना॥ तिन ही विधि आवत रोके। संवर लहि सुख अवलोके।१०। निज काल पाय विधि झरना। तासौं निजकाज न सरना॥ तप करि जो कर्म खपावै। सोई शिवसुख दरसावै॥ ११॥ किन हू न कर्‍यो न धरै को। षटद्रव्यमयी न हरै को॥ सो लोकमाहिं बिन समता। दुख सहै जीव नित भ्रमता।१२। अंतिम ग्रीवकलौंकी हद। पायो अनंतबिरियां पद॥ पर सम्यकज्ञान न लाध्यो। दुर्लभ निजमैं मुनि साध्यो॥ १३॥ जे भाव मोहतैं न्यारे। दृग ज्ञान व्रतादिक सारे॥ सो धर्म जबै जिय धारै। तबही सुख सकल निहारै॥ १४॥ सो धर्म मुनिनकरि धरिये। तिनकी करतूति उच-

रिये ॥ ताको सुनिकै भवि प्रानी। अपनी अनु- भूति पिछानी ॥ १५ ॥

छट्ठीढाल (हरिगीता छंद)

षटकाय जीव न हननतैं सवविधि दरवहिंसा टरी। रागादि भाव निवारितें हिंसा न भावित अवतरी ॥ जिनके न लेश मृषा न जलतृन हू विना दीयो गहैं। अठदशसहस विधि शीलधर चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं ॥१॥ अंतर चतुर्दश भेद वाहिर संग दशधातैं टलैं। परमाद तजि चउकर मही लखि समिति ईर्यातैं चलैं ॥ जग सुहितकर सव अहितहर श्रुतिसुखद सव संशय हरैं। भ्रमरोग-हर जिनके वचन मुख- चद्रतैं अमृत झरैं ॥ २ ॥ छ्यालीस दोष विना सुकुल श्रावकतणे घर अशनको। लैं तप बढा- वन हेत नहिं तन पोषते तजि रसनको ॥ शुचि ज्ञान संजम उपकरन लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं। निर्जंतु थान विलोकि तन-मल मूत्र-श्लेषम परि- हरैं ॥३॥ सम्यक प्रकार निरोधि मन-वच-काय

आतम ध्यावते। तिन सुथिर मुद्रा देखि मृग-
गन उपल खाज खुजावते॥ रसरूपगंध तथा
फरस अरु शब्द शुभ असुहावने। तिनमें न
राग विरोध पंचेंद्रियजयन पद पावने॥ ४॥
समता सम्हारें थुति उचारें बंदना जिनदेवको।
नित करें श्रुतरति धरें प्रतिक्रम तजें तन अह-
मेवको॥ जिनके न न्होन न दंतधोवन लेश
अंबर आवरन। भूमाँहिं पिछली रयनिमें कछु
सयन एकाशन करन॥५॥ इक बार दिनमें
लें अहार खडे अलप निज पानमें। कचलोंच
करत न डरत परिषहसों लगे निज ध्यानमें।
अरिमित्र महल मसान कंचन काच निंदन थुति
करन। अर्घावतारन असिप्रहारन,-में सदा स-
मताधरन॥ ६॥ तप तपें द्वादश धरें वृष दश
रत्नत्रय सेवें सदा। मुनिसाथमें वा एक विचरें
चहें नहिं भवसुख कदा॥ यों है सकल संजम
चरित सुनिये स्वरूपाचरन अब। जिस होत
प्रगटे आपनी निधि मिटे परकी प्रवृति सब

भविलोकको शिवमग कह्यो ॥११॥ पुनि घाति शेष अघाति विधि छिनमांहिं अष्टमभू बसैं। वसुकर्म विनशै सुगुन वसु सम्यक्त्व आदिक सब लसैं॥ संसार खार अपार पारावार तिर तीरहिं गये। अविकार अकल अरूप शुध चिद्रूप अविनाशी भये॥१२॥ निजमांहि लोक अलोक गुन परजाय प्रतिबिंबित थये। रहि हैं अनंतानंतकाल यथा तथा शिव परनये॥ धनि धन्य हैं जे जीव नरभव पाय यह कारज किया। तिनही अनादी भ्रमन पंचप्रकार तजि वर सुख लिया॥ १३॥ मुख्योपचार दुभेद यों बडभागि रत्नत्रय धरैं। अरु धरैंगे ते शिव लहैं तिन सुजस जल जगमल हरैं॥ इमि जानि आलस हानि साहस ठानि यह सिख आदरो। जबलों न रोग जरा गहै तबलों जगत निज हितकरो॥१४॥ यह राग आग दहै सदा तातैं समामृत सेइये। चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निजपद बेइये॥ कहा रच्यो परपदमें न तेरो पद यहै

स्यों दुख सहै। अब 'दौल' होउ सुखी स्वपद रचि दाव मत चूको यहै॥ १५॥

दोहा—इक नव वसु इक वर्षकी, तीज शुकल वैशाख। कऱ्यो तत्व उपदेश यह, लखि बुधजन-की भाख॥ १६॥ लघुधी तथा प्रमादतें, शब्द अर्थकी भूल। सुधी सुधार पढो सदा, जो पावो भवकूल॥ १७॥

इति श्री प० दौलतरामजीकृत छहढाला समाप्त।

१६६ अथ बाईस परीषह।

छप्पय।

क्षुधा[१] तृषा[२] हिम[३] उश्न[४] डंसमंसक[५] दुख भारी।
निरावरण[६] तन अरति[७] वेद उपजावन नारी[८]॥
चरया[९] आसन[१०] शयन[११] दुष्ट वायक[१२] वध बन्धन[१३]।
याचें नहीं[१४] अलाभ[१५] रोग[१६] तृण[१७] परस होय तन॥
मल[१८] जनित मान सनमान[१९] वश प्रज्ञा[२०] और अज्ञान[२१] कर। दरशन[२२] मलीन बाईस सब साधु परीषह जान नर॥ १॥

दोहा।

सूत्र पाठ अनुसार ये कहे परीषह नाम। इन-

के दुख जो मुनि सहैं तिनप्रति सदा प्रणाम ।२।

(१) क्षुधापरीषह पोमावती छंद।

अनसन ऊनोदर तप पोषत पक्षमास दिन बीत गये हैं। जो नहिं बने योग्य भिक्षा विधि सूख अंग सब शिथिल भये हैं। तब तहां दुस्सह भूखकी वेदन सहत साधु नाहिं नेक नये हैं। तिनके चरणकमल प्रति प्रतिदिन हाथ जोड हम शीश नये हैं ॥ ३ ॥

(२) तृषापरीषह

पराधीन मुनिवरकी भिक्षा परघर लेंय कहैं कुछ नाहीं। प्रकृति विरुद्ध पारणा भुंजत बढत प्यासकी त्रास तहांहीं ॥ ग्रीषमकाल पित्त अतिकोपै लोचन दोय फिरे जब जाहीं। नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि जयवन्ते वर्तो जगमाहीं।४।

(३) शीतपरीषह

शीतकाल सबही जन कम्पत खडे तहां वन वृक्ष डहे हैं। झंझा वायु चलै वर्षाऋतु वर्षत बादल झूम रहे हैं। तहां धीर तटनी तट चौपट

डाल पाल परकर्म दहे हैं। सहैं सँभाल शीतकी बाधा ते मुनि तारण तरण कहे हैं॥ ५॥

(४) उष्णपरीषह

भूखप्यास पीडै उरअंतर प्रजुलै आंत देह सब दागै। अग्नि सरूप धूप ग्रीषमकी ताती वायु झालसी लागै। तपैं पहाड़ ताप तन उपजाति कोपै पित्त दाह ज्वर जागै। इत्यादिक गर्मीकी बाधा सहैं साधु धीरज नहिं त्यागैं॥ ६॥

(५) डन्समशक परीषह

डन्स मश्क माखी तनु काटैं पीडैं बन पक्षी बहुतेरे। डसैं व्याल विषहारे विच्छू लगैं खजूरे आन घनेरे॥ सिंह स्याल सुंडाल सतावैं रीछ रोझ दुख देहिं घनेरे। ऐसे कष्ट सहैं समभावन ते मुनिराज हरो अघ मेरे॥ ७॥

(६) नग्न परीषह

अन्तर विषय वासना बरतै बाहरलोक लाज भय भारी। यातैं परम दिगम्बर मुद्रा धर नहिं सकैं दीनसंसारी॥ ऐसी दुर्द्धर नगन परीषह

जीतैं साधु शीलव्रतधारी। निर्विकार बालक-
वत निर्भय तिनके चरणों धोक हमारी ॥ ८ ॥

(७) अरति परीषह

देशकालका कारण लहिकै होत अचैन
अनेक प्रकारैं। तब तहां छिन्न होत जग वासी
कलमलाय थिरतापद छाडैं ॥ ऐसी अरति प-
रीषह उपजत तहां धीर धीरज उर धारैं। ऐसे
साधुनको उर अंतर बासो निरन्तर नाम
हमारे ॥ ९ ॥

(८) स्त्री परीषह

जो प्रधान केहरिको पकडैं पन्नग पकड पान-
से चाबैं जिनकी तनक देख भौं बांकी कोटिन
सूर दीनता जापैं। ऐसे पुरुष पहाड़ उड़ावन
प्रलय पवन त्रिय वेदपयापैं। धन्य २ वे सूर
साहसी मन सुमेर जिनका नाहिं कांपै ॥१०॥

(९) चर्य्या परीषह

चार हाथ परवान परख पथ चलत दृष्टि इत
उत नाहिं तानैं। कोमल चरण कठिन धरतीपर
धरत धीर बाधा नाहिं मानैं। नाग तुरंग पालकी

पड़तें ते सर्वादियादि नाहिं आनैं। यों मुनिराज
सहैं चर्य्या दुख तब दृढ़कर्म कुलाचल भानें ।११।

(१०) आसन परीषह

गुफा मसान शैल तरु कोटर निवसैं जहां शुद्ध भूँ हेरैं। परमितकाल रहैं निश्चल तन बार बार आसन नहिं फेरैं। मानुषदेव अचेतन पशुकृत बैठे विपति आन जब घेरैं। ठौर न तजैं भजैं थिरतापद ते गुरु सदा बसो उर मेरे ।१२।

(११) शयन परीषह

जो प्रधान सोनेके महलन सुन्दर सेज सोय सुख जोवैं, ते अब अचल अंग एकासन कोमल कठिन भूमिपर सोवैं ॥ पाहनखंड कठोर कांकरी गड़त कोर कायर नहिं होवैं। ऐसी शयन परीषह जीतैं ते मुनि कर्मकालिमा धोवैं ॥

(१२) आक्रोश परीषह

जगतं जीव जावन्त चराचर सबके हित सबको सुखदानी। तिन्हें देख दुर्वचन कहैं खल पाखंडी ठग यह अभिमानी। मारो याहि पकड़

पापीको तपसी भेष चोर है छानी। ऐसे वचन बाणकी वेला क्षमा ढाल ओढ़ैं मुनि ज्ञानी।१४।

(१३) वध बंधन परीषह

निरपराध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मारैं। कोई खैंच खंभसे बांधे कोई पावकमें परजारैं। तहां कोप करते न कदाचित पूरव कर्म विपाक विचारैं। समरथ होय सहै बध बंधन ते गुरु भव भव शरण हमारै॥

(१४) याचना परीषह

घोर वीर तप करत तपोधन भयेक्षीण सूखी गल बाँहीं। आस्थि चाम अवशेष रहो तन नसाँजाल झलकैं तिसमाहीं॥ औषधि असन पान इत्यादिक प्राण जाउ पर जांचत नाहीं। दुर्द्धर अयाचीक व्रत धारैं करैं न मालिन धरम परछाहीं॥ १६॥

(१५) अलाभ परीषह

एकबार भोजनकी बेला मौनसाध बस्तीमें आवैं। जो न बनै योग्य भिक्षा विधि तो मह-

न्त मन खेद न लावैं ॥ ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीतैं तब तपवृद्धि भावना भावैं। यों अलाभ की परम परीषह सहैं साधु सो ही शिव पावैं॥

(१६) रोग परीषह

वात पित्त कफ श्रोणित चारों ये जब घटैं बढ़ैं तनु माहीं, रोग संयोग शोक जब उपजत जगत जीव कायर होजाहीं ॥ ऐसी व्याधि वेदना दारुण सहैं सूर उपचार न चाहीं। आतमलीन विरक्त देहसों जैनयती निज नेम निवाहीं ॥ १८ ॥

(१७) तृणस्पर्श परीषह

सूखेतृण अरु तीक्षणकांटे कठिन कांकरीपांय विदारैं। रज उड़ आनपड़े लोचनमैं तीर फांस तनु पीर विथारैं ॥ तापर पर सहाय नहिं वांछत अपने करसैं काढ न डारैं। यों तृण परस परीषह विजयी ते गुरु भव २ शरण हमारैं ॥ १९ ॥

(१८) मल परीषह

यावज्जीव जल न्हौन तजो जिन नग्नरूप

धन थान खड़े हैं। चलै पसेव धूपकी बेला उड़-
तधूल सब अंग भरे हैं। मलिन देहको देख महा-
मुनि मलिनभाव उर नाहिं करें हैं। यों मल
जनित परीषह जीतें तिनाहिं हाथ हम सीस
धरे हैं॥ २०॥

(१९) सत्कार पुरस्कार परीषह

जो महान विद्यानिधि विजयी चिर तपसी-
गुण अतुल भरे हैं, तिनकी विनय वचनसे अ-
थवा उठ प्रणाम जन नाहिं करैं हैं। तो मुनि
तहां खेद नाहिं मानत उर मलीनता भाव हरे
हैं। ऐसे परम साधुके अहनिशि हाथ जोड हम
पांय परे हैं॥ २१॥

(२०) प्रज्ञा परीषह

तर्क छंद व्याकरण कलानिधि आगम अलं-
कार पढ जानैं। जाकी सुमति देख परवादी वि-
लखत होंय लाज उर आनैं॥ जैसे सुनत नाद
केहरिका बनगयंद भाजत भय मानैं। ऐसी म-
हाबुद्धिके भाजन पर मुनीश मद रंच न ठानैं॥२॥

(२१) अज्ञान परीषह

सावधान वर्तें निशिवासर संयमशूर परम वैरागी। पालत गुप्ति गये दीरघदिन सकल संग ममता परत्यागी ॥ अवधिज्ञान अथवा मन पर्य्यय केवलि ऋद्धि न अजहूं जागी। यों विकल्प नहिं करैं तपोनिधि सो अज्ञान विजयी वडभागी ॥ २३ ॥

(२२) अदर्शन परीषह

मैं चिरकाल घोर तपकीना अजों ऋद्धि अतिशय नहि जागै। तपवल सिद्ध होत सव सुनियत सो कुछ वात झूठसी लागै। यों कदापि चितमे नहि चिंतत समकित शुद्ध शांति रस पागैं। सोई साधु अदर्शन विजई ताके दर्शन से अघ भागै ॥ २४ ॥

किस किस कर्मके उदय कौन कौन परीषह होती हैं।

घनाक्षरी छन्द ।

ज्ञानावरणीतैं दोइ प्रज्ञा अज्ञान होइ एक महा मोहतें अदर्शन वखानिये। अन्तराय कर्म सेती उपजै अलाभ दुख सप्त चारित्र मोहनी केवल

जानिये ॥ नगन निषध्या नारि मान सन्मानगारि याँचना अरति सब ग्यारह ठीक ठानिये। एकादश बाकी रहीं वेदना उदयसे कहीं बाईस परीषह उदय ऐसे उर आनिये ॥२५॥

अडिल्ल छंद।

एकबार इनमाहिं एकमुनिके कही, सब उनीस उत्कृष्ट उदय आवैं सही ॥ आसन शयन विहाय दोय इन माहिंकी। शीत उष्णमें एक तीन ये नाहिंकी ॥२६॥

॥ इति बाईसपरीषह समाप्त ॥

१६७ समाधिमरण भाषा।

पं० सूरजचन्दजी रचित। नरेन्द्र छंद

वंदों श्रीअरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई। इस जगमें दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई॥ अब मैं अरज करूं प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माहीं। अंतसमयमें यह वर मांगूं, सो दीजे जगराई ॥१॥ भवभवमें तनधार नये मैं, भव भव शुभ संग पायो। भव भवमें नृपरिद्धि लई मैं,

भ्रात पिता सुत थायो ॥ भव भवमैं तन पुरुष
तनों धर, नारी हू तन लीनों। भवभवमैं मैं भयो
नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनों ॥ २ ॥ भवभव
मैं सुरपदवीपाई, ताके सुख अति भोगे। भवभव
मैं गति नरकतनी धर, दुख पाये विधि योगे॥
भव भवमैं तिर्यंच योनिधर, पायो दुख अति
भारी। भवभवमैं साधर्मीजनको, संग मिल्यो
हितकारी ॥ ३ ॥ भवभवमैं जिनपूजन कीनी,
दान सुपात्रहिं दीनो। भवभवमैं मैं समवसरणमैं,
देख्यो जिनगुण भीनो ॥ एती वस्तु मिली भव
भवमैं सम्यकगुण नहिं पायो। ना समाधियुत
मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥४॥ काल
अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो
एकबार हूं सम्यक्युत मैं, निज आतम नहिं
चीनो ॥ जो निजपरको ज्ञान होय तो, मरण
समय दुख काँई। देह विनासी मैं निजभासी,
जोतिस्वरूप सदाई ॥ ५ ॥ विषयकषायनके
वश होकर देह आपनो जान्यो। कर मिथ्यासर

भान हियेविच, आतम नाहिं पिछान्यो ॥ यों कलेश हियधार मरणकर, चारों गति भरमायो। सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदेमें नाहिं लायो ॥ ६ ॥ अब या अरज करूं प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगों। रोगजनित पीडा मत होवो, अरु कषाय मत जागो ॥ ये मुझ मरणसमय दुखदाता, इन हर साता कीजै। जो समाधि-युतमरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजै ।७। यह तन सात कुधातमई है, देखतही घिन आवै। चर्मलपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै ॥ अतिदुर्गंध अपावनसों यह, मूरख प्रीति बढावै। देह विनासी, जियअविनासी नित्यस्वरूप कहावै ॥ ८ ॥ यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजै। नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामैं क्या छीजै ॥ मृत्युहोनसे हानि कौन है, याको भय मत लावो। समतासे जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ॥९॥ मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इसअवसरके माहीं। जीरनतनसे देत

नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥ या मेती इस मृत्युसमयपर, उत्सव अति ही कीजै। क्लेशभावको त्याग सयाने समताभाव धरीजै ॥१०॥ जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई। मृत्युमित्र विन कौन दिखावै, स्वर्गसंपदा भाई॥ रागरोषको छोड सयाने, सात व्यसन दुखदाई। अंतसमयमें समता धारो, परभवपंथसहाई।११। कर्म महादुठ वैरी मेरो, तासेती दुख पावै। तन पिंजरमें बंध कियो मोहि, यासों कौन छुडावै॥ भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तनमें गाढे। मृत्युराज अब आय दयाकर, तनपिंजरसों काढै ॥१२॥ नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तनको पहराये। गंधसुगंधित अतर लगाये, षटरस असन कराये॥ रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी। सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ॥ १३ ॥ मृत्युरायको शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊं। जामें सम्यकरतन तीन लहि आठों कर्म खपाऊं ॥ देखो तन

सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं। मृत्यु समयमें ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥१४॥ यह सब मोह बढावनहारे, जियको दुर्गति दाता। इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता॥ मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मांगों इच्छा जेती। समता धरकर मृत्यु करो तो पावो संपति तेती ॥१५॥ चौआराधन सहित प्राण तजतौ ये पदवी पावो। हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर स्वर्गमुकतिमें जावो॥ मृत्युकल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझारै। ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥ १६ ॥ इस तनमें क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन होहै। तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है। पांचों इंद्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवे। तापर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावै ॥ १७ ॥ मृत्युराज उपकारी जियको, तनसों तोहि छुडावे। नातर या तनबंदीगृहमें, परयो परयो बिललावे। पुदग-

छके परमाणू मिलकैं, पिंडरूप तन भासी। याही
मूरत में अमूरती, ज्ञानजोति गुणखासी ॥१८॥
रोगशोक आदिक जो वेदन, ते सब पुदगल-
लारैं। मैं तो चेतन व्याधि विना नित, हैं सो
भाव हमारे ॥ या तनसों इस छेत्र संबंधी. कार-
ण आन बन्यो है। खानपान दे याको पोष्यो,
अब सम भाव ठन्यो है ॥ १९ ॥ मिथ्यादर्शन
आत्मज्ञान विन, यह तन अपनो जान्यो। इंद्री-
भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो ॥
तन विनशनतैं नाश जानि निज, यह अयान
दुखदाई। कुटुम आदिको अपनो जान्यो, भूल
अनादी छाई ॥२०॥ अब निज भेद जथारथ
समझ्यो, मैं हूं ज्योतिस्वरूपी। उपजै विनसै सो
यह पुदगल, जान्यो याको रूपी ॥ इष्टऽनिष्ट जेते
सुख दुख हैं, सो सब पुदगल सागै। मैं जब
अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागैं
॥ २१ ॥ विन समता तनऽनंत धरे मैं, तिनमें
ये दुख पायो। शस्त्रघाततैंऽनन्त बार मर,

नाना योनि भ्रमायो ॥ बार अनंतहि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो। सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥२२॥ विन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई। मृत्युराजको भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई ॥ यातैं जब लग मृत्यु न आवे, तबलग जपतप कीजे। जपतपविन इस जगके माहीं, कोई भी ना सीजै ॥ २३ ॥ स्वर्गसंपदा तपसों पावे, तपसों कर्म नसावे। तपही सों शिवकामिनिपति है, यासों तप चित लावें ॥ अब मैं जानी समता विन मुझ कोऊ नाहिं सहाई। मात पिता सुत बांधव तिरिया ये सब हैं दुखदाई ॥ २४ ॥ मृत्यु समयमें मोह करें ये तातैं आरत हो है। आरततैं गति नीची पावे, यों लख मोह तज्यो है॥ और परिग्रह जेते जग में तिनसों प्रीत न कीजे। परभवमें ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजे ॥२५॥ जे जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो। परगति

मैं ये साथ न चालै, ऐसो भाव विचारो ॥ जो परभवमें संग चलै तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजे। पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे ॥ २६ ॥ दशलक्षणमयधर्म धरो उर, अनुकंपा उर लावो। षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो ॥ चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रातको त्यागो। समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो ॥ २७ ॥ अंत समयमें यह शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई। स्वर्गमोक्षफल तोहि दिखावें, ऋद्धि देहिं अधिकाई। खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमें समता लाकें। जासेती गतिचार दूरकर, बसहु मोक्षपुर जाकें ॥२८॥ मनथिरता करकै तुम चिंतो, चौ आराधन भाई। येही तोकों सुखकी दाता, और हितू कोउ नाहीं॥ आगें बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी। बहु उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उरधारी ॥२९॥ तिनमें कछुइक नाम कहूं मैं, सो सुन जिय चित लाकै। भावसहित अनु-

बांदि तासों, दुर्गति होय न ताके ॥ अरु सपना
निज उरमें आवै, भाव अधीरज जावै । यों नि-
शदिन जो उन मुनिवरको, ध्यान हिये विच
लावे ॥ ३० ॥ धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि,
कैसें धीरज धारी । एक श्यालनी जुगवच्चाजुत
पांव भख्यो दुखकारी ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर
थिरता, आराधन चितधारी । तो तुमरे जिय
कोन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥ ३१ ॥
धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी. व्याघ्रीने तन
खायो । तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं. आतम
सों हित लायो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता,
आराधन चितधारी । तो तुमरे० ॥३२॥ देखो
गजमुनिके शिर ऊपर. विप्र अगिनि बहु वारी ।
शीश जलै जिम लकडी तिनको. तौ भी नाहिं
चिगारी ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता. आरा-
धन चितधारी । तो तुमरे० ॥ ३३ ॥ सनतकु-
मार मुनीके तनमें, कुष्ट वेदना व्यापी । छिन्न
भिन्न तन तासों हूवो, तब चिंत्यो गुण आपी ॥

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित· धारी। तौ तुमरे० ॥३४॥ श्रेणिकसुत गंगा· में डूब्यो. तब जिननाम चितारयो। धर सले· खना परिग्रह छोड्यो. शुद्ध भाव उर धारयो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे० ॥३५॥ समतभद्रमुनिवरके तनमें. छुधावेदना आई। तौ दुखमें मुनि नेक न डिगियो. चिंत्यौ निजगुण भाई। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता. आराधन चितधारी तौ तु· मरे० ॥३६॥ ललितघटादिक तीस दोय मुनि. कौशांबीतट जानो। नदीमें मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥३७॥ धर्मघोष मुनि चंपानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो। एक मासकी कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढो॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आ· राधन चितधारी। तौ तुमरे०॥३८॥ श्रीदतमु· निको पूर्वजन्मको, वैरी देव सु आके। विक्रिय

कर दुख शनितनो सो, नागो नाथ मन लाके ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित-धारी। तौ तुमरे० ॥ ३९ ॥ वृषभसेन मुनि उ-ष्णशिलापर, ध्यान धन्यो मनलाई। सूर्यधाम अरु उष्ण पवनकी, वेदन सहि अधिकाई॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥४०॥ अभयघोषमुनि काकंदीपुर, महावेदना पाई। वैरी चंडने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे०।४१। विद्युत-चरने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी। शुभभावनसों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आ-राधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥ ४२ ॥ पुत्रचि-लाती नामा मुनिको, बैरीने तन घाता। मोटे मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण राता॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चितधारी। तौ तुमरे०।४३। दंडकनामा मुनिकी देही, बाणन

कर अरि भेदी। तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ।४४। अभिनंदन मुनि आदि पांचसौ, घानी पेलि जु मारे। तौ भी श्रीमुनि समताधारी, पूरबकर्म विचारे ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥ ४५ ॥ चाणकमुनि गौघरके माहीं, मूंद अगिनि परजाल्यो। श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हाल्यो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ॥४६॥ सातशतक मुनिवर दुख पायो, हथनापुरमैं जानो। बलिब्राह्मणकृत घोरउपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥ यह उपसर्ग सह्या धर थिरता आराधन चितधारी। तौ तुमरे० ।४७। लोहमयी आभूषण गढके, ताते कर पहराये। पांचों पांडव मुनिके तनमैं, तौ भी नाहिं चिगाये ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता,

धारी। तौ तुमरे० ॥ ४८ ॥ और

सब दुविधा. आतमराम सुध्यावो। जब परग-
तिको करहु पयानो. परम तत्त्व उर लावो॥ मोह
जालको काट पियारे. अपनो रूप विचारो। मृत्यु-
मित्र उपकारी तेरो. यों उर निश्चय धारो॥५३॥
दोहा—मृत्युमहोत्सव पाठको. पढो सुनो बुधि-
वान। सरधा धर नित सुख लहो. सूरचंद शि-
वथान॥ ५४॥ पंच उभय नव एक नभ. संवत
सो सुखदाय। आश्विन श्यामा सप्तमी. कह्यो
पाठ मन लाय॥ ५५॥

इति श्रीसमाधिमरण पाठ भाषा समाप्त॥

१६८ बारहमासा नेमिराजुलका।

विनवै उग्रसेनकी लाडली करजोर नेमिजीके
आगें खरी। तुम काहे पिया गिरनार चढे. हम-
सेती कहो कहा चूक परी॥ यह समय नहीं पिय
संजमको. तुम काहेको ऐसी चित्त धरी। कैसे
बारहमास बितावोगे तुम. समझावो मुहिको
डगरी॥ १॥

तुम आगें अषाढमें क्यों न लियो व्रत. काहे

को एती बरात बुलाई । अरु छप्पनकोड जुरे यदुवंशी, ज्यादन आगे निशान बजाई ॥ संग समुद्रविजय बलभद्र मुरारिसौं तुरत ब्याह न आई । नेमिपिया उठ आये घरै इन बातनमें कौन बड़ाई ॥ २ ॥ [illegible] कारिये सुन राजुल, जीवन है जिनको सुपनो । सुत बंधु वधू सब जात नहीं, अन्तहू ऐसे तन है अपनो ॥ दिन चारके महमान सबै, तिनमा न कछू सब है अपनो । तिहँने दृढ जान अनित्य सबै, हमें अब सिद्धनको जपनो ॥ ३ ॥

पिया सावनमें व्रत लीजे नहीं, घनघोर घटा जुर आवेगी । चहुँ ओरनैं मोर जु शोर करैं, वन कोकिल कूहक सुनावेगी ॥ पिय रैन अंधेरी में सूझै नहीं, कछु दामिन दमक डरावेगी । पुरवाईकी झोंक सहोगे नहीं, छिनमें तपतेज छुड़ावेगी ॥ ४ ॥ या जियको कोउ न रक्षनहार, को किसकी शरणागत जैय । कालबली सब सों जगमें तिहसौं, निशाचारन देख डरैय ॥ [illegible]

नरेंद्र धनेंद्र सबे जम. आन परे तब बांध चलैये। यातैं कहा डर सावनको सुन. राजुल चित्तको यों समझैये ॥ ५ ॥
पिय भादवकी वरषा बरषै. कैसें दिन रैन गमाओगे । चहुँओरतैं पौन झकोर करै. तब क्योंकर बुँदैं बचाओगे ॥ घर ही क्यों न आयकै जोग धरो. बनमें बहु दुःख उठावोगे । कहै राजमती पिय मान कही. शिवसुंदर यों नहिं पावोगे ॥ ६। या जगमें सुख नेकु न राजुल. दुःखमें काल अनंत गँवायो । योनिहिं लाख चुरासी फिर्‌यो. गति चारूंही जाय महादुख पायो ॥ रोगादि शोक वियोग भरे फिर. जामन मरण अनेक सतायो । भादवकी वरषा किस गिनतीमें. नरक निगोदनमें फिर आयो ॥ ७ ॥
पिय लागैगो मास असोज जबै तब. शीतल बूंद सुहावैगी । कितहूं गरजै कितहूं बरषै. कितहूं दुतिचंद दिखावैगी ॥ छिन वायु बहै छिन ग्रीषमता. छिनमैं ऋतु तीन जनावैगी । कहै राजम-

तौ पिय मान कह्यौ.छिनही छिन चित्त डुलावैंगी ॥ ८ ॥ कैसें कर चित्त डुलै सुन राजुल. एकनै एक समाधि लगावै। एक फिरै तिहूंलोकमें हिंडन. एक विना फिर एक न पावै ॥ जाय जहां तहां है एकलो. एकलो विछरै एकलो गंवावै। आवन जान अकेलो रहै यह. आदि अनादि अकेलो ही थावै ॥ ९ ॥

पिय कातिकको मन कैसें रहै जब भामिनि भौन सजावैंगी। रचि चित्र विचित्र सुरंग सबै. घर ही घर मंगल गावैंगी ॥ पिय नूतन नारि सिंगार किये अपनो पिय टेर बुलावैंगी। पिय बारहि बार बरैं दिवरा. जियरा तुमरा तरसावैंगी ॥१०॥ तो जियरा तरसै सुन राजुल. जो तनको अपनो कर जानै। पुद्गल भिन्न है भिन्न सबै तन. छांडि मनोरथ आन समानैं ॥ चूंडगो मोह कलिधारमें.जड़ चेतनको जो एक समानैं। हंस पिवै पय भिन्न करै जल. सो परमातम आतम जानै ॥ ११ ॥

हिमकी ऋतु आवेगी नाथ जबै. तब शीतल पौन सुआवेगी। तब शीतल नीर समीर लगे. तन अंबर प्रीत जनावेंगी ॥ सब भोजन पान सुहान लगें. सगरी तनताप बुझावेंगी ॥ करै राजमती अगहनमें जबै ऋतु नायक लायक आवेंगी ॥ १२ ॥ यह देह अपावन स्वेह भरी. सुन राजुल यामें कहा थिर है ॥ यह चामकी चादर ओट दिये. इसमें कृमिकीटनको घर है ॥ यह मूतन पीव पुरीष भरी यह. हाडरु पिंजरको घर है। तिहितें इसको हम नेह तज्यो. हमको अब शीतको का डर है ॥ ११ ॥

पिय पोषमें जाड़ो परेगो घनो बिन. सोडके शीत कैसें भरहो। कहा ओढोगे शीत लगे जबही. किधौं पातनकी धुवनी धर हो ॥ तुमरो प्रभुजी तन कोमल है. कैसें कामकी फौजनसों लरहो। जब आवेगी शीत तरंग सबै. तब देखत ही तिनकों डर हो ॥ १४ ॥

आस्रव होय जहांपर शोभित. शीत लगै अरु

पौन झकोरे । इंद्रिय पांच पसार जहां नहीं.राग
रोषतैं नानौं द्रि जोरै ॥ आठ महामद गात रहे
परद्रव्यको देख जहां निज दौरै । जो पर आप
विचार न राखुन.नौ नर आपनैं आपही बौरै ॥

पिय माघ तुषार परैगो घनो. तन पावकतैं
परिहो गिरिकैं । वह मानुषदेह कहा धरुगो.जिन
अंतर आन नदी तरकैं । जिन पावक होय नहाय
सदां.नहिं आन तुषार नहीं डरकैं । कहै राजमती
समझावो कहो तुम मैं गिर जोग लियो फिरकैं ॥
अंबरअंबरमें रह गलुन आन तुषार अनंत न-
साऊं । राग रु द्वेषवयार चलै नव छांय छिमा
तन आनि बचाऊं । इंद्रिय पांच निरोध किये
करुणा करकैं मद आठ गलाऊं । आप लख्यो
परद्रव्य तज्यो समता गहिकैं मनको समझा-
ऊं ॥१७॥ पिय आवैगो फागुन मास जबै, तब
गावैगी चहुं ओरनैं होरी । केसरकी पिचकारी
लिये कर, फेंकैं गुलालनकी भर झोरी ॥ गावत
गीत धमार बजावन, ताल मृदंग लिये डफ गोरी ।

तब भूलोगे पिया बात सबै, जब खेलन आवेंगी सब ओरी ॥१८॥ हम होरी खेलैं सुन राजुल यों, अपने घर ऐसे खेल मचाऊं। पांच सखी अपने सॅग लेकर, द्वादश भांतिके नाच नचाऊं॥ पांच सखी अपने सॅग लेकर निर्जरसे सब कर्म जराऊं। खेल रचूं शिवसुंदरसों, तब आठहि कर्मकी धूर उडाऊं॥ १९॥ पिय लागैगो चैत वसंत सुहावनो, फूलेंगी वेल सबै वनमाहीं। फूलेंगी कामिनि जाको पिया घर, फूलैंगी फूल सबै वनराई॥ खेलहिंगे ब्रजके वनमें सब बाल गुपाल रु कुँवर कन्हाई। नेमि पिया उठ आवो घरै तुम काहेको करहो लोग हॅसाई ॥२०॥ तीनहु लोकको जान सबै पुरुषाकर चौदह राजु ऊँचाई। ताके ... घनाकार सबै तीनसौ तेतालिस है चौराई॥ वात वलैनसों वेढि रह्यो हरता करता न कोई ठहराई। यह आदि अनादितैं आयो चल्यो, सुन राजुल थामैं कहा है हॅसाई ॥ २१ ॥ पिय मास वैशाखकी ग्रीषमता ऋतु शीतल नीरकी प्यास लगैंगी।

ज्यों गिरिपै रहो नाथ मेरे आन घाम परै सब देह दहेगी ॥ ऐसे कठोर भये कन्तजी ममता तज के सब प्रीति परेगी । नेमि पिया उठ आवो घरे सुन एकहि बार न सिद्धि लहेगी ॥ २२ ॥

धर्मतें सिद्धि नजीक है राजुल धर्म कियेतें कछु नाहिं आवे । धर्मतें इंद्र नरेंद्र धनेंद्र सुरेंद्रनको सब ही पद पावे ॥ धर्म सुदर्शन ज्ञान चरित्र करे तिहितें शिवमारग पावे । धर्म महत्त बडो जगमें जहां जीवदया तहां धर्म कहावे ॥ २३ ॥

धर्मकी बात तो सांची है नाथ पै जेठमें कैसें धर्म रहेगा । लूह चलै असवार समान ज्यों घाम परे शिरमें क सहेगा ॥ पक्षी पतंग सबै डर है अपने घरको सब कोई चहेगा । शून्यतृषा अति देह दहै तब ऐसो महाव्रत क्यों निबहेगा ॥ २४ ॥

दुर्लभ है नरको भव राजुल दुर्लभ श्रावकयोनि हमारी । दुर्लभ धर्म जु है दशलक्षण दुर्लभ षोडशभावना भारी ॥ दुर्लभ श्रीजिनराजको मारग दुर्लभ है शिवसुंदर नारी । यह सब दुर्लभ

जान तबै जब दुर्लभ है मन्यामकी त्यारी ।२५।
बारह मास जे पूरे भये तब नेमिहि राजुल जाय सुनाये । नेमहिं द्वादस भांति तबै उठ पीछेसों राजुलको समझाये ॥ राजुलने तब संजम ले सब निर्जराकर वसु कर्म जराये । राजुलके पति नेमि जिनेश्वर उत्तर लालविनोदीने गाये ॥ २६ ॥

॥ इति नेमिराजुलका बारहमासा समाप्त ॥

१६६ । बारहमासा सीतासतीका ।

यति नैनसुखदासकृत ।

रागिनी हिंडोला चाल श्रावणकी मल्हार तथा निहाल्दे ।

विन कारण स्वामी क्यों तजी विनवै, जनक दुलारि, विन कारण स्वामी क्यों तजी ॥ टेक ॥
साढ घुमडि आये बादरा, घन गरजे चहुं ओर । निर्जन वनमें स्वामी तुम तजी, बैठनकूं नहिं ठौर ॥ विनकारण स्वामी क्यों तजी, विनवै जनकदुलारि । विन० ॥ १ ॥ क्या मैं सतगुरु निंदियो, क्या दियो सतियन दोष । क्या हम सत संजम तज्यो, किस कारण भये रोस । वि०

॥१॥ क्या परपुरुष निहारिके, परभव कियो है निदान। क्या इसभव इन्द्रा करी, जगा में कियो अभिमान। विन०॥३॥ कुटुम्ब वन्न त्यागी नहि करे, दिया करम न कौन। पर धन पर चित नहि दियो, क्यों मन भयो है मलीन॥ विन० ॥४॥

श्रावण नुमरंग वर्तनिको, विरानि सही भग वान। पांवपयादी वन वन में फिरी, ननक न राखी मान। विन० ॥१॥ स्वसुर दियोटा जिन दिन सुम दियो, कियो भरत सरदार। तादिन विकल्प नहिं कियो, तज संपति भई त्यार। विन० ॥२॥ जनक पिताकी में हूं लाडली, मात विदेहाकी बाल। ग्रान प्रमामंडलसे बली, विपत भई बेहाल। विन० ॥३॥ मात मंदोदरी गर्भमें जन्मी रावणगेह। परभव करमसंयोगसे, रावण कियो है सनेह। विन० ॥ ४ ॥

भादों पंडित पूछियो, पंडित करी है विचार। कन्याके कारण राजा तुम मरो, दीनी तुरत निसार। विन० ॥१॥ छोटी भर मंजूसमें, जनक

नगर वनबीच। हलजोतत किरसानके, लई करमने खींच। विन० ॥ २ ॥ मरण भयो नहिं ता दिना, करम लिखे दुखदोष। करी नजर राजा जनकने, पाली पुत्र संजोग। विन० ।३। जनक स्वयंवर जब कियो, लिये सबभूप बुलाय। दरशनकर थारे वश भई, परी चरणविच आय ॥ विन० ॥ ४ ॥

कारमास फिरगये भूपसब, मोकारण कियो युद्ध। बहुत बली मारे रणविषे, ठायो धनुष प्रबुद्ध ॥ विन० ॥ १ ॥ खरदूषणके युद्धमें, आयो रावण दौड। छलकर धोका प्रभु तोहि दियो, नाद बजायो घनघोर। विन० ॥ २ ॥ जल्दी पधारो प्रभु मैं घिर गयो, तुम जानी भगवान। कष्ट पड्यो जी मेरे भ्रातपैं, उपज्यो मोह निदान ॥ विन० ॥ ३ ॥ मोहि लकोई पात बटोरिकैं, करम लिखी कछु और। आप पधारे अपने वीर पै आगयो रावण चोर ॥ विन० ॥ ४ ॥ चील झपट्टा करिकै लेभग्यो, मोकूं अधर उठाय। देखी

नाथ जटायुनें, क्या तुम जानत नाहिं। विन० ॥ ५ ॥ झपटि झपटि वाकै शिर हुयो, मुकुट खसोट्यो मूंछ उपारि। मारि तमाचो डार्‍यो भूमिपर, पक्षी खाईजी पछार ॥ विन० ॥ ६ ॥ लछमन तुमहिं निहारिकै, बात कही करि गौर। विनहिं बुलाये आये भ्रात क्यों है कछु कारण और ॥ विन० ॥ ७ ॥ काहू छलियाने यह कछु छल कियो. कै कछु करम चरित्र। नाहिं पिछान्यो जावें युद्धमें. कौन है वैरी कोन मित्र ॥ विन० ॥ ८ ॥

कातिक तुरत पठाइयो. उलट तुम्हें थारे भ्रात। विनही बुलाए आये आप क्यूं. शत्रु करेंगे उतपात। विन०॥१॥ आएजी तुरत रक्षा करनकूं, हमसे धर प्रभु प्यार। विखरे ही पाये पत्र बेल तब. खाई आप पछार। विन० ॥ २ ॥ भ्रात हटाई आकै मूरछा. सकल शत्रुगण जीत। पडा जटायू सिसकता, श्रावण धर्म पुनीत। विन० ॥ ३ ॥ जन्म सुधार्‍यो वाको आपने. मोविन

पाया नहिं चेन । डारी डारी ढूंढी वनविषें. रोय सुजाये तुम नैन । विन० ॥ ४ ॥ धीर बंधाई लछिमन भुजबली. बहुत करी थारी सेव । विपति कटैगी प्रभु धीरज धरे. तदपि न माने थे तुम देव । विन० ॥५॥ ल्याऊं काढ पतालसे. ल्याऊं पर्वत फोर । अवर मिलैं तो सब कुछ मैं करूं, चीर बगाऊं थारा चोर । विन० ॥ ६ ॥ फेर मिले जी प्रभु सुग्रीवसे. साहसगति दियो मार । पाय सुतारा ल्यायो हनुमानकूं. ढूंढन भेज्यो मोहि ततकार । विन० ॥७॥

अगहन खबर मँगायकै, मोढ़िग भेज्यो हनुमान । कूदि समुंदर गयो गढलंकमें. भेजी तुम मुंदरी भगवान । विनका० ॥१॥ तुमबिन बैठी रोऊं बागमें. रामहि राम पुकार । अन्न कियो ना पानी मैं पियो. परवश पडी थी लाचार । विन० ॥१॥ मुख धुलवायो हनुमानने. तुम आज्ञा परवान । प्राण बचाये मेरे विपतमें. करवायो जलपान । विन० ॥३॥ तुरतही भेज्यो

तुमरे चरणमें, चूडामणि दियो तारि । गाय फसी है गाढी गारमें. खैंच निकारोजी भरतार विनकारण० ॥ ४ ॥

पौष चढे जो गढलंकपै. युद्ध कियो भगवान । गारत किये लाखों सूरमा. मार कियो घमसान । विन० ॥ १ ॥ काटा शिर लंकेशका. लक्ष्मीधर वर वीर । कूद पडेजी जोधा लंकमें, लवण समुंदर चीर । विन०॥२॥ ल्याये तुरत छुडायके अशरण शरण अधार । इतनी कर ऐसी क्यों करी. घरसे दई क्यूं निकार । विन० ॥ ३ ॥ पगभारीजी गिरगिर में पडूं. शरण सहाय न कोय । अपनी कही न मेरी तुम सुनी. बहुत अंदेशा है मोहि । विनकारण० ॥ ४ ॥

माघ प्रभुजी पाला पड रह्या. पड़नेकूं नहिं सेज । ओढ़नकूं नहिं कांबली. दई क्यूं विपतिमें भेज । विन० ॥ १ ॥ सिंह धड्डुकें कूकें भेडिये. मारें गज चिंघाड़ । थरथर कांपे थांरी कामिनी व्यालिनी रही है दहाड़ । विन० ॥ २ ॥ नाचें

भूत पिशाचगण, रुंड मुंड विकराल। सनन सनन सारा बन करै. कांटे चुभैजी कराल। विन० ॥३॥ कित बैठूं लेटूं कित प्रभू, पास खवास न कोय। अन्न करूं ना पानी मैं पिऊं, बालककूं दुख होय। विन० ॥४॥ तुम सब जानत मेरे हालकूं. अष्टमबालि अवतार। तुम सूरज मैं पटबीजनी. क्या समझाऊं भरतार। विन०॥५॥ समरथ है प्रभु क्यों कसी, प्रगट कियो क्यों ना दोष। धोका दे क्यों धक्का दियो, आवे नहिं संतोष ॥ विन० ॥ ६ ॥

फागुन आईजी अठाइयां, अपने करम दे दोष। ध्यान धर्यो भगवानको, बैठ रही मनमोस ॥ विनकारण० ॥ १ ॥ अरज करौं प्रभु दरबारमें, ममताभाव निवार। तुमही पिता प्रभु तुम मात हो, तुमही भ्रात हमार ॥ विन० ॥२॥ निर्धनके प्रभु तुम धनी, निर्जनके परिवार। इकवर राम मिलायके, दीजियो दोष उतार ॥ विन० ॥ ३ ॥ तुम हो प्रभु राजा धरमके, परजा क

गायो हमें दोष। शीलमें मेरे सब संशय करें, रा-
म रुसाये हुये रोस ॥ विन० ॥ ४ ॥ त्यागि दिये
हम रामजी, त्यागि दियो संसार । गर्भवती हूं
संजोगसे, इससे हुई हूं लाचार ॥ विन० ॥ ५ ॥
जिस दिन प्रभु पश्चापाक हो, मिलै मोहि भरता-
र । भरम मिटाके धारूं धरमको, त्यागूं सब सं-
सार ॥ विन० ॥ ६ ॥ राम मनावै तौ भी ना मनूं,
करि जाऊं बनकूं विहार । करपै श्री रघुवीरके,
चोटी धरूंगी उपार ॥ विन० ॥ ७ ॥ भावै यों
सीता बैठी भावना, ध्यावै पद नवकार । पाप घट्यो
प्रगट्यो पुण्यफल, सुन लई तुरत पुकार ॥ वि-
न० ॥ ८ ॥ पुंडरीकपुर नगरका, वज्रजंघ भू-
पाल । आये पुण्यसंयोगसों गज पकड़न तिहँ
काल ॥ विन० ॥ ९ ॥ ढूंढत गजपति बनविषैं,
भनक पड़ी वाकै कान । कोई सतवंती रोवै वन-
विषै, किनही सताई अज्ञान ॥ विन० ॥ १० ॥
दोष लगायो कहा पूछिये, गज तज उतऱ्यो
वीर । विनयसहित दुख पूछन चल्यो, बैसे भै-

जाके घर वीर ॥ विन०॥११॥ तुम हो बहन मेरी धर्मकी विपति कहो समुझाय। मातपिता पति परिवारमें दूंगा बहन मिलाय ।विन०।१२।जनक पिताकी में हूं लाडली.भ्रात प्रभामडल धीर।स्वसुर हमारे दशरथ नृपबली भर्ता श्रीरघुवीर। विन० ॥१३॥ रावण हरके ले गयो दोष धरैं संसार। शीलमें सब सशय करें. दीनी राम निकार ॥ विन० ॥१४॥ सुनी कथा छाती थरहरी, टपकैं असुवनधार। हायरे कर्म ऐसी क्यों कसी, कियो तुरत उपगार। विन० ॥ १५ ॥देव धरम दिय बीचमें. बहन बनाई ततकार। पुंडरीकपुर ले गयो. करिके गज असवार ॥ विन० ॥ १६ ॥ पुत्र भये लवअंकुश बली. शिवगागी अवतार। वज्रजंघ रक्षाकरी पालिकिये हुशियार ॥विन०

चैत्रमास नारदमुनि मिले, चरण पढे दोउं वीर। राम लखनकीसी संपदा, हूज्यो थारे वर वीर। विनकारण० ॥ १ ॥ पूछ्यो तबै अपनी मातसूं राम लखन माता कौन। टसटस

लागे आसूं टपकने, मार्यो मन धार्यो मौन ॥
विन० ॥२॥ नारद मुनि समुझाइयो, पिछलो
सकल वृतंत । सुनत उठे योधा खडग ले, बैठ
विमान तुरंत ॥ विन० घेरि अजुध्या रणभेरी
दई, कांपै सुरग पताल । सोच भयो श्रीरघुवीर-
को, आये कौन अकाल ॥ विन० ॥४॥ निकसे
दोउ भ्राता युद्धकूं, खूब मचा घमसान । राम
लखन घबरा दिये, तोड्यो रथ काटे बाण ॥ वि-
न० ॥ ५ ॥ हलमूशल धारे रामने, लछमन चक्र
सँभार । सातवार फेंक्यो तानके, वृथाही गये
सातों बार । विन० ॥ ६॥ हम हरि बल अरु ये
किधौं, उपज्यो सोच अपार । आग बबूला
होकै फिर लियो, चक्रप्रलय करतार ॥ विन०
॥७॥ तब नारद आये भूमि पर, रामलखण-
ढिग जाय । बात कही सब समुझायकै, किसपै
कोपे रघुराय ॥ विन० ॥ ८ ॥ पुत्र तुम्हारे दोऊ
भुजबली, लवअंकुश बलवंत । मातविपति सुन
कोपिया, भाख्यो सकल वृतंत ॥ विन० ॥ ९॥

धारि आई छाती श्रीरघुवीरकी, रणकूं दियो है निवार । आय परे सुत चरणमें, लीने दोऊं पुचकार ॥ विन० ॥

मास विसाख वसंतरितु, सुनि सीताजीकी सार । आगपडे हनुमतसे बली, ल्याये करि मनुहार ॥ विन० ॥ १ ॥ वज्रजंघ आयो धूमसे, लायो सब परिवार । राम कहै मैं आने दूं नहीं, सीता दई मैं निकार ॥ विन० ॥ २ ॥ जो आवै तो आवो इसतरां, कूदो अगनिमझार । देय परीछा अपने शीलकी, होवे मेरी पटनार ॥ विन० ॥ ३ ॥ सीता सती प्रण धारियो, होवै कुंड तयार । अगन जलावो देरी मत करो, इक जोजन विसतार ॥ विन० ॥४॥ साड़ी कसि त्यारी करी, अंग ढक्यो बड़भाग । कुंड खुदायो मनभावतो, चेतन कर दई आग ॥ विन० ॥ ५ ॥ जाय चढी ऊंचे दमदमे, देखै सब संसार । सत मूरत सूरत सोहनी, मनमें हर्ष अपार ॥ विन० ॥ ६ ॥ देखैं वरमण देवता, देखैं भवनपतीस । चंद्र सूरज

देखे ज्योतिषी, देखे भूत पतील ॥ विन० ॥७॥
देखे सब विद्याधरा, देखे गण गंधर्व । कमर कसी कोउ जा पड़ी, देखे राजा सर्व ॥ विन० ॥८॥
अगनि लपट ऊठी गगनलों, तड़तड़ाट भयो घोर । कठन मजा धांतागमों, त्यों भय भए हो कठोर ॥ विन० ॥ ९ ॥ वज्र घने ना औन्ही अगनिमें, फाटे धरणि पताल । पर्वत फटि गढ गिर पडे, हे प्रभु कीजिये टाल ॥ विन० ॥ १० ॥ राम खड़ग सूंत्यो हाथमें, मन कोई फला जी रुनाय । आज्ञा माने मेरी जानकी, देवे अगन मिटाय ॥ विन० ॥ ११ ॥ हुकम दियो रघुवीरने, शीलपरीक्षा देहु । नातर क्यों आई तू यहां, पाजा करे है संदेहु ॥ विन० ॥ १२ ॥ पंच परमगुरु वंदिके, करि पतिकुं परणाम । क्षिमा कराई सब जीवसों, देखे लछमन राम ॥ विन० ॥ १३ ॥ पुत्र जुगल छोडे रोवते, सोहे चंद्रसमान । हरष भरी सतवंती महा, बोली वचन महान ॥ विन० ॥ १४ ॥ जो परपुरुष निहारिके, में कछु कियो

ई कुभाव । भस्म अगनि मोहि कीजियो, नातर जल हो जाव ॥ विन० ॥ १५ ॥ जठ तपै सूरज आकरो नीचे अगनि प्रचंड । आसपास जल थल सभी सूकि गए वनखंड ॥ विन० ॥ १ ॥ कूदपड़ी जलती अगनिमें शांति भई तनकार । उभरे कँवल अकाशलों लीनी अधर सहार ॥ विन० ॥ २ ॥ जल हलरावे बोलें हंसनी, कर रही मीन कलोल । छत्र फिरैंजी उसके सीसपैं, इंद्र चँवर रहे ढोल ॥ विन कारन ॥ ३ ॥ शीतल मंद सुगंध जुत, मीठी मीठी चलत बयार । वरषे पतु असृत कणी देव करें जै जैकार ॥ विन० ॥ ४ ॥ धन्य सती धन सतवंतिनी, धन धन धीरज येह । धृग धृग हम उनकूं करें, जिनके मनसंदेह ॥ विन० ॥ ५ ॥

बारह भावना सीताजीकी ।

सीता भावे मनमें भावना यह संसार अनित्य । धर्म विना तीनों लोकमें, शरण सहाई ना मित्त ॥ विन० ॥१॥ उलट पुलट चाले रहटसा. यह सं

सारी नर्क। एक अकेलो भटके आतमा, क्या पशु पंछी क्या शर्क ॥ विन० ॥ ७ ॥ ना कोई जगमें आपना औ न हम काहूके मीत। अशुचि अपावन तनविषै, करम करे विपरीत ॥ विन कारण० ॥८॥ संवर जल विन ना बुझे, तृष्णा अगनि प्रचंड। कर्म खिपाये विन ना खपे भटके सब ब्रह्मंड ॥ विन० ॥९॥ दुर्लभबोध जगतमें दुर्लभ श्रीजिनधर्म। दुर्लभ स्वपथ विचार है, कर्मन डार्यो भर्म ॥ विन० ॥१०॥ परवशभोगी भारी वेदना, स्ववश सही नहिं रंच। सास्वत सुख जामें पावती, लई करमने वंच ॥ विन० ॥ ११ ॥ अब में सब वेदन सही, कीनी धरम सहाय। परतिज्ञा पूरी करूं, मोह महा दुखदाय ॥ विन० ॥ १२ ॥ राम कहे प्यारी चल घरां, त्या भुजमें भुज डार। पाडि शिखा करपै धरि दई, त्याग्यो हम संसार ॥ विन० ॥१३॥ तुम त्यागी निरदोष कूं, हम त्यागे लख दोष। करिके छिमा में सजण लियो, करियो मत अ-

फसोस ॥ विन० ॥ १४ ॥ गई सतीजी बन खंडकूं, भई अरजिका धीर। उग्र उग्र तप वह करै, सब दुख सहै है शरीर ॥ विन० ॥ १५ ॥ पूरी करि परजायकूं, अच्युत सुरगमझार। इंद्र भईजी पुण्य सँजोगसों, भोगै सुक्ख अपार ॥ विन० ॥ १६ ॥

इति सीता सतीका बारहमासा समाप्त।

१७० । चौबीस दंडक ।

दोहा—वंदों वीर सुधीरको, महावीर गंभीर। वर्द्धमान सन्मति महा, देवदेव अतिवीर ॥१॥ गत्यागत्य प्रकाश जो, गत्यागत्य वितीत। अदभुत अतिगत सुगति जो, जैनेश्वर जगतीत ॥ २ ॥ जाकी भक्ति विना विफल, गये अनंते काल। अगिनत गत्यागति धरीं घट्यो न जग जंजाल ॥३॥ चौवीसौं दंडकविषै, धरी अनंती देह। लख्यो न निजपद ज्ञानविन, शुद्ध स्वरूप विदेह ॥ ४ ॥ जिनवाणी परसादतैं, लहिये आतमज्ञान। दहिये गत्यागति सबै, गहिये पद

निर्वान ॥५॥ चोवीसों दंडक तनी. गत्यागति सुनि लेहु। सुनकर विरक्त भाव धर. चहुंगति पानी देहु ॥ ६ ॥

चौपाई—पहिलो दंडक नारकितनो। भवन पती दसं दंडक भनो ॥ ज्योतिसे व्यंतरस्वर्गे निवास। थावर पंचं मद्दा दुःखरास ॥७॥ विकलत्रयं अरु नेर तिर्यंच। पंचेंद्री धारक परपंच ॥ यह चौवीस जु दंडक कहे। अब सुन इनमें भेद सु लहे ॥ ८ ॥ नारककी गति आगति दोय। नर तिर्यंच पंचेंद्री जोय ॥ जाय असेनी पहली लगों। मनविन हिंसाकर्म न पगों ॥ सरीसर्प दूजे लों जाय। अरु पक्षी तीजेलों थाय ॥ सर्प जाय चौथे लों सही। नाहर पंचम आगें नहीं ॥१०॥ नारी छट्टे लगही जाय। नर अरु मच्छ सातवें थाय ॥ एतो नारक आगति कही। अब सुन नारककी गति सही ॥११॥ नरक सातवेंको जो जीव। पशुगति ही पावे दुखदीव ॥ अरु सब नारक मर नर पशु। दोऊ गति आवें परवश

॥ १२ ॥ छट्टेको निकस्यो जु कदापि । सम्यक
सह श्रावक निष्पाप । पंचम-निकस्यो मुनि हू
होय । चौथेको केवलि हू कोय ॥ १३ ॥ तिय
नरकको निकस्यो जीव । तीर्थंकर भी हो ज॰
पीव ॥ यह नारककी गत्यागती । भाषी जिन-
वाणीमें सती ॥ १४ ॥ तेरह दंडक देव निकाय
तिनको भेद सुनो मनलाय ॥ नर तिर्यंच पंचेंद्री
विना । औरनको नाहिं सुरपद गिना ॥ १५ ॥
देव मरै गति पांच लहाँहिं । भू जल तरुवर नर
तिरमाहिं ॥ दूजे सुरग उपरले देव । थावर है
न कह्यो जिनदेव ॥१६॥ सहस्रारतैं ऊंचे खिरा
मरकर होवै निश्चय नरा॥ भोगभूमिके तिर्यंच
नरा । दूजे देवलोकतैं परा ॥ १७ ॥ जाय नहीं
यह निश्चय कही । देवन भोगभूमि नाहिं गही ॥
कर्मभूमियां नर अरु ढोर । इन विन भोगभूमि
की ठौर ॥ १८ ॥ जाइ न तातैं आगति दोइ ॥
गति इनकी देवनकी होइ ॥ कर्मभूमिया तिर्यग
बुद्ध । श्रावकव्रत धर बारम शुद्ध ॥१९॥ सह-

नार ऊपर तिर्यंच । जाय नहीं तज है परपंच ॥
अव्रत सम्यकदृष्टी नरा ॥ बारमतैं ऊपर नहिं
धरा ॥२०॥ अन्यमती पंचागिनि साध । भवन-
त्रिकतैं जाइ न बाद । परिव्राजक निरदंडी देह ।
पंचम परैं न उपजैं जेह ॥ १ ॥ परमहंस नामैं
परमती । सहस्रार ऊपर नहिं गती ॥ मोक्ष न
पावै परमति माहिं । जैन बिना नहिं कर्म नसाहिं
॥२२॥ श्रावक आर्य अणुव्रत धार । बहुरि
श्राविकागण अविकार ॥ सोलह स्वर्ग परैं नहिं
जाय । ऐसो भेद कह्यो जिनराय ॥ २३ ॥ द्रव्य
लिंगधारी जे जती । नवग्रीवक ऊपर नहिं गती ॥
नवहिं अनुत्तर पंचोत्तरा ॥ महामुनि विन और
न धरा ॥ २४ ॥ केई चार जीव सुर भया । पण
इंद्रकपद नाहीं गहा ॥ इंद्र भयो न शचीहू भयो ।
लोकपाल कबहू नहिं थयो ॥२५॥ लौकांतिक
ह्वो न कदापि । नहीं अनुत्तर पहुंच्यो आप ॥
ए पद धर बहु भव नहिं धरै । अल्पकालमैं मु-
क्तिहि वरै ॥२६॥ हैं विमान सरवारथ सिद्ध

सबतें ऊंचो अतुल सुरिद्ध ॥ ताके सिरपर है
शिवलोक । परें अनंतानंत अलोक ॥ २७ ॥
गत्यागत्य देवगति भनी । अब सुन भ्रात मनु-
षगति तनी । चौवीसों दंडकके मांहि । मनुष
जांहि यामें शक नांहि ॥ १८ ॥ मोक्षहु पावें
मनुष मुनीश । सकल धराको जो अवनीश ॥
मुनि विन मोक्ष नहीं कोउ वरे । मनुष विना
नहिं मुनि ह्वै तरे ॥ २९ ॥ सम्यकदृष्टी जे मुनि-
राय । भवजल उत्तरें शिवपुर जाय । तहां जाय
अविनाशी होय ॥ फिर पीछें आवे नहिं कोय ॥
॥३०॥ रहै शाश्वते शिवपुरमाहिं । आतमराम
भयो सक नाहिं ॥ गति पचीस कही नरतनी ।
आगति फुनि बाईसहि भनी ॥३१॥ तेजकाय
अरु वाय जु काय । इनविन और सबै नर थाय ॥
गति पचीस आगति बाईस । मनुषतनी जो
भाखी ईश ॥३२॥ ताहि सुरासुर आतमरूप ।
ध्यावै चिदानंद चिद्रूप ॥ तौ उतरो भवसागर
जिया । और न शिवपुर मारग लिया ॥३३॥

यह सामान्य मनुषकी कहा । अब सुन पदवी-
धरकी सही ॥ तीर्थंकरकी दो आगती । स्वर्ग नर
कतैं आवै सती ॥३४॥ फेरि न गति धारै जग-
दीस । जाय विराजैं जगके शीस ॥ चक्री अर्ध
चक्रि अरु हली । सुरग लोकतैं आवैं बली ॥
॥३५॥ इनकी आगति एकहि जान । गतिकी
रीति कहूं जु बखानि ॥ चक्रीकी गति तीन जु
होय । सुरग नरक अरु शिवपुर जोय ॥३६॥
तप धारै तौ शिवपुर जांय । मरै राजमैं नरकहि
ठांय ॥ आखरिमैं ह्वै पद निर्वान । पदवी धारक
बडे प्रधान ॥३७॥ बलभद्रनकी दोयहि गती ।
सुरग जांहि कै ह्वै शिवपती ॥ तप धारैं ये नि-
श्चय भया । मुक्तिपात्र ये श्रुतिमैं कह्या ॥३८॥
अर्द्धचक्रिको एकहि भेद । नारक होय लहै अति
खेद राजमाहिं ये निश्चय मरैं । तदभवमुक्ति
पंथ नहिं धरैं ॥ ३९ ॥ आखिर पावै जिनवर
लोक । पुरुष शलाका शिवके थोक ॥ ये पद
कबहुं न पाये जीव ॥ ये पदपाय होय शिवपीव

॥४०॥ औरहु पद कइयक नहिं गहे। कुलकर नारदपदहु न लहे॥ रुद्र भये न मदन ना भये। जिनवर मात पिता नहिं थये॥ ४१॥ ये पद पाय जीव नहिं रुलै। थोडेहि दिनमें जिन सम तुलै॥ इनकी आगति श्रुतमे जानि। गतिको भेद कहूं जो वखानि॥४२॥ कुलकर देवलोक ही गहै। मदन सुरग शिवपुरको लहै॥ नारद रुद्र अधोगति जाय। सहै कलेश महा दुखदाय॥ ४२॥ जन्मांतर पावे निरवान। वडे पुरुष जे सूत्र प्रमान॥ तीर्थंकरके पिता प्रसिद्ध। स्वर्ग जांय कै हो है सिद्ध॥ ४४॥ माता स्वर्ग लोक ही जाय। आखिर शिवपुर लोक लहाय॥ ये सव रीति मनुषकी कही। अव सुन तिर्यंचन गति सही॥ ४५॥ पंचेद्री पशुमरण कराय। चौवीसों दंडकमें जाय॥ चौवीसों दंडकतें मरै। पशू होय तौ नाहि न करै॥४६॥ गति आगती कही चौवीस। पंचेंद्री पशुकी जिन ईश। तौ परमेश्वरको पथ गहौ॥ चौविस दंडक नाहीं

लहो ॥४७॥ विकलत्रयकी दश ही गती। दस आगती कहीं जगपती ॥ पांचों थावर विकल जु तीन। नर तिर्यंच पंचेंद्री लीन ॥ ४८ ॥ इनहीं दशमें उपजैं जाय। पृथिवी पानी तरवरकाय ॥ इनहीतैं विकलत्रय आय। इन ही दसमें जन्म कराय ॥ ४९ ॥ नारक विन सब दंडक जोय पृथ्वी पानी तरुवर सोय। तेज वायु मरि नवमें जाय। मनुष होय नहिं सूत्र कहाय ॥५०॥ थावर पन विकलत्रय ठौर। ये नवगति भाखी मदमोर दसतैं आवै तेज अरु वाय। होय सही गावै जि- नराय ॥५१॥ ये चौईस दंडके कहे। इनकूं त्याग परमपद लहे ॥ इनमें रुलै सु जगको जीव। इनतैं रहित सु त्रिभुवनपीव ॥५२॥ जीवईसमें और न भेद। ए करमी वे कर्म उछेद ॥ कर्म बंध जोलों जगजीव। नाशे कर्म होय शिव-पीव ॥ दोहा—मिथ्या अव्रत योग अर, मद परमाद क- षाय। इंद्रियविषय जु त्याग ये, भ्रमन दूरि ह्वै जाय ॥ जिन विनगति भवतैं धरी, भयी नहीं

सुरझार। जिनमारग उर धारिये, हो हैं भव-
दधि पार ॥ ५५ ॥ जिन भज सब परपंच तज
वडी बात है येह। पंच महाव्रत धारिकै, भवज-
लकों जल देह ॥ ५६ ॥ अंतर करण जु सुद्ध
है, जिनधर्मी अभिराम। भाषा कारण कर सकूं
भाषी दौलतराम ॥ ५७ ॥ इति ॥

१७१। श्रीचौवीस तीर्थंकरोंके चिन्ह।

वृषभनाथका 'वृषभ' जु जान। अजितनाथके
'हाथी' मान ॥ संभवजिनके 'घोडा' कहा। अ-
भिनंदनपद 'बंदर' लहा ॥ १ ॥ सुमतिनाथके
'चकवा' होय। पद्मप्रभके 'कमल' जु जोय ॥
जिनसुपासके 'सथिया' कहा। चंद्रप्रभपद 'चंद्र'
जु लहा ॥ २ ॥ पुष्पदंतपद 'मगर' पिछान।
'कल्पवृक्ष' शीतलपद मान ॥ श्रीश्रियांसपद
'गेंडा' होय। वासुपूज्यके 'भैंसा' जोय॥३॥वि-
मलनाथपद 'शूकर' मान। अनंतनाथके 'सेही'
जान ॥ धर्मनाथके 'वज्र' कहाय। शांतिनाथपद
'हिरन' लहाय ॥ ४ ॥ कुंथुनाथके पद 'अज'

चीन। अरजिनके पद चिह्न जु 'मीन'॥ मल्लि नाथ पद 'कलसा' कहा। मुनिसुव्रतके 'कछुआ' लहा॥ ५॥ 'लालकमल' नमिजिनके होय। नेमिनाथ-पद 'संख' जु जोय॥ पार्श्वनाथके 'सर्प' जु कहा। वर्द्धमानपद 'सिंह' हि लहा।६।

१७२। संक्षिप्त सूतकविधि।

सूतकमें देव शास्त्र गुरुका पूजन प्रक्षालादिक करना, तथा मंदिरजीकी जाजम वस्त्रादिको स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूतक का समय पूर्ण हुये बाद पूजनादि करके पात्रदानादि करना चाहिये।

१—जन्मका सूतक दश दिन तक माना जाता है।

२—यदि स्त्रीका गर्भपात (पांचवें छठे महीनेमें) हो तो जितने महीनेका गर्भपात हो उतने दिनका सूतक माना जाता है।

३—प्रसूति स्त्रीको ४५ दिनका सूतक होता है, कहीं कहीं चालीस दिनका भी माना जाता है। प्रसूतिस्थान एक मास तक अशुद्ध है

४—रजस्वला स्त्री चौथे दिन [illegible] भोजनादिकके लिये शुद्ध होती है परन्तु देव पूजन, पात्रदानके लिये पांचवें दिन शुद्ध होता है। व्यभिचारिणी स्त्रीके सदा ही सूतक रहता है।

५ मृत्युका सूतक तीन पीढी तक १२ दिनका माना जाता है। चौथी पीढीमें छह दिनका, पांचवीं छठीं पीढी तक चार दिनका, सातवीं-पीढीमें तीन, आठवीं पीढीमें एक दिन रात, नवमी पीढी में स्नानमात्रमें शुद्धता हो जाती है।

६—जन्म तथा मृत्युका सूतक गोत्रके मनुष्यको पाच दिनका होता है। तीन दिनके बालकका मृत्युका एक दिनका आठ वर्षके बालकको मृत्युका तीन दिन तकका माना जाता है। इसके आगे बारह दिनका।

७—अपने कुलके किसी गृहत्यागीका सन्यास मरण, वा किसी कुटुम्बीका संग्राममें मरण हो जाय तो एकदिनका सूतक माना जाता है।

८—यदि अपने कुलका कोई देशान्तरमें मरण करे और १२ दिन पहले खबर सुने तो शेष दिनोंका ही सूतक मानना चाहिये। यदि १२ दिन पूर्ण हो गये हों तो स्नानमात्र सूतक जानो।

९—गौ, भैंस, घोड़ी आदि पशु अपने घरमें जने तो एक दिनका सूतक और घरके बाहर जने तो सूतक नहीं होता। दासी तथा पुत्रीके घरमें प्रसूति होय तो एक दिन, मरण हो तो तीन दिनका सूतक होता है। यदि घरसे बाहर हो तो सूतक नहीं। जो कोई अपनेको अग्नि आदिकमें जलाकर वा विष, शस्त्रादिसे आत्महत्या करे तो छह महीनेतकका सूतक होता है। इसी प्रकार और भी विचार है सो आदिपुराणसे जानना।

१०—बच्चा हुये बाद भैंसका दूध १५ दिन तक, गायका दूध १० दिन तक, बकरीका ८ दिन तक अभक्ष्य (अशुद्ध) होता है। देशभेदसे सूतक विधानमें कुछ न्यूनाधिक भी होता है परन्तु शास्त्रकी पद्धति मिलाकर ही सूतक मानना चाहिये। *समाप्त*

तीस चौबीसी पूजा।

अडिल्ल छन्द।

पांच भरत शुभ क्षेत्र, पांच ऐरावते,
आगत नागत वर्त्तमान जिन शास्वते।
सो चौबीसी तीस जजों मन लायके,
आह्वानन विधि करूं वार त्रय गायके।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्थ सप्तसतविंशतिजिनेन्द्राः अत्रावतरावतर सवौषट् आह्वानन, अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठः स्थापन। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण।

अथाष्टक।

(चाल रेखता)

नीर दधि क्षीर सम लायो, कनकके भृंग भरवायो। जरामृतु रोग संतायो, अबै तुम चर्ण ढिग आयो॥ द्वीप ढाई सरस राजै, क्षेत्र दश ता विषैं छाजै। सात शत बीस जिन राजै, पूजते पाप सब भाजै॥ १॥

ओं ह्रीं पचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रके सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो जल०।

सुरभि जुत चंदनं लायो, संग करपूर घसवायो। धार तुम चरण ढरवायो, भव आताप नसवायो॥ द्वीप ढाई०॥२॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रके सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो चदन०।

चंद सम तंदुलं सारं, किरण मुक्ता जु उनहारं। पुंज तुम चरण ढिग धारं, अखैपद काजके कारं॥ द्वीप ढाई०॥ ३॥

ओं ह्रीं पचमेरुसंबधिदशक्षेत्रके सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो अक्षत०।

पुष्प शुभ गंध जुत मोहे, सुगन्धित तास मन मोहे। जजत तुम, मदन छय होवे, मुक्तिपुर पलकमें जोवे ।। द्वीप ढाई० ।।४।।

ओं ह्रीं पचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रके सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो पुष्प०।

सरल व्यंजन लिया ताजा, तुरत बनवाइया खाजा। चरण तुम जजो महाराजा, क्षुधा दुख पलकमें भाजा ।। द्वीप ढाई० ।।५।।

ओं ह्रीं पचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रके सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो नैवेद्य०।

दीप तम नाशकारी है, सरस शुभ ज्योति धारी है। होय दशदिश उजारी है, धूम्र मिस पाप जारी है ।। द्वीप ढाई० ।।६।।

ओं ह्रीं पचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रके सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो दीप०।

सरस शुभ धूप दशअगी, जराऊँ अग्निके संगी। कर्मकी सेन चतुरगी, चरण तुम पूजते अगी ।। द्वीप ढाई० ।। ७ ।।

ओं ह्रीं पचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रके सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो धूप०।

मिष्ट उत्कृष्ट फल ल्यायो, अष्ट अरि दुष्ट नसवायो। श्री जिन भेंट करवायो, फल मनोवांछितो पायो ।। द्वीप ढाई० ।।८।।

ओं ह्रीं पचमेरुसम्बधिदशक्षेत्रके सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो फल०।

द्रव्य आठों जु लीना है, अर्घ कर मै नवीना है। पूजते पाप छीना है, 'भानमल' जोड़ कीना है ।। द्वीप ढाई० ।।९।।

ओं ह्रीं पचमेरुसम्बधिदशक्षेत्रके सातसौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं०।

अथ प्रत्येक अर्घ (अडिल्ल छन्द)

आदि सुदर्शन मेरु तनी दक्षिण दिशा,
भरत क्षेत्र सुखदाय सरस सुन्दर बसा।
तिहँ चौबीसी तीन तने जिनरायजी,

बहत्तरि जिन सर्वज्ञ नमों शिरनाय जी ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुके दक्षिण दिशाके भरतक्षेत्रसम्बन्धि तीन चौबीसी के बहत्तरि जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

ताहि मेरु उत्तर ऐरावत सोहनो,
आगत नागत वर्त्तमान मन मोहनो ।
तिहँ चौवीसी तीन तने जिनरायजी,
बहत्तरि जिन सर्वज्ञ नमों शिर नायजी ॥२॥

ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुके उत्तरदिशाके ऐरावतक्षेत्रसबधि तीन चौबीसी के बहत्तर जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

कुसुमलता छन्द ।

खंड धातुकी विजय मेरुके दक्षिण दिशा भरत शुभ जान, तहँ चौबीसी तीन विराजै आगत नागत अरु वर्त्तमान । तिनके चरण कमलको निशदिन अर्घ चढाय करूं उर ध्यान, इस ससार भ्रमणतैं तारो अहो जिनेश्वर करुणावान ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं धातुकीखडकी पूर्वदिश विजयमेरुके दक्षिणदिश भरतक्षेत्र सम्बन्धि तीन चौबीसीके बहत्तरि जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं निर्व० ॥ ३ ॥

इसी दीपकी प्रथम शिखरके उत्तर ऐरावत जो महान । आगत नागत वर्त्तमान जिन बहत्तरि सदा शास्वते जान ॥ तिनके चरण कमलको निशदिन अर्घ चढ़ाय करूं उर ध्यान । इस संसार भ्रमणतैं तारो अहो जिनेश्वर करुणावान ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं धातुकीखडकी पूर्व दिश विजयमेरुके उत्तरदिश ऐरावतक्षेत्र सम्बन्धी तीन चौबीसीके बहत्तरि जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं नि० ॥ ४ ॥

चौपाई छन्द।

खंड धातु गिर अचल जु मेरु दक्षिण नाम भरत बहु घेर।
तामें चौबीसी त्रय जान, आगत नागत अरु वर्त्तमान ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं धातुकीखंडकी पश्चिमदिश अचलमेरुके दक्षिणदिश भरतक्षेत्र-सम्बन्धी तीनचौबीसीके बहत्तरि जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं नि० ॥ ५ ॥

अचलमेरु उत्तर दिश जाय, ऐरावत शुभ क्षेत्र बताय।
तामें चौबीसी त्रय जान, आगत नागत अरु वर्त्तमान ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं धातुकीखंडकी पश्चिमदिश अचलमेरुके उत्तरदिश ऐरावत-क्षेत्रसम्बन्धी तीनचौबीसीके बहत्तरि जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं नि० ॥ ६ ॥

सुन्दरी छन्द

द्वीप पुष्करकी पूरब दिशा, मंदिर मेरुकी दक्षिण भरतमा।
ता विषैं चौबीसी तीनजू अर्घ लेय जजों परवीन जू ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं पुष्करद्वीपकी पूर्वदिश मंदिरमेरुकी दक्षिणदिश भरतक्षेत्र सम्बन्धी तीनचौबीसीके बहत्तरि जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं नि० ॥ ७ ॥

गिर सुमंदिर उत्तर जानियो, क्षेत्र ऐरावत सु बखानियो।
ता विषैं चौबीसी तीन जू, अर्घ लेय जजों परवीन जू ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं पुष्करद्वीपकी पूर्वदिश मंदिरमेरुकी उत्तरदिश ऐरावतक्षेत्र सम्बन्धी तीनचौबीसीके बहत्तरि जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं नि० ॥ ८ ॥

पद्धरी छन्द।

पश्चिम पुष्कर गिर विद्युतमाल, ता दक्षिण भरत बन्यो माल। तामें चौबीसी है जु तीन वसु द्रव्य लेय पूजों प्रवीन ॥९॥

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्ध द्वीपकी पश्चिमदिश विद्युन्मालीमेरुके दक्षिणदिश भरतक्षेत्रसम्बन्धी तीन चौबीसीके बहत्तरि जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं नि० ॥ ९ ॥

याही गिरके उत्तर जु ओर, ऐरावत क्षेत्र तनी सु ठौर।
तामें चौवीसी है जु तीन, वसु द्रव्य लेय पूजों प्रवीन ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्ध द्वीपकी पश्चिमदिश विद्युन्मालीमेरुके उत्तरदिश ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धी तीनचौवीसीके बहत्तरि जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं० ॥ १० ॥

कुण्डलिया छन्द।

द्वीप अढाईके विषै, पांच मेरु हितदाय।
दक्षिण उत्तर तासुके, भरत ऐरावत भाय।
भरत ऐरावत भाय एक क्षेत्रनके मांही।
चौवीसी है तीन तीन दशहीके मांही।
दशों क्षेत्रके तीम सातसौ वीस जिनेश्वर।
अर्घ लेय कर जोर जजों 'रविमल' मन शुधकर ॥११॥

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धी दशक्षेत्रके विषैं तीस चौवीसीके सातसौ वीस जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

❋ जयमाला ❋

दोहा—चौवीसी तीसों तनी, पूजा परम रसाल।
मन वच तनसों शुद्ध कर अव वरनों जयमाल॥

पद्धरि छन्द।

जय द्वीप अढाईमें जु सार, गिर पंचमेरु उन्नत अपार।
ता गिर पूरव पश्चिम जु ओर, शुभ क्षेत्र विदेह बसे जु ठौर ॥१॥
ता दक्षिण क्षेत्र भरत सुजान, है उत्तर ऐरावत महान।
गिर पांच तने दश क्षेत्र जोय, ताको वर्णन सुनि भव्य लोय ॥२॥
जो भरत तनों वरनन विशाल, तैसो ही ऐरावत रसाल।

इक क्षेत्र बीच विजयार्द्ध एक, ता ऊपर विद्याधर अनेक ॥३॥
इक क्षेत्र तने षट् खंड जान, तहाँ छहों काल वरतें समान।
जो तीन काल में भोगभूमि, दश जाति कल्पतरु रहे झूमि ॥४॥
जब चौथो काल लगे जु आय, तब कर्मभूमि वरते सु आय।
जब तीर्थंकरको जनम होय, सुर लेय जजैं गिर मेरु सोय ॥५॥
बहु भक्ति करैं सब देव आय, ता थेइ थेइ थेइ तान लाय।
हरि ताडव नृत्य करैं अपार, सब जीवन मन आनंदकार ॥६॥
इत्यादि भक्ति करिके सुरिंद निज थान जाय युत देव वृन्द।
या विधि पाचों कल्यान होय, हरि भक्ति करे अति हर्ष होय ॥७॥
या काल विषैं पुण्यवंत जीव, नर जन्म धार शिव लहै अतीव।
सब त्रेसठ पुरुष प्रवीन होय, सब याही काल विषैं जु होय ॥८॥
जब पञ्चम काल करैं प्रवेश, मुनि धर्म तनों नहिं रहे लेश।
विरले कोइ दक्षिण देश माहि, जिनधर्मी जन बहुते जु नाहिं ॥९॥
जब आवत है षष्टम जु काल, दुखमें दुख प्रगटे अति कराल।
तब मांसभक्षि नर सर्व होय जहा धर्म नाम नहि सुनै कोय ॥१०॥
याही विधिमें षट्काल होय, दश क्षेत्रनमें इकसार होय।
सब क्षेत्रनमें रचना समान, जिनवानी भाख्यो सो प्रमान ॥११॥
चौबीसी है इक क्षेत्र तीन दश क्षेत्र तीस जानों प्रवीन।
आगत नागत जिन वरतमान, सब सात सतक अरु बीस जान ॥१२॥
सबही जिनराज नमों त्रिकाल, मोहि भव वारिधितें ल्यो निकाल।
यह वचन हियेमें धारि लेव, मम रक्षा करो जिनेन्द्र देव ॥ १३ ॥
रविमलकी विनती सुनो नाथ, मैं पांय पडूं जुग जोरि हाथ।

मनवांछित कारज करो पूर, यह अरज हियामें धरि हजूर ॥१४॥
घत्ता–शत सात जु बींस श्री जगदीशं आगत नागत वरततु है।
मन वच तन पूजैं सुध मन हुजैं सुरग मुक्तिपद धारत है ॥१५॥

ॐ ह्रीं पाच भरत पाच ऐरावत दशक्षेत्रके विषै तीनचौवीसीके सात सौ बीस जिनेन्द्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

पूजाकारकी प्रार्थना।

दोहा

सम्वत शत उगनीसके, ता ऊपर शनि आठ।
पौष कृष्ण तृतिया गुरू पूरण कीना पाठ ॥१॥
अक्षरमात्राकी कसर, बुधजन शुद्ध करेहिं।
अल्पबुद्धि मो जानके, दोष नाहिं मम देहिं ॥२॥
पढ्यो नहीं व्याकरण मै, पिङ्गल देख्यो नाहिं।
जिनवाणी परमादतैं, उमग भई घट मांहि ॥३॥
मान बडाई ना चहूँ चहूँ धर्मको अंग।
नित प्रति पूजा कीजियो, मनमें धार उमंग ॥४॥

इत्याशीर्वादः।

श्री चांदनगांव महावोर स्वामी पूजा।

छन्द

श्री वीर सन्मति गांव चांदनमें प्रगट भये आयकर।
जिनको वचन मन कायसे मैं पूजहूँ शिरनाय कर ॥
हूये दयामय नार नर लखि, शांतिरूपी भेषको।

तुम ज्ञानरूपी भानुमे कीना सुशोभित देशको ॥
सुर इन्द्र विद्याधर मुनी नरपति नवावें शीसको ।
हम नवत हैं नित चावसों महावीर प्रभु जगदीशको ॥

ॐ ह्रीं श्री चादनगाव महावीर स्वामिन् अत्र अवतर २ संवौषट् आह्वा० ।
ॐ ह्रीं श्री चादनगाव महावीर स्वामिन अत्र तिष्ठ २ ठ. ठ स्थापन ।
ॐ ह्रीं श्री चादनगाव महावीर स्वामिन् अत्र मम सन्निहितो भव २
वषट्सन्निधिकरणम् ।

अथाष्टक ।

क्षीरोदधिसे भरि नीर कंचनके कलशा ।
तुम चरणनि देत चढ़ाय आवागमन नशा ॥
चांदनपुरके महावीर तोरी छवि प्यारी ।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री चांदनपुर महावीर स्वामिने जल निर्वपामीति स्वाहा ।

मलयागिर और कपूर केशर ले हरषों ।
प्रभु भव आताप मिटाय तुम चरणनि परसों ॥ चांदन० ॥ चंदनं ॥
तंदुल उज्ज्वल अति धोय थारामें लाऊ ।
तुम सन्मुख पुञ्ज चढाय अक्षय पद पाऊं ॥ चांदन० ॥ अक्षतं ॥
बेला केतुकी गुलाब चम्पा कमल लऊं ।
जे कामबाण करि नाश तुम्हारे चरण दऊं ॥ चांदन० ॥ पुष्पं ॥
फैनी गुज्जा अरु स्वार मोदक ले लीजे ।
करि क्षुधा रोग निरवार तुम सन्मुख कीजे ॥ चांदन० ॥ नैवेद्य ॥
घृतमें करपूर मिलाय दीपकमें जारो ।
करि मोहतिमिरको दूर तुम सन्मुख वारो ॥ चांदन० ॥ दीप ॥

दश विध ले धूप बनाय तामें गन्ध मिला।
तुम सन्मुख खेऊं आय आठों कर्म जिला॥ चांदन० ॥ धूपं०॥
पिस्ता किसमिस बादाम श्रीफल लौंग सजा।
श्री वर्द्धमान पद राख पाऊं मोक्ष पदा॥ चांदन० ॥फलं०॥
जल गंध सु अक्षत पुष्प चरुवर चरु करों।
ले दीप धूप फल मेलि आगे अर्घ करों॥ चांदन० ॥अर्घं०॥

टोंकके चरणोंका अर्घ।

जहाँ कामधेनु नित आय दुग्ध जु बरसावै।
तुम चरननि दरशन होत आकुलता जावै॥
जहाँ छतरी बनी विशाल अतिशय बहु भारी।
हम पूजत मन वच काय तजि संशय सारी॥
चांदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी॥
ॐ ह्रीं टोंकमें स्थापित श्री महावीर चरणेभ्यो अर्घं०।

टीलेके अन्दर विराजमान समयका अर्घ।

टीले के अन्दर आप सोहें पदमासन।
जहाँ चतुर निकाई देव आवें जिनशासन॥
नित पूजन करत तुम्हार करमें ले झारी।
हम हू वसु द्रव्य बनाय पूजें भरि थारी॥
चांदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी॥
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय टीलेके अन्दर विराजमान समयका अर्घं०।

कुण्डलपुर नगर मँझार त्रिशला उर आये ।
सुदि छठि अषाढ़ सुर आइ रतन जु बरसाये ।। चांदन० ।।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय आषाढ सुदि छठि गर्भमगलप्राप्ताय अर्घं०।
जनमत अनहद भई घोर आये चतुर निकाई ।
तेरस शुक्ला की चैत्र सुर गिरि ले जाई ।। चांदन० ।।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय चैत्र सुदि तेरस जन्ममगल प्राप्ताय अर्घं०।
कृष्णा मंगसिर दश जान लौकांतिक आये ।
करि केश लौंच तत्काल झट बन को धाये ।। चांदन० ।।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मगसिरबदी दशमी तपोमगलप्राप्ताय अर्घं०
बैसाख सुदी दशमांहि घाती क्षय करना ।
पायौ तुम केवलज्ञान इन्द्रनि की रचना ।। चांदन० ।।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय बैशाखसुदी दशमी केवलज्ञानप्राप्ताय अर्घं०
कार्तिक जु अमावस कृष्ण पावापुर ठांहीं ।
भयो तीन लोक में हर्ष पहुँचे शिव मॉहीं ।। चांदन० ।।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कार्तिकबदी अमावस मोक्षमगलप्राप्ताय अर्घ

जयमाला, दोहा।

मंगलमय तुम हो सदा श्री सन्मति सुखदाय ।
चांदनपुर महावीर की कहूँ आरती गाय ।।

पद्धरि छन्द ।

जय जय चादनपुर महावीर तुम भक्तजनो की हरत पीर।
जड चेतन जगके लखत आप, दई द्वादसाग वानी अलाप ।।
अब पचमकाल मझार आय, चादनपुर अतिशय दयो दिखाय ।
टीले के अन्दर बैठि वीर, नित हरा गाय का तुमने क्षीर ।। २ ।।

कोई जय जय शब्द करै गभीर, जय जय जय हे श्री महावीर।
जैनी जन पूजा रचत आन, कोइ छत्र चँवरके करत दान ॥ १४ ॥
जिमकी जो मन इच्छा करत मनवाछित फल पावै तुरन्त।
जो करै वदना एक बार, सुख पुत्र सपदा हो अपार ॥ १५ ॥
जो तुम चरणो मे रखै प्रीत, ताको जगमे को सकै जीत।
है शुद्ध यहाँका पवन नीर, जहाँ अति विचित्र सरिता गभीर ॥१६॥
पूरनमल पूजा रची सार, हो भूल, लेउ सज्जन सुधार।
मेरा है शममावाद ग्राम, त्रयकाल करू प्रभुको प्रणाम ॥ १७ ॥

घत्ता।

श्री वर्द्धमान तुम गुण निधान उपमा न बनी तुम चरणाकी।
है चाह यही नित बनी रहै अभिलाष तुम्हारे दरशन की ॥
ॐ ह्रीं श्री चादनगांव महावीर जिनेन्द्राय जयमालार्घ्यं नि० स्वाहा। १९।

दोहा

अष्ट करम के दहनको पूजा रची विशाल।
पढें सुने जो भावसे छूटें जग जंजाल ॥१॥
सवत् जिन चौबीस सौ है बासठ की साल।
एकादश कार्तिक वदी पूजा रची सम्हाल ॥२॥

इत्याशीर्वाद।

१७५ सलूना रक्षाबन्धन पूजा।

श्री १०८ मुनींद्र विष्णुकुमार पूजन।

वलि मद मर्दन मदन जय, मंगलमय जगदीश।
महारथी जिनधर्म के अशरण शरण मुनीश ॥ १ ॥
आह्वानन कैसे करै, कहा तिठावैं तोहि।

यह नैवेद्य विविध रस पूरित मिष्ट मनोहर भरकर थाल। लाया हूँ तव भेंट प्रभो ! मम-नश जाये क्षुद्व्यथा विशाल ॥ वत्सलता० ॥

ओं ह्रीं विष्णुकुमारमुनीन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि० स्वाहा।

मणिमय दीप सजाकर झिलमिल झिलमिल करता विमल प्रकाश। मोह महातम दलनहेतु तव करू आरती तव उल्लास ॥ वत्सलता० ॥

ॐ ह्रीं विष्णुकुमारमुनीन्द्राय मोहान्धकारविध्वंशनाय दीप नि० स्वाहा।

दश विध द्रव्य सुगन्धित लेकर चूर्ण बनाया यह तत्काल डाल हुताशनमें महकाऊ जलजाये कर्मों का जाल ॥वत्सलता०॥

ओं ह्रीं विष्णुकुमारमुनीन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूप नि० स्वाहा।

श्रीफल मेव सन्तरा एला केला कमरख अरु बादाम। निःश्रेयस पद प्राप्त करनको लाया हू प्रभु कलमी आम ॥ वत्सलता० ॥

ओं ह्रीं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि० स्वाहा।

मलयज अक्षत सलिल पुष्प चरु धूप दीप फल मिश्रित अर्घ्य। लेकर तव पद-पंकज अर्चूं मिल जायेगा हम अनर्घ्य ॥ वत्सलताकी मूर्ति मनोरम धर्म ध्वजाके थंभ महान। अन्तस्थल में शांति सुधाका स्रोत बहादो अय भगवान।

ओं ह्रीं विष्णुकुमारमुनीन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्य नि० स्वाहा।

* जयमाला *

जयति २ जय २ विभो ! मुनिवर विष्णुकुमार।
अर्चा मिस अभ्यर्थना, होवे मम स्वीकार ॥

अकम्पन सूरि आदि पर अहह ! किये बलि ने जब अत्याचार। चतुर्दिक ठाट लगा नरमेध-रच किया पशुओं का संहार॥ पुन धधकादी अनल प्रचण्ड, तेज विस्तृत हुआ चहुँ ओर। कंठ होजाने से विच्छिन्न हुआ दुग्ध सब ऋषियोंको घोर॥ एक क्षणमें भूतल पर धर्म-प्रेमियोंमें तब भारी शोर, हुआ पर थे सबही चुपचाप देख अन्याय नृपतिका घोर॥ सुना जब अर्द्ध रात्रिके समय आज ऋषियों पर आपाघात। हो रहा हस्तिनागपुर बीच, सुनत ही शून्य गया सब गात॥ चलो फिर सत्वर ही तुम देव! योगि रक्षा करने तत्काल। लिया नहिं पल भर भी विश्राम। त्याग निज हितका स्वार्थ विशाल॥ बनाकर वामनका निज रूप दान मांगने बलिके पास। गये, मांगी निज पगसे भूमि-तीन ही पग हो बहुत उदास॥ दुष्ट बलिने अब वचन उचार तुम्हें दे दिया भूमिका दान। झटिति तब ऋद्धि सिद्धिसे वाह! किया तन अपना मेरु समान। पुन द्वय पगही में नर लोक मापकर बलि के ऊपर जोर। लगाकर रक्खा तीसरा पैर, भूमि तब कांप उठी चहु ओर॥ असुर सुर नर मुनियोंके बीच देख तव अनुपम रूप विशाल। हुआ आश्चर्य विषाद अपार, हर्षके साथ एक ही काल॥ कृत्य यह बलिका लख सब लोग, रहे थे उसे बहुत धिक्कार। कह रहे थे उससे यू गर्ज-कियेका फल चखले मक्कार॥ आपके प्रति हो नम्रीभूत-सभीने गाया मंगलगान। धन्य है शक्ति तुम्हारी नाथ! धर्मके रक्षक श्री भगवान॥ आज पा रक्षाबन्धन पर्व अहाहा! स्मृति यह सुखद ललाम। मनाई जाती है चहु ओर

इसी मुनि रक्षक दिनके नाम ॥ उसी दिनसे ही हम कुछ लोग, मानते वामन का अवतार । किन्तु सचमुच वह तुम वात्सल्य अग धारक थे विष्णुकुमार ॥ झुका सिर चरणोंमें हरबार मागता देव! यही वरदान । धर्मके रक्षा करने हेतु हमें दो शक्ति 'विष्णु' भगवान ॥

ॐ ह्रीं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं नि० स्वा०॥

श्रद्धा भक्ति भाव वैभवसे सज मन मंदिर दिव्य ललाम । अनुपम मूर्ति मुनीन्द्र तुम्हारी आरोपण कर हो निष्काम ॥ जो "अवनीन्द्र" निरंतर करता अर्चा चर्चा और प्रणाम । संसृतिमें स्वर्गिक विभूति या मुक्तिश्री पाये अभिराम ॥

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

१७६ रविव्रत पूजा ।

यह भविजन हितकार, सु रविव्रत जिन कही । करहु भव्य-जन लोग, सुमन देके सही ॥ पूजों पार्श्व जिनेन्द्र त्रियोग लगायके । मिटें सकल संताप मिले निधि आयके ॥ मतिसागर इक सेठ कथा ग्रन्थन कही । उनहीने यह पूजा कर आनंद लही तातैं रविव्रत सार सो भविजन कीजिये । निश्चय शिवसुखदाय ये निश्चय कीजिये ॥

दोहा—प्रणमों पार्श्व जिनेश को, हाथ जोड़ शिर नाय ।
परभव सुख के कारने पूजा करूं बनाय ।
एतवार व्रत के दिना, एही पूजन ठान ।
ता फल सुरग सम्पति लहै, निश्चय लीजे मान ।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अत्र अवतर अवतर । अत्र तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक—उज्ज्वल जल भरके अति लायो रतन कटोरन माहीं। धार देत अति हर्ष बढ़ावत जन्म जरा मिट जाहीं॥ पारसनाथ जिनेश्वर पूजों रविव्रतके दिन भाई। सुख सम्पति बहु होय तुरत ही आनन्द मंगलदाई॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल निर्व०॥

मलयागिर केशर अति सुन्दर कुमकुम रंग बनाई।
धार देत जिन चरनन आगे भव आताप नसाई॥ पारस०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय भवताप विनाशनाय चदन निर्व०॥

मोती सम अति उज्ज्वल तन्दुल ल्यायो नीर पखारो।
अक्षय पदके हेतु भावसों श्रीजिनवर ढिग धारो॥ पारस०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्ताये अक्षतान् निर्व०॥

बेला अर मचकुन्द चमेली पारजातके ल्यावो।
चुन २ श्रीजिन अग्र चढ़ावो मनवांछित फल पावो॥ पारस०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वशनाय पुष्प निर्व०॥

बावर फेनी गोजा आदिक घृतमें लेत पकाई।
कंचन डार मनोहर भरके चरनन देत चढ़ाई॥ पारस०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति०।

मणिमय दीप रतनमय लेकर जगमग जोत जगाई।
जिनके आगे आरति करिके मोह तिमिर नस जाई॥ पारस०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीप० निर्व०॥

चुनकर मलयागिरिका चंदन धूप दशांग बनाई।
तट पावक में खेय भावसों कर्मनाश हो जाई॥ पारस०॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा०॥

श्रीफल आदि बदाम सुपारी भांति भांति के लावो।
श्रीजिनचरन चढाय हर्षकर तातैं शिवफल पावो ॥ पारस० ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा।
जल गंधादिक अष्ट दरब ले अर्घ बनाओ भाई।
नाचत गावत हर्ष भावसों कञ्चन थाल भराई ॥ पारस० ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

गीता छन्द—मन वचनकाय विशुद्ध करके पार्श्वनाथ सु पूजिये। जल आदि अर्घ बनाय भविजन भक्तिवन्त सु हूजिये ॥ पूज्य पारसनाथ जिनवर सकल सुख दातारजी। जे करत हैं नर नार पूजा लहत सुक्ख अपारजी ॥

※ जयमाला ※

दोहा—यह जगमें विख्यात है, पारसनाथ महान।
जिनगुणकी जयमालिका, भाषा करों बखान ॥

तज प्रभुको धरो ध्यान ।। जे मतिसागर इक सेठ जान । जिन रविव्रत पूजा करी ठान ।। ५ ।। तिनके सुत थे परदेश माहिं । जिन अशुभ कर्म काटे सुताहि ।। ६ ।। जे रविव्रत पूजन करी सेठ । ताफल कर सबसे भई भेट । जिन जिनने प्रभु का शरण लीन । तिन ऋद्धि-सिद्धि पाई नवीन ।। ७ ।। जे रविव्रत पूजा करहिं जेह । तेह सुक्ख अनतानत लेय । धरनेन्द्र पद्मावती हुए सहाय । प्रभुभक्ति जान तत्काल जाय ।। ८ ।। पूजा विधान इहि विधि रचाय । मन वचन काय तीनो लगाय ।। जो भक्तिभाव जैमाल गाय । सो सुख सम्पत्ती अतुल पाय ।। ९ ।। बाजत मृदङ्ग वीनादि सार । गावत-नाचत नानाप्रकार । तन नन नन नन नन ताल देत । सन नन नन नन सुर भर सु लेत ।। १० ।। ता थेइ थेइ थेइ पग धरत जाय । छमछम छमछम घुघरू बजाय ।। ते करहिं विरतिइहि भांति २ । ते लहहिं सुक्ख शिवपुर सुजात ।।११।।

दोहा—रविव्रत पूजा पार्श्वकी, करे भविक जन कोय ।
सुख-सम्पति इहि भव लहै, तुरत महा सुख होय ।।

अडिल्ल—रविव्रत पार्श्व जिनेन्द्र-पूज्य भवि मन धरैं । भव भवके आताप सकल छिनमें टरैं । होय सुरेन्द्र नरेन्द्र आदि पदवी लहैं सुख सम्पति संतान अटल लक्ष्मी रहैं । फेर सर्व विध पाय भक्ति प्रभु अनुसरे । नाना विधि सुख भोग बहुरि शिव तिय वरे ।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

१७७ क्षमावणी पूजा ।

आश्विन वदी एकमके दिन भगवान को मेरु पर विराजमान कर पंचमगल और अभिपेक पाठ बोलकर नित्य नियम पूजा करके क्षमावणी पूजा करनी चाहिये । पश्चात् सोलह कारणका अभिषेक करके भगवान को वेदीमें यथास्थान विराजमान करना चाहिये ।

छप्पय

अंग क्षमा जिन धर्म तनो दृढ मूल बखानो ।
सम्यक रतन संभाल हृदयमें निश्चय जानो ॥
तज मिथ्या विष मूल और चित निर्मल ठानो ।
जिनधर्मी सो प्रीत करो सब पातक भानो ॥
रत्नत्रय गह भविक जन जिन आज्ञा सम चालिये ।
निश्चय कर आराधना करम रासको जालिये ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय नम अत्र अवतर २ संवौषट् आह्वानन ॥ अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण पुष्पाजलिं क्षिपेत् ॥

अथाष्टक ।

नीर सुगध सुहावनो पद्मद्रह को लाय ।
जन्म रोग निरवारिये सम्यक् रतन लहाय ॥
क्षमा गहो उर जीवडा जिनवर वचन गहाय ।

ॐ ह्रीं नि शांकितागाय, नि.कांक्षितागाय, निर्विचिकित्सितागाय, निर्मूढतागाय, उपगूहनागाय, सुस्थितिकरणागाय, वात्सल्यतागाय, प्रभावनागाय, जन्म मृत्यु विनाशनाय सम्यग्दर्शनाय जलं० ॥ॐ ह्रीं व्यजन व्यंजिताय, अर्थ समग्राय, तदुभय समग्राय, कालाध्ययनाय, उपध्यानोपहिताय, विनयलब्धिप्रभावनाय, गुरबाधपन्हव, बहुमानोन्मान, अष्टाग

सम्यग्ज्ञानाय जल० ॥ ॐ ह्रीं अहिंसाव्रताय, सत्यव्रताय, अचौर्यव्रताय ब्रह्मचर्य व्रताय, अपरिग्रह महाव्रताय मनो गुप्तये वचन गुप्तये काय गुप्तये, ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण, प्रतिष्ठापन समिति त्रयोदश विध सम्यक्चारित्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल० ॥ १ ॥

केसर चंदन लीजिये, संग कपूर घसाय।
अलि पंकति आवत घनी, वास सुगंध सुहाय ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर० ॥ चंदनं ॥ २ ॥
शालि अखण्डित लीजिये, कंचन थाल भराय।
जिनपद पूजों भावसौं, अक्षत पदको पाय ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा जिनवर० ॥ अक्षत ॥ ३ ॥
पारिजात अरु केतकी, पहुप सुगंध गुलाब।
श्रीजिन चरण सरोज कूं पूज हर्ष चितचाव ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा जिनवर० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥
शक्कर घृत सुरभी तना व्यंजन षट्रस स्वाद।
जिनके निकट चढ़ायकर हिरदे धरि आह्लाद ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा जिनवर० ॥ नैवेद्यं ॥५॥
हाटक मय दीपक रचो, बाति कपूर सुधार।
शोधित घृत कर पूजिये, मोह तिमिर निरवार ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा जिनवर० ॥ दीपं० ॥६॥
कृष्णागर करपूर हो, अथवा दश विधि जान।
जिन चरणन ढिग खेइये, अष्ट कर्म की हान ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा जिनवर० ॥ धूपं ॥७॥

केला अम्ब अनार ही, नारिकेल ले दाख।
अग्र धरो जिनपद तने, मोक्ष होय जिन भाख।
क्षमा गहो उर जीवडा जिनवर० ॥ फल ॥ ८ ॥
जलफल आदि मिलायके, अरघ करो हरषाय।
दुःख जलांजलि दीजिये, श्रीजिन होय सहाय ॥
क्षमा गहो उर जीवड़ा जिनवर० ॥ अर्घं ॥ ९ ॥

* जयमाला *

— दोहा —

उनतिस अङ्ग की आरती सुनो भविक चितलाय।
मन वच तन सरधा करो उत्तम नर भव पाय ॥१॥

❀ चौपाई ❀

जैनधर्ममे शक न आनै, सो नि शकित गुण चित ठानै।
जप तप कर फल वाछै नाही, नि काक्षित गुण हो जिस माही ॥२॥
पर को देख गिलानि न आने, सो तीजा सम्यक् गुण ठानै।
आन देवको रच न माने सो निर्मूढत गुण पहिचानै ॥ ३ ॥
पर को औगुण देख जु ढाकै, सो उपगूहन श्री जिन भाखै।
जैनधर्म तै डिगता देखै, थापे बहुरि स्थित कर लेखै ॥ ४ ॥
जिन धरमी सो प्रीत निबहिये, गउ वच्छवत वच्छल कहिये।
ज्यो त्यो कर उद्योत बढावै, सो प्रभावना अङ्ग कहावै ॥ ५ ॥
अष्ट अङ्ग यह पाले जोई सम्यक्दृष्टि कहिये सोई।
अब गुण आठ ज्ञानके कहिये, भाखे श्री जिन मनमे गहिये ॥ ६ ॥
व्यजन अक्षर सहित पढीजै, व्यजन व्यजित अङ्ग कहीजै।
अर्थ सहित शुध शब्द उचारै, दूजा अर्थ समग्रह धारै ॥ ७ ॥

तदुभय तीजा अंग लखीजै, अक्षर अर्थ सहित जु पढ़ीजै ।
चौथा कालाध्ययन विचारै, काल समय लखि सुमरण धारै ॥ ८ ॥

पंचम अंग उपधान बतावै, पाठ सहित तब बहु फल पावै ।
षष्ठम विनय सुलब्धि सुनीजै, वाणी बहुत विनय सु पढ़ीजै ॥ ९ ॥

जापै पढ़ै न लोपै जाई, अंग सप्तम गुरु वाद कहाई ।
गुरु की बहुत विनय जु करीजै, सो अष्टम अंग धर सुख लीजै ।१०।

यह आठों अंग ज्ञान बढ़ावै, ज्ञाता मन वच तन कर ध्यावै ।
अब आगै चारित्र सुनीजै, तेरह विधिधर शिव सुख लीजै ॥११॥

छहों कायकी रक्षा करहै, सोई, अहिंसा व्रत चित धर है ।
हित मित सत्य वचन मुख कहिये, सो सतवादी केवल लहिये ॥१२॥

मन वच काय न चोरी करिये, सोई अचौर्य व्रत चित धरिये ।
मनमथ भय मन रंच न आनै, सो मुनि ब्रह्मचर्य व्रत ठानै ॥१३॥

परिग्रह देख न मूर्छित होई, पंच महाव्रत धारक सोई ।
महाव्रत ये पांचों खरे हैं, सब तीर्थंकर इनको करे हैं ॥१४॥

मनमें विकलप रंच न होई, मनोगुप्ति मुनि कहिये सोई ।
वचन अलीक रंच नहिं भाखैं, वचन गुप्ति सो मुनिवर राखैं ॥१५॥

कायोत्सर्ग परीषह सहि हैं, ता मुनि काय गुप्त जिन कहि हैं ।
पंच समिति अब सुनिये भाई, अर्थ सहित भाखो जिनराई ॥१६॥

हाथ चार जब भूमि निहारैं, तब मुनि ईर्यापथ पद धारैं ।
मिष्ट वचन मुख बोलैं सोई, भाषा समिति तास मुनि होई ॥१७॥

भोजन छयालिस दूषण टारैं, सो मुनि एषण शुद्ध विचारैं ।
देखकै पोथी ले अरु धर हैं, सो आदान निक्षेपण वर हैं ॥१८॥

मल मूत्र एकान्त जु डारै, परतिष्ठापन समिति सभारै।
यह मव अग उनतीस कहे हैं, जिन भाखे गणधर ने गहे हैं ॥१६॥
आठ आठ तेरह विधि जानो, दर्शन ज्ञान चरित्र सु ठानो।
तातै शिवपुर पहुँचो जाई, रत्नत्रय की यह विधि भाई ॥२०॥
रत्नत्रय पूरण जब होई, क्षमा क्षमा करियो सब कोई।
चैत माघ भादो त्रय बारा, क्षमा क्षमा हम उरमे धारा ॥२१॥
दोहा—यह क्षमावणी आरती, पढै सुनै जो कोय।
कहे "मल्ल" सरधा करो, मुक्ति श्री फल होय ॥२२॥

ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय अष्टविधि सम्यग्ज्ञानाय, त्रयोदश विध सम्यक्चारित्राय रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घं०।

सोरठा।

दोष न गहियो कोय, गुण गह पढिये भाव सौ।
भूल चूक जो होय, अर्थ विचारि जु शोधियो ॥

इत्याशीर्वाद.।

१७८ समुच्चय अर्घ।

प्रभुजी अष्ट दरब जु ल्यायो भावमों, प्रभुजी थांका हरप २ गुण गाऊं महाराज, यो मन हरख्यो प्रभु थांकी पूजा जी रे कारणे॥ प्रभुजी थांकी तो पूजा भवि जन नित करै, जाका अशुभ कर्म कट जाय महाराज। यो मन० ॥ १ ॥ प्रभुजी थांकी तो पूजा भवि जीव जो करै, सो तो सुरग मुकतिपद पावै महाराज। यो मन० ॥२॥ प्रभुजी इन्द्र धरणेंद्रजी सबमिल गाय, प्रभुका गुणांको पार न पाइया॥ प्रभुजी थें छो जी अनन्ताजी गुणवान, थाने

तो सुमरयाँ सङ्कट परिहरे। प्रभूजी थे छो जी साहिब तीनों लोक का, जिनराय मैं छूं जी निपट अज्ञानी महाराज। यो मन० ॥३॥ प्रभूजी थाँका तो रूपजी निरखन कारणे, सुरपति रचिया छै नयन हजार महाराज। यो मन० ॥४॥ प्रभूजी नरक निगोद में भव भव मैं रुल्यो, जिन राय महिया छै दुःख अपार महाराज ॥ यो मन० ॥५॥ प्रभूजी अब तो शरणोजी थारो मै लियो, किस विधि कर पार लगाओ महाराज ॥ यो मन० ॥६॥ प्रभूजी म्हारो तो मनडो थांमेजी घुल रह्यो, ज्यों चकरी विच रेशम की डोरी महाराज ॥ यो मन० ॥७॥ प्रभूजी तीन लोक में है जिन विम्ब, कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय पूजस्याँ, प्रभूजी जल चन्दन अच्छत पुष्प नैवेद, दीप धूप फल अर्घ चढाऊँ महाराज, जिन चैत्यालय महाराज, सब चैत्यालय जिनराज ॥ यो मन० ॥८॥ प्रभुजी अष्ट दरब जु ल्यायो बनाय पूजा रचाऊँ श्री भगवानकी ॥९॥

ॐ ह्रीं भाव पूजा भाववदना त्रिकालपूजा त्रिकालवदना करै करावै भावना भावै श्री अरहन्तजी सिद्धजी आचार्यजी उपाध्यायजी सर्वसाधु जी पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नम। प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः दर्शन विशुद्धयादि षोडश कारणेभ्यो नमः। उत्तम क्षमादि दश लक्षण धर्मेभ्यो नमः। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक-चारित्रेभ्यो नम। जलके विषैं थल के विषैं आकाश के विषैं गुफाके विषैं पहाड़के विषैं नगर नगरी के विषैं ऊर्ध्वलोक मध्यलोक पाताललोक विषैं विराजमान कृत्रिम अकृत्रिम जिन चैत्यालय जिनविम्बेभ्यो नम.। विदेहक्षेत्रे विद्यमान वीस तीर्थंकरेभ्यो नमः। पाँच भरत पाँच ऐरावत दशक्षेत्र सम्बन्धी तीस चौवीसी के सातसौ वीस जिनालयेभ्यो नमः। नंदिश्वर द्वीप सबंधि बावन जिन चैत्यालयेभ्यो नम। पञ्चमेरुसम्बन्धि

अस्सी जिन चैत्यालयेभ्यो नमः। सम्मेदशिखर कैलाश चम्पापुर पावापुर गिरनार आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः। जैनबद्री मूलबद्री राजगृही शत्रुञ्जय तारङ्गा चमत्कार महावीर स्वामी आदि अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः श्री चारण ऋद्धिधारी सप्त परमर्षिभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं श्रीमन्त भगवन्त कृपालसन्त श्री वृषभादि महावीर पर्यत चतुर्विंशति तीर्थंकर परमदेव आद्याना आद्येजम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे नाम्नि नगरे मासानामुत्तमे मासे मासे शुभे पक्षे शुभे तिथौ वासरे मुनि आर्यिकाना श्रावक श्राविकाना क्षुल्लक क्षुल्लिकानां सकल कर्म क्षयार्थं (जलधारा) अनर्घ्यपद प्राप्तयं महार्घ्यं सम्पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव पूजा वदनास्तव समेत श्रीपञ्चमहागुरु भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्

१७६ शांति पाठ भाषा।

शाति पाठ बोलते समय पुष्प क्षेपण करते रहना चाहिए।

चौपाई १६ मात्रा।

शांति नाथ मुख शशि उनहारी। शीलगुणव्रतसयमधारी॥ लखन एकसौ आठ विराजैं। निरखत नयन कमलदल लाजैं॥१ पंचम चक्रवर्ति पद धारी। सोलम तीर्थंकर सुखकारी॥ इन्द्र नरेंद्र पूज्य जिन नायक। नमो शांतिहित शांति विधायक॥२॥ दिव्य विटप पहुपनकी वरषा। दु दुभि आसन वाणी सरसा। छत्र चमर भामण्डल भारी। ये तुव प्रातिहार्य मनहारी॥३॥ शांति जिनेश शांति सुखदाई। जगत्पूज्य पूजौं शिरनाई। परम शांति दीजै हम सब को। पढ़ैं तिन्हें पुनि चार सघको॥४॥

बसन्ततिलका

पूजैं जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके।
इद्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके॥

सो शांतिनाथ वरवंश जगतप्रदीप ।
मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप ॥

इन्द्रवज्रा

सपूजकोंको प्रतिपालकोंको । यतीनको औ यतिनायकोंको ॥
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले । कीजै सुखी हे जिन शांतिको दे ॥

स्रग्धरा छन्द

होवै सारी प्रजाको सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा ।
होवै वर्षा समै पै तिलभर न रहै व्याधियों का अँदेशा ।
होवै चोरी न जारी सुसमय वरतै हो न दुष्काल भारी ।
सारे ही देश धारैं जिनवर वृष को जो सदा सौख्यकारी ॥

दोहाः—घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवल राज ।
शांति करो सब जगतमें वृषभादिक जिनराज ॥

मन्दाक्रान्ता ।

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का ।
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाकूं सभी का ॥
बोलूं प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊं ।
तौलौं सेऊं चरण जिन के मोक्ष जोलौं न पाऊं ॥

आर्य्या ।

तव पद मेरे हियमें मम हिय तेरे पुनीत चरणोंमें ।
तबलौं लीन रहौ प्रभु, जबलौं पाया न मुक्ति पद मैंने ॥१०॥
अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कछु कहा गया मुझसे ।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि पुनि छुड़ाहु भवदुखसे ॥
हे जगबन्धु जिनेश्वर, पाऊं तव चरण शरण बलिहारी ।

मुक्ती की गैली मिल जावे, "शाति" यो गुण गायो ॥
शिव नारी स्यू मिल्याजो जी ॥ नैया० ॥४॥

१८२ भजन संख्या २

[तर्ज—राजा की आयेगी बरात · · 'आह']

वीर प्रभूजी जिनराज, गरीबनवाज शरण मे आयाजी ॥टेर॥
भटक भटक कर लाखो योनी दुख पाये भरपूर।
इन सब से घबराके आया दया करोगे हजूर ॥
टूट रही है पतवार, तुम्ही हो खेवनहार ॥ १ ॥
अञ्जन आदि लाखो तारे अग्नि का कीना नीर।
सुमिरन कर श्रीपाल ने पाया भवसागर का तीर ॥
गाऊ मैं क्या तेरे यश गान प्रभुजी हो महान ॥ २ ॥
तेरी महिमा अकथ प्रभुजी, आया तेरे दरबार।
"शान्ति" पार लगादो अब तो नाव मेरी मझदार ॥
तुम्ही लगादो भवपार, पाऊँगा शिवनार ॥ ३ ॥

१८३ भजन संख्या ३

[तर्ज—सैया दिल में आना रे· · 'बहार']

भैया सब मिल आना रे नृत्य प्रभु आगे करना रे।
छम छमा छम छम।
द्रव्य का थाल होगा, पूजा का भाव होगा।
जागेगी भक्ति मन में, विषयो का त्याग होगा ॥
खुशी खुशी गायेंगे हम भजन सुहाना रे ॥ १ ॥
शात मुद्रा है तेरी, भव भव की काटे फेरी।
राग द्वेष मिटकर शुद्ध भावना होगी मेरी ॥
क्षमा भाव धर कर समता भाव जगाना रे ॥ २ ॥

आठों कर्मो के वन्दन काटो हे त्रिशला नन्दन ।
अपनी ही चरण शरण दो, मुझको हे दु ख निकन्दन ।।
"शान्ति" गुण गा जो चाहे, शिव पद पाना रे ।। ३ ।।

१८४ भजन सख्या ४

[तर्ज—वचपन की मोहव्वत को दिल से 'वैजूवावरा']

श्री वीर प्रभू हमको चरणो मे जगह देना ।
घवरा गये भरमण मे, अव अपनी शरण लेना ।। टेर ।।
घन घोर घटा शिर पर, कर्मों की है मँडराती ।
सम्यक्त्व सूर्य वन कर, मिथ्यात्व हटा देना ।। १ ।।
ले नाम तुम्हारा ही, श्रीपाल ने सिन्धु तरा ।
मझधार पडी नैय्या, किनारे से लगा देना ।। २ ।।
लेकर के उमीदो को आये हैं तेरे दर पर ।
"शान्ति" प्रभु विनती है, शिवनारि मिला देना ।। ३ ।।

१८५ भजन संख्या ५

[तर्ज—छुन छुन छुन वाजे पायल मोरी · 'हमलोग']

सुन सुन सुन प्रभु अरजी मेरी, पाऊँ कृपा तेरी, पाऊँ कृपा तेरी ।।टेर।।
जग मे वहुत भ्रमाया; अव तेरे दर पै आया ।
ले लो अपनी अपनी शरण मे, इन दु खो से घवराया ।।
हो, हो, तेरे पैय्याँ पड़ू यह विनती करू काटो वेडी मेरी ।। पाऊँ०।।१।।
ग्रन्थो मे वहुत यश गाया, महिमा का पार न पाया ।
मेरी आशा हो पूरी शाति मस्तक नाया ।।
हो, हो, मुक्ति नारी लहूँ, तारी भवसे, चहूँ अवना लागे देरी ।।पाऊँ०।।२

१८६ भजन संख्या ६

[तर्ज—बहे अखियो से धार' 'हमलोग']

खाकर कर्मों की मार, आया तेरे दरबार, सुनो प्रभु सुखकार।
जायें अब कहाँ तुम्हे छोडके ॥ टेर ॥
मैने लाखो कुदेवो को ध्याया।
उन्हें रागी औ द्वेषी पाया ॥
करते माया का भरमार, कई नशा सेवनहार, सुनो प्रभु सुखकार ॥१॥
वो खुद ही दुखी हैं सारे।
फिरते भव भव में मारे मारे ॥
तू है भव दुख हार, सुनी महिमा अपरपार सुनो प्रभु सुखकार ॥ २ ॥
जिसने भी जपी तेरी माला।
कर्म शत्रू को उसने टाला ॥
"शांति" वीर हिये धार, पायेगा तू शिवनार, सुनो प्रभु सुखकार ॥३॥

१८७ भजन संख्या ७

[तर्ज—चन्दा की चांदनी मे भूमे भूमे दिल मेरा · 'पूनम']

आया आया दर तेरे, आया आया दर तेरे।
वीर प्रभुजी मैं तो आया आया दर तेरे ॥ टेर ॥
भव भव में फिरता आया गतियो में रुलता आया।
लाखो चौरासी योनियाँ भी धरता आया। वीर ॥ १ ॥
कर्मों ने मुझको घेरा, लोभ ने डाला डेरा।
क्रोध मान आदि जीतू, पाऊँ सहारा तेरा ॥ वीर० ॥२॥
लेकर उम्मीद आया, रूप तिहारा भाया।
मुक्ति मिलादो दाता, "शांति" शरण में आया ॥ वीर० ॥३॥

१८८ भजन संख्या ८

[तर्ज—एक दो तीन मौसम है रगीन 'आवारा']

गा गा गा, वीर प्रभु गुण गा ।
झूठे बन्दन तोड जग के प्रभु गुण गायेजा ।। गा० ।।टेर।।
क्यो तू कुदेवो मे जाता है, माया मे भरमाता है ।
डूबके इसमे देखले तू झूठा जग का नाता है ।। १ ।।
माता पिता भाई नाती, सब मतलब के है साथी ।
प्राण पखेरू उडने पर, काया भी है रह जाती ।। २ ।।
वीर प्रभु के दर आये, वीतराग छवि मन भाये ।
"शांति" लगाये आशा है हम सब शिवनारी पायें ।। ३ ।।

१८९ भजन संख्या ९

(तर्ज—दिन सुहाने ये मौसम बहार का पूनम')

गारे गारे गा वीर गुण गान गा ।
नाम सुमिरन करले तू भगवान का ।। टेर ।।
यह आयू तेरी ढलती पल पल ।
क्या तू करता रहेगा यो कल कल ।।
कुछ भरोसा नही तेरी जान का ।। १ ।।
झूठे सारे जगत के ये बन्धन ।
बेडियां हैं नही हैं ये कगन ।
सोचले अब जरा अजाम का ।। २ ।।
यह जवानी यह दौलत दिन चार है ।
जला देगी तुझे ये अगार है ।।
तोड दे आइना अभिमान का ।। ३ ।।

वीर प्रभू की महिमा है न्यारी।
"शान्ति" जायेगा वलि वलिहारी॥
साथी हो जायेगा शिवनारि का॥ ४॥

१६० भजन संख्या १० कव्वाली

(तर्ज—वसालो अपनी निगाहो में प्यार थोडासा' 'वजार')

विचारो दिल मे जरा आप कौन थोडासा।
आत्म शक्ति का जलवा देखलो फिर थोडासा॥ टेर॥
राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी अपनी वार॥
जान कर चेत करले एक वार थोडासा॥ १॥
दल वल देवी देवता मात पिता परिवार।
मरते वक्त है जीव को कोई न राखनहार॥
देखलो बन्धू जग का झूठा प्यार थोडासा॥ २॥
दाम विना निर्धन दुखी तृष्णा वश धनवान।
कही न सुख संसार में सब जग देख्यो छान॥
कही नहि सच्चा सुख, मिलता है जगमे थोडासा॥३॥
धन कन कचन राज सुख सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है ससार में एक जथारथ ज्ञान॥
"शान्ति" करलो तुम उद्यम, एक वार थोडासा॥४॥

१६१ भजन संख्या ११

[तर्ज—ओ भोले वालमा, आ...'पूनम']

ओ मोरे मनवा, प्रभु के भजनवा, गा. ... .
ऊमर वीते छिन छिन॥ टेर॥
मात पिता और भाई सभी।

लगे कर्म ठग मेरे मै लुट गया हूँ।
कुदेवो के दल दल मे मै फँस गया हूँ॥
पडा हूँ भवर मे फँसी मेरी नैय्या।
करूँ पार कैसे प्रभू बिन खिवैय्या॥
चले आवोजी, चले आवोजी, चले आवो मुझको है तेरा सहारा।१।

भला कैसे जीतू गा कर्मो के दल से।
सभी दूर होंगे प्रभू तेरे बल से॥
तेरे दर पै आया हूँ तेरी महर हो।
"शान्ति" मिले मुक्ति तेरी नजर हो॥
चले आवोजी, चले आवोजी, बने मांझी तू ही लगाये किनारा॥२॥

१६६ भजन संख्या १६

[तर्ज—जबमे बलम घर आये "आवारा"]

वीर प्रभू दर आये, भव भव भटक भटक आये॥

आठो कर्मो ने हमको फँसाया।
लाख चौरासी योनो फिराया॥
इनसे घबराके आये, भव भव भटक भटक आये॥ १॥

श्रीपाल को तुमने है तारा।
सती सीता का कष्ट उबारा॥
यश गान तेरा गायें, भव भव भटक भटक आये॥ २॥

हम भी तेरी शरणमे है आये।
"शान्ति" चरणो मे मस्तक है नाये॥
आशा मुक्ति नार पाये, भव भव भटक भटक आये॥ ३॥

१६७ भजन संख्या १७

[तर्ज—राजा की आयेगी बरात "आह"]

आया हू तेरे दरबार, नैय्या है मझधार, भँवर से तारोजी ॥ टेर ॥
घोर अथाह सागर है भारी, सूझत नाही तीर ।
डगमग डगमग डोल रहा हू, आन पडी है पीर ॥
आके सभालो पतवार, हो मेरा बेडा पार, भवर से तारोजी ॥ १ ॥
लाखो पापी तारे तूने, जिसका न पाया पार ।
मानतु ग ने ध्यान किया जब छूटा कारागार ॥
अग्नि का कीना तूने नीर, द्रोपदि का चीर, भँवरसे तारोजी ॥ २ ॥
मै भी चाकर हू प्रभु तेरा दया करो भगवान ।
कर्मों के बन्धन टूटे मेरे, "शान्ति" हो तेरे समान ॥
छूटेंगे सारे जग जाल, हो जाऊंगा निहाल, भँवर से तारोजी ॥ ३ ॥

१६८ भजन संख्या १८

[तर्ज—मेरा मस्ता कहरवा जाल]

महावीर प्रभू के गुण गान गावो जी ॥ टेर ॥
सिद्धारथ राजा घर जन्मे छाया हर्ष अपार ।
महा पुण्य शीला त्रिशला के आये गर्भ मझार ॥ १ ॥
उदासीन जग से होकर के धन वैभव ठुकराया ।
तोड जगत के झूठे बन्धन वन मे ध्यान लगाया ॥ २ ॥
देकर सद उपदेश जगत को मुक्ति मार्ग बताया ।
यह ससार असार है प्राणी, क्यो इसमें भरमाया ॥ ३ ॥
जिसने तेरा ध्यान किया उसने ही शिव पद पाया ।
खडा हुआ मुक्तिपाने को "शाति" मस्तक नाया ॥ ४ ॥

१६६ भजन संख्या १६

नेमि-राजुल-संवाद

[तर्ज—भिक्षा देदे मैय्या पिंगला .भरथरी]

राजुल के प्रीतम नेमजी, राजुल करै है पुकार, प्रीतम नेमजी ।
जाते हो क्यों गिरनार पै, छोड मुझे मझधार, प्रीतम नेमजी ।।टेर।।
क्यो राजुल तू भई बावरी, करतू मन मे विचार, राजुल बावरी ।
झूठो है नातो विश्वमें, कौन त्रिया भरतार, राजुल बावरी ।।टेर।।
क्यो कर त्यागी प्राण पियारे, कौन कसूर हमार ।। प्रीतम० ।।
तडप उठा मन पशुग्रन की सुन, वाणी हा हा कार ।। राजुल० ।१।
तोरण से रथ क्यो कर मोडा, क्यो कर कंकण डार ।। प्रीतम० ।।
ज्ञान ज्योति हिरदय मे जागी, सुन कर मूक पुकार ।। राजुल० ।२।
माता जोवे बाट तुम्हारी, राजमहल के द्वार ।। प्रीतम० ।।
कहदे राजुल कर लीन्हों मैं शिव रमणी मे प्यार ।। राजुल० ।३।
कैसे देखूं जोग तुम्हारा, मैं तडफूं बिन प्यार ।। प्रीतम० ।।
भूल प्यार इस नश्वर तन का, आतम ज्ञान विचार ।। राजुल० ।४।
साथ दियो नव भव तक स्वामी, अब भी नेह सभार ।। प्रीतम० ।।
क्या क्या दुख सुख भोगे सोचो, चहु गति के मझधार ।। राजुल. ।५।
राजपाट बहुतेरो स्वामी, अरु सपति भंडार ।। प्रीतम० ।।
ये धन जीवन चार दिनो के, फिर वो ही अँधियार ।। राजुल० ।६।
करुणा सागर करुणा धारो, मागू हाथ पसार ।। प्रीतम० ।।
विषय वासना ऐसी राजुल, जैसे कनक कटार ।। राजुल० । ७ ।
नाथ अभी बालकपन तुम्हारा, छोडो जोग विचार ।। प्रीतम० ।।
मौत न बालक बूढा देखे, देखे न वार त्योंहार ।। राजुल० ।।
सुन्दर काया, नाजुक ऊमर, तप मे कष्ट अपार ।। प्रीतम० ।।

इस मल मूत्र भरी देही का, क्या करना शृंगार ।। राजुल० ।।
छपन क्रोड यादव वशी ये सैया तव परिवार ।। प्रीतम० ।।
आय अकेला जाय अकेला, कौन कौन की लार ।। राजुल० ।।१०।।
करू कौन कर्तव्य प्रभु मै, कौन मार्ग सुखकार ।। प्रीतम० ।।
राजुल गह् जिनधर्म अमोलक, करे जगत से पार ।।राजुल०।।११।।
बन्धन तोड मोह ममता का, सग चढू गिरनार ।। प्रीतम० ।।
ज्ञान मयी ले रत्न हाथ मे, पश्च वरू शिवनार ।। राजुल० ।।१२।।

२०० भजन संख्या २०

चरणो मे आया मै तेरे भगवन ।।
जग मे भटक भटक तेरे दर पै आया हूँ ।
कर्मों के सैन्य दल से मैं घबराया हूँ ।।
लख चौरासी योनि मे भ्रम भ्रम आया हूँ ।।
गतियो की पीडायें सह सह के आया हूँ ।।
इनसे बचादो ओ मेरे भगवन ।। १ ।।
तेरी महिमा का कछु पार नही पाया है ।
तेरे गुणगान से कइयो ने परम पद पाया है ।।
नाम सुमिरन से श्रीपाल को तिराया है ।
अजनादि चोर ने भी मुक्तिपद पाया है ।
यश गान तेरा क्या गाऊ भगवन ।। २ ।।
प्रभु तेरे चरणो मे मुझको भी जगह देदेना ।
पाऊ मैं तेरी शरण ऐसी महर कर देना ।
नैय्या मेरी बीच भँवर तू ही प्रभु खे देना ।
"शान्ति" शिवनारि मिले ऐसा मुझे वर देना ।।
भव से छुडादो अय मेरे भगवन ।। ३ ।।

२०१ बारह चक्रवर्ती

भरत महाराज, सगर, मघवा, सनतकुमार, शान्तिजिन, कुन्थजिन, अरह जिन, सुभूमि, पद्मनाभि, हरिषेण, जयसेन, ब्रह्मदत्त।

२०२ चक्रवर्ती राजाओं के सात अंग

स्वामी, मन्त्री, जनसमूह-प्रजा, कोट, खजाना, मित्रगण, सेना।

२०३ चक्रवर्ती के चौदह रत्न।

सेनापति, गृहपति, शिल्पकार, पुरोहित, स्त्री, हस्ती, अश्व ये सजीव रत्न हैं।

२०४ चक्रवर्ती की नव निधि।

कालनिधि, महाकालनिधि, माणवनिधि, पिंगलनिधि, नैसर्प्य-निधि, पद्मनिधि, पाडुकनिधि, शखनिधि, नानारत्ननिधि।

२०५ चक्रवर्ती के दश भोग।

रत्ननिधि, सुन्दर, स्त्रिया, नगर, आसन, शय्या, सैन्य, भोजन, पात्र, नाट्यशालायें, वा न।

२०६ दश प्रकार के कल्पवृक्ष।

वादित्राग, पात्राग, भूषणाग, पानाग, भोजनाग, पुष्पाग, ज्योतिराग, गृहाग, वस्त्राग और दीप्ताग।

२०७ अठारह दोष।

क्षुधा, तृषा, जन्म, जरा, मरण, रोग, भय, मद, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, रति, निद्रा, विस्मय, विषाद, खेद, स्वेद।

२०८ चार घातिया कर्म।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायकर्म।

२०९ आठ महा प्रातिहार्य।

अशोकवृक्ष पुष्पवृष्टि, देवो कृत दिव्यध्वनि, चमर, छत्र, सिंहासन, भामण्डल, दुन्दुभि बाजा।

२१० चार अनन्त चतुष्टय।

अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य।

२११ पांच महाकल्याण।

गर्भकल्याण, जन्मकल्याण, तपकल्याण, ज्ञानकल्याण, मोक्षकल्याण।

—❀ समाप्त ❀—